तात्त्विक और सदाचार प्रेरक सशक्त, किन्तु

सरल एवं सुबोध कथानक

संस्कार



© लेखक :

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम ए., बी.एड

प्राचार्य, श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर

प्रकाशकीय

आजकल अन्य गद्य-पद्य साहित्य की अपेक्षा कथा-कहानी के रूप में लिखा गया साहित्य अधिक लोकप्रिय हो रहा है। बालवर्ग और युवावर्ग तो पाठ्यपुस्तकों के सिवाय शेष समय में कथा-कहानियाँ और उपन्यास ही सबसे अधिक पढ़ता है।

आजकल ही क्या पहले भी यही स्थिति रही होगी, तभी तो हमारे पूर्वाचार्यों ने भी इस जनरुचि को ध्यान में रखकर प्रथमानुयोग के रूप में कथासाहित्य का सृजन भी काफी मात्रा में किया है। संस्कृत साहित्य में भी पंचतंत्र जैसी प्रसिद्ध कहानियाँ इसी लोकरुचि का परिणाम हैं।

इस कथाशैली के माध्यम से कठिन से कठिन तात्त्विक सिद्धान्तों को भी सरलता से पाठकों तक पहुँचाया जा सकता है। अतः यदि हम अपने नन्हें-मुन्ने बालक-बालिकाओं तथा युवापीढ़ी को कुछ तत्त्वज्ञान और सदाचार के संस्कार देना चाहते हैं, उनमें धार्मिक रुचि व नैतिक जागरण उत्पन्न करना चाहते हैं तो उनकी पसन्द को ध्यान में रखकर उनकी भाषा-शैली में भी जैनसाहित्य का निर्माण करना/कराना होगा। तभी वे तत्त्वज्ञान से व जैनाचार से परिचित हो सकेंगे।

अब बड़े-बड़े ग्रंथ और पुराण पढ़ने का न तो उनके पास समय है और न वैसी रुचि है, इसकारण युगपरिवर्तन के साथ जिनवाणी के मूल भावों को सुरक्षित रखते हुए वर्तमान कथासाहित्य की शैली में भी जैनसिद्धान्त और सदाचार की बातों को लिखने की जरूरत है।

यदि रामायण और महाभारत जैसे संस्कृत के बड़े-बड़े ग्रंथों और पुराणों को टीवी सीरियलों के रूप में परिवर्तित नहीं किया गया होता तो वे जन-साधारण में इतने लोकप्रिय नहीं हो पाते।

अतः क्यों न जैनसाहित्य की विषयवस्तु को भी ऐसे ही जनप्रिय बनाने का प्रयत्न किया जाए ? यदि हम भी बड़े-बड़े पुराणों के कथानकों को आधुनिक कथा-कहानियों और उपन्यासों की शैली में प्रस्तुत कर सकें तो हम जिनवाणी का अधिक प्रचार-प्रसार कर सकेंगे।

हिन्दी

- प्रथम चार संस्करण :
  (१ जनवरी, १९९१ से ४ फरवरी, १९९५) २५ हजार ४००
- पंचम संस्करण :
  (११ दिसम्बर, १९९६) ५ हजार
- जैनपथप्रदर्शक में धारावाहिक प्रकाशित ३ हजार

मराठी

- प्रथम एवं द्वितीय संस्करण : ५ हजार १००

कुल ३८ हजार ५००

मूल्य : १५ रुपये (पक्की जिल्द)

एक प्रेरक पत्र

बड़ी प्रेरणा मिली

प्रिय शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल,

आप शुद्धात्मा का प्रकाश फैलाने में सफल हों – यह मंगल कामना है। श्रद्धेय पण्डित श्री रतनचन्दजी भारिल्ल साहिब को प्रणाम कहावें। उनके द्वारा लिखित 'इन भावों का फल क्या होगा' पढ़कर बड़ी प्रेरणा मिली। इसके अगले संस्करण में मूल्य कम करने हेतु ११०० रुपये का योगदान मेरी ओर से लिख लेवें। उनके लिखे तीनों उपन्यास अत्यन्त प्रभावी रहे हैं। इसी तरह वे और साहित्य सृजन कर जिनवाणी की सेवा करें – यह मंगल कामना है। सादर।

शुभाकांक्षी

दीपावली
दिनांक ११-११-९६

निहालचंद अजमेरा
निहाल मेडीकल स्टोर, भीलवाड़ा (राज.)

मुद्रक : जयपुर प्रिन्टर्स प्रा. लि.
एम. आई. रोड, जयपुर

प्रकाशकीय

आजकल अन्य गद्य-पद्य साहित्य की अपेक्षा कथा-कहानी के रूप में लिखा गया साहित्य अधिक लोकप्रिय हो रहा है। बालवर्ग और युवावर्ग तो पाठ्यपुस्तकों के सिवाय शेष समय में कथा-कहानियाँ और उपन्यास ही सबसे अधिक पढ़ता है।

आजकल ही क्या पहले भी यही स्थिति रही होगी, तभी तो हमारे पूर्वाचार्यों ने भी इस जनरुचि को ध्यान में रखकर प्रथमानुयोग के रूप में कथासाहित्य का सृजन भी काफी मात्रा में किया है। संस्कृत साहित्य में भी पंचतंत्र जैसी प्रसिद्ध कहानियाँ इसी लोकरुचि का परिणाम हैं।

इस कथाशैली के माध्यम से कठिन से कठिन तात्त्विक सिद्धान्तों को भी सरलता से पाठकों तक पहुँचाया जा सकता है। अतः यदि हम अपने नन्हें-मुन्ने बालक-बालिकाओं तथा युवापीढ़ी को कुछ तत्त्वज्ञान और सदाचार के संस्कार देना चाहते हैं, उनमें धार्मिक रुचि व नैतिक जागरण उत्पन्न करना चाहते हैं तो उनकी पसन्द को ध्यान में रखकर उनकी भाषा-शैली में भी जैनसाहित्य का निर्माण करना/कराना होगा। तभी वे तत्त्वज्ञान से व जैनाचार से परिचित हो सकेंगे।

अब बड़े-बड़े ग्रंथ और पुराण पढ़ने का न तो उनके पास समय है और न वैसी रुचि है, इसकारण युगपरिवर्तन के साथ जिनवाणी के मूल भावों को सुरक्षित रखते हुए वर्तमान कथासाहित्य की शैली में भी जैनसिद्धान्त और सदाचार की बातों को लिखने की जरूरत है।

यदि रामायण और महाभारत जैसे संस्कृत के बड़े-बड़े ग्रंथों और पुराणों को टीवी सीरियलों के रूप में परिवर्तित नहीं किया गया होता तो वे जन-साधारण में इतने लोकप्रिय नहीं हो पाते।

अतः क्यों न जैनसाहित्य की विषयवस्तु को भी ऐसे ही जनप्रिय बनाने का प्रयत्न किया जाए ? यदि हम भी बड़े-बड़े पुराणों के कथानकों को आधुनिक कथा-कहानियों और उपन्यासों की शैली में प्रस्तुत कर सकें तो हम जिनवाणी का अधिक प्रचार-प्रसार कर सकें

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल द्वारा लिखित 'सत्य की खोज' उपन्यास और 'आप कुछ भी कहो' कहानी संग्रह इस दिशा में सफल सिद्ध हुए हैं।

प्रस्तुत 'संस्कार' नामक कथानक के माध्यम से पण्डित श्री रतनचन्दजी भारिल्ल का भी इस दिशा में किया गया यह एक सफल प्रयोग है। यद्यपि इसकी कथावस्तु में पौराणिक आधार नहीं लिया गया है, इसकी विषयवस्तु पूर्ण स्वतंत्र व मौलिक है; पर इसके अधिकांश अध्यायों में जैनदर्शन का कोई न कोई सिद्धान्त और सदाचार प्रेरक प्रसंग तो आया ही है।

इसमें धार्मिक संस्कारों के लाभ और कुसंस्कारों की हानि को तो बहुत ही प्रभावक ढंग से चित्रित किया गया है तथा उनके यथास्थान समाधान भी सुझाये हैं।

दुराचार और पापाचार के दुष्परिणामों का चित्रण करते हुए उनसे बचने का भी मार्गदर्शन दिया है।

संतान के बिगड़ने में माता-पिता की आवश्यकता से अधिक सावधानी और जरूरत से ज्यादा लापरवाही दोनों का ही समान हाथ होता है। इसमें किसप्रकार के संतुलन की जरूरत है ? - इस बात को बहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया गया है। दहेज के स्वरूप और विकृतियों पर भी मौलिक ढंग से अच्छा प्रकाश डाला है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि इसमें वर्तमान में प्रचलित अधिकांश समस्याओं को किसी न किसी रूप में पात्रों के माध्यम से बातों ही बातों में समाधान सहित प्रस्तुत करने का उत्तम प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सांप्रदायिक सद्भाव को पूरी तरह सुरक्षित रखते हुए जैनाचार और तत्त्वविचार को बहुत ही सशक्त भाषा में प्रस्तुत किया गया है। इसकारण यह कृति जैन-अजैन सभी संप्रदायों के लिए समान रूप से पठनीय एवं संग्रहणीय बन गई है।

जब मैंने इसकी कई किस्तों को क्रमशः जैनपथप्रदर्शक में पढ़ा तो मेरी भावना हुई कि क्यों न इसे पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जाए?

क्योंकि किस्तों में पढ़ने में वह आनन्द नहीं आता जो एक साथ धाराप्रवाह पढ़ने में आता है।

जो भी इसे पढ़ता है, वह अपने इष्ट-मित्रों व बंधु-बान्धवों को भी इसे पढ़ने की प्रेरणा दिए बिना नहीं रहता। यही कारण है कि लेखक की यह कृति भी पूर्व में प्रकाशित 'णमोकार महामंत्र' और 'जिनपूजन रहस्य' की तरह ही जनप्रिय हो रही है।

अबतक इस कृति के हिन्दी में चार एवं मराठी में भी दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

— नेमीचन्द पाटनी

दि. १ जनवरी १९९१ महामंत्री - पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

पंचम संस्करण

हमें कल्पना भी नहीं थी कि इस कृति को इतनी जल्दी-जल्दी पुनः-पुनः प्रकाशित करना पड़ेगा। आपको यह जानकर सुखद आश्चर्य होगा कि इसका ५ हजार २ सौ प्रतियों का प्रथम संस्करण तो तीन माह की अल्प अवधि में ही समाप्त हो गया था। द्वितीय संस्करण की ५ हजार २ सौ प्रतियाँ भी १६ माह में ही हाथों-हाथ उठ गईं। इस कारण तृतीय संस्करण १० हजार प्रतियों का प्रकाशित कराया गया; वह भी दो वर्ष में समाप्त हो गया। फरवरी, १९९५ में ५ हजार प्रतियों का चतुर्थ संस्करण पक्की जिल्द में प्रकाशित किया गया। वह भी १८ माह में समाप्त हो गया।

पाँच हजार प्रतियों का प्रस्तुत पाँचवाँ संस्करण आपके हाथों में प्रस्तुत करते हुये हम गौरवान्वित हैं। इसके सिवाय इस लोकप्रिय कृति के मराठी में भी दो संस्करण छप चुके हैं।

पाठकों, विद्वानों समीक्षकों एवं पत्र-पत्रिकाओं ने इस कृति की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। जन-सामान्य को पढ़ने की प्रेरणा के लिए कतिपय महत्त्वपूर्ण अभिमत पुस्तक के अन्त में प्रकाशित हैं।

कृति की उत्कृष्टता व लोकप्रियता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है। इस सफलता के लिए लेखक को हार्दिक बधाई!

— नेमीचन्द पाटनी

११ दिसम्बर, १९९६ महामंत्री पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

जयपुर (राज.)

एक प्रेरक पत्र

Dr. Vishnu Saxena
GENERAL PHYSICIAN

DAYAL CLINIC : TAHSIL ROAD
SIKANDRA RAO (ALIGARH) 204215
STD CODE : 05725 PHONE : 44380

श्रद्धेयास्पद
चरणवन्दन।

मेरे 'चरणवन्दन' लिखने पर आप अवश्य विस्मित होंगे। लेकिन आप मेरे लिये सर्वथा वन्दनीय इसलिये हैं कि एक तो आप मेरी पिता की आयु के हैं, दूसरे योग्यता में भी मुझ नगण्य से कई गुना अधिक हैं।

शायद आपको ध्यान हो मेरी आपकी भेंट गतवर्ष मेरठ में शाकाहार मेले में आयोजित कविसम्मेलन मंच पर हुयी थी। मैं भी एक कवि के रूप में बैठा था; तव आपने हम सभी कवियों को अपनी लिखी हुयी कुछ पुस्तकें भेंट की थीं।

उन पुस्तकों को लाकर मैंने अपनी लाइब्रेरी में सजा दिया। सोचा कभी फुरसत होगी तो पढूँगा। कवि सम्मेलनीय तथा चिकित्सकीय व्यस्तताओं में वर्ष भर उलझा रहा, वरसात में मैंने आपकी उन कितावों का अध्ययन किया। एक तो अभी भी वढ़ रहा हूँ।

पुस्तकें क्या हैं ! ये तो ज्ञान का सहज भंडार हैं। मैं तो जैनदर्शन से पहले से भी प्रभावित था। आपकी पुस्तकें पढ़ने के उपरान्त तो यह आस्था और अधिक वलवती हो गयी है। सभी पुस्तकें अत्यधिक सरल भाषा में लिखी गयी हैं। जो जनसामान्य को भी संस्कारित करती हैं। जैन साहित्य के लिये आपकी ये पुस्तकें एक अनमोल निधि हैं। मैं कायस्थ कुल में पैदा अवश्य हुआ हूँ; लेकिन आरम्भ से ही कुछ ऐसा प्रभाव रहा कि कोई व्यसन पास नहीं आ सका।

आपके इस सद्लेखन के लिये, आपको वधाई। 'संस्कार', 'विदाई की वेला' वहुत ही प्रेरणादायी हैं। आदरणीय 'हुकमचंद भारिल्लजी' की 'आप कुछ भी कहो' ने भी पूरे परिवार को झकझोर दिया। उन्हें भी मेरी वधाई प्रेषित कर दें।

आभार, शुभम्
आशा है, सानन्द होंगे।
२४.८.९६

आपका ही.....

डॉ. विष्णु सक्सेना

प्रति,
विद्वत्वरेण्य पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल
प्राचार्य, श्री टोडरमल दि. जैन महा. विद्यालय, जयपुर

अन्तर्भावना

कथा-साहित्य साहित्य-क्षेत्र की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। सत्य और तथ्य को जन-जन तक पहुँचाने का इससे अधिक सशक्त और सुलभ माध्यम अभी तक कोई दूसरा विकसित नहीं हो सका है।

सत्साहित्य का निर्माण परमसत्य के उद्घाटन के लिए किया जाने वाला महान कार्य है; अतः इसका पठन-पाठन भी परमसत्य की उपलब्धि के लिए गंभीरता से किया जाना चाहिए; पर आज इसे मात्र मनोरंजन की वस्तु बना लिया गया है।

इसप्रकार का दुरुपयोग कथा-साहित्य में सर्वाधिक हुआ है। साहित्य की सर्वाधिक प्रभावशाली एवं शक्ति-सम्पन्न यह विधा आज लोगों का मनोरंजन करने मात्र में उलझकर रह गई है; - इससे बड़ा दुर्भाग्य साहित्य का व समाज का और क्या हो सकता है ?

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है; पर यह नहीं भूलना चाहिए कि साहित्य मात्र दर्पण नहीं, दीपक भी है, मार्गदर्शक भी है, प्रेरक भी होता है। जो साहित्य प्रकाश न बिखेरे, मार्गदर्शन न करे, सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा न दे; मात्र वर्तमान समाज का कुत्सित चित्र प्रस्तुत करे या मनोरंजन तक सीमित रहे; वह साहित्य साहित्य नहीं, साहित्य के नाम पर कलंक है।

जिसप्रकार अणुशक्ति का सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी; उसके सदुपयोग से यदि हम समृद्धि के शिखर पर पहुँच सकते हैं तो दुरुपयोग से सर्वविनाश भी संभव है। इसप्रकार साहित्य की इस सशक्त विधा के सदुपयोग से यदि हम परम सत्य को जन-जन तक पहुँचा सकते हैं तो दुरुपयोग से अनजान जनता को चमत्कारों के घटाटोप में भी उलझा सकते हैं, मंत्र-तंत्रों के चक्कर में भी फंसा सकते हैं; कुछ नहीं तो मनोरंजन के नाम पर उनके इस महत्त्वपूर्ण मानव-जीवन के अमूल्य क्षणों को यों ही बरबाद तो कर ही सकते हैं।

मध्ययुग में जैनकथा साहित्य में भी इसप्रकार की प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं, जिनमें चमत्कारों को प्रोत्साहित किया गया है, शिथिलाचार के विरुद्ध आवाज उठाने वालों को डराया-धमकाया गया है, मंत्रों-तंत्रों के घटाटोप में उलझाने का प्रयास किया गया है। प्रत्येक कथा की लगभग एक ही थीम पाई जाती है कि जिसने किसी शिथिलाचारी की अवहेलना की, वह अनेकों बार नरक में गया, कूकर-सूकर हुआ; अन्ततोगत्वा जब वह किसी शिथिलाचारी की शरण में आया; तभी इस दुष्चक्र से बच पाया।

यदि उक्त साहित्य की वीतरागी जैन तत्त्वज्ञान की कसौटी पर कसकर देखें तो उसे जैनसाहित्य कहना भी संभव नहीं है। मेरी इस बात को जैन पुराण-साहित्य के संदर्भ में नहीं समझना चाहिए। मैं तो उस साहित्य की बात कह रहा हूँ, जो कथा साहित्य मध्ययुगीन शिथिलाचारियों द्वारा रचा गया है। एक तो उन्होंने काल्पनिक कथाएँ गढ़ी हैं, दूसरे पुराण साहित्य के संदर्भों को अपने मनोनुकूल तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया गया है तथा मिथ्यात्व के पोषक निष्कर्षों को निकाला गया है।

ऐसी स्थिति में कुछ इसप्रकार के कथा-साहित्य की महत्ती आवश्यकता है, जो आधुनिक संदर्भ में उपयोगी हो और जैनतत्त्वज्ञान को सरल व सुबोध भाषा में सुयुक्ति प्रस्तुत करता हो; जिससे आज की पीढ़ी प्रभावित हो सके और जैनतत्त्वज्ञान को सीख सके, जैनतत्त्वज्ञान सीखने के लिए रुचिवन्त हो सके।

उक्त दिशा में कुछ इक्के-दुक्के प्रयास इन दिनों में हुए हैं। उनका लेखा-जोखा करना यहाँ न तो संभव ही है और न आवश्यक; जब उनकी संख्या इस योग्य हो जाएगी तो इतिहासकार उसकी समीक्षा करेंगे ही।

पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल द्वारा लिखित यह कृति भी उसी दिशा में किया गया एक सत्प्रयास है, जो निश्चितरूप से समाज को एक दिशा-निर्देश देगा।

'संस्कार' नामक इस कृति में सशक्त रूप से यह कहने का प्रयास किया गया है कि संस्कार-विहीन पीढ़ी स्वयं तो संकटग्रस्त है ही, परिवार और समाज के लिए भी घातक सिद्ध हो रही है, अतः वीतरागी तत्त्वज्ञान और संस्कारी समाज की सुरक्षा के लिए भावी पीढ़ी को सुसंस्कार देने की महत्ती आवश्यकता है।

यह कहानी किसी एक गाँव की नहीं है, गाँव-गाँव की कहानी है। भारत के प्रत्येक उपनगर में ज्ञान, विज्ञान और सुदर्शन चाहे न मिलें; पर संजू, राजू, अंजू और अन्नू तो मिल ही जाएंगे। यदि इस कृति से प्रेरणा पाकर दस-बीस परिवार ही कुछ सीख सकें, सन्मार्ग पर आ सकें; तो लेखक का श्रम सार्थक हो जाएगा।

मैं तो यह चाहता हूँ कि जिनमें लेखन शक्ति है, वे इसप्रकार का साहित्य निर्माण करें; जिनमें इसप्रकार की शक्ति नहीं है, वे इसप्रकार के साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास करें; क्योंकि जितनी आवश्यकता इसप्रकार के साहित्य निर्माण की है, उतनी ही आवश्यकता इसे जन-जन तक पहुँचाने की भी है। इसका वास्तविक लाभ तो तभी होगा, जब यह जन-जन तक पहुँचेगा। एतदर्थ सभी आत्मार्थीजन अपनी-अपनी योग्यतानुसार इस भागीरथ प्रयास में जुटें। जब हम सब अपनी-अपनी योग्यता, शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार इस काम में सक्रिय होंगे; तभी संस्कार-विहीन पीढ़ी को संस्कारित करने का यह महान कार्य कुछ अंशों में सम्पन्न हो सकेगा।

किसी भी कथा कृति को कथासाहित्य की कसौटी पर कसना तो समीक्षकों का कार्य है; पर मैं तो इसप्रकार के साहित्य की उपयोगिता और आवश्यकता को गहराई से अनुभव कर रहा हूँ; अतः यही प्रेरणा देना चाहता हूँ कि इसप्रकार का साहित्य अधिक से अधिक लिखा जाए और अधिक से अधिक जन-जन तक पहुँचे।

१८-१२-१९९० – डॉ. हुकमचन्द भारि

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करनेवाले दातारों की सूची

१०००/- रुपये प्रदान करनेवाले :
श्रीमती कस्तूरी दोशी ध.प. स्व. श्री गुमानमलजी दोशी (वकील) अजमेर • गुप्तदान हस्ते सुजानमलजी गदिया, उदयपुर • श्रीमती प्रभावेन विनोदचन्दजी शाह, बम्बई • श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, पिड़ावा • श्री डी. आर. चवरे, श्री १००८ पार्श्वनाथ स्वामी दिगम्बर जैन मन्दिर, कारंजा • श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, कूँण • मेकेनियर्स इण्डिया, उदयपुर • श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, वेगमगंज • श्रीमती मधुकान्त आर. मेहता, बम्बई • श्री दिनेशकुमारजी हुकमचंदजी पाटनी, इन्दौर।

५००/- रुपये प्रदान करनेवाले :
श्री महावीर स्टोर, मेरठ • डॉ. अरुण आर. दोंडल, बम्बई • श्रीमती भावना सचिनभाई, बम्बई • श्रीमती सुनिता नितिन भाई शाह, बम्बई • दिगम्बर स्टोर्स, राँझी, जवलपुर (स्व. चेनावाई की पुण्य स्मृति में) • श्री अनन्तभाई कामदार, पूना • श्री सुरेन्द्रभाई जेठाभाई सिकन्दरावाद • श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सागर • प्राचीन दिगम्बर जैन मंदिर, दिल्ली • श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन धार्मिक एवं सामाजिक संस्था, नीमच • समस्त जैन समाज नरसिंहपुरा, विनोता। • श्री अशोककुमार मुकेश कुमार, मौ.

३००/- रुपये प्रदान करनेवाले :
श्री फूलचन्दजी विमलचन्दजी झाँझरी, उज्जैन • श्री हुलासमलजी कासलीवाल, कलकत्ता।

२५०/- रुपये प्रदान करनेवाले :
श्रीमती श्रीकान्तावाई ध.प. श्री पूनमचन्दजी छावड़ा, इन्दौर • ब्र. श्री हीरालालजी खुशालचन्दजी दोशी, माड़वे, • श्री श्रीचन्दजी सुन्दरलालजी जैन, सोनगढ़ • श्री विनयदक्ष चैरिटेवल ट्रस्ट, बम्बई • श्री प्रेमचन्दजी जैन, सोनीपत (सिटी) • श्री विमलचन्दजी जैन "नीरू केमिकल्स", दिल्ली • श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, कानपुर • श्रीमती नारायणीवाई ध.प. स्व. श्री गुलावचन्दजी रारा दिल्ली • श्री शान्तिनाथ सोनाज, अकलूज • स्व. निर्मल रमणिकलाल घड़ियाली, मोरवी • श्री १००८ चन्द्रप्रभु दिगम्बर जैन मंदिर ट्रस्ट, शहड़ोल • श्री दिगम्बर जैन समाज, हरसूद • श्री दिगम्बर जैन महिला मुमुक्षु मण्डल, वारासिवनी।

२००/- रुपये प्रदान करनेवाले :
श्रीमती पानादेवी ध.प. श्री मोहनलालजी सेठी, गोहाटी • श्रीमती इन्द्रमणी देवी ध.प. स्व. आनन्दीलालजी, रामगढ़ (केन्ट)।

१२५/- रुपये फुटकर

२१,१७५ रुपये कुल योग

अपनी बात

सौभाग्यशाली है वे व्यक्ति, जिन्हें जन्म-जन्मान्तर और पीढ़ी-दर-पीढ़ी से तत्त्वज्ञान और सदाचार के सस्कार मिलते आ रहे है। तथा धन्य है उनका जीवन, जो उन सस्कारो के सम्बल से और अपने उग्र पुरुषार्थ से प्रतिकूल परिस्थितियो मे भी कीचड़ मे पड़े कचन की भाँति आत्मोन्नति के मार्ग पर चलते हुए लौकिक बुराइयो से बचे रहते हैं ।

पर, कितने है ऐसे सौभाग्यशाली, सस्कारी और पुरुषार्थी व्यक्ति, जिन्हें ये आत्मोन्नति के अवसर पर सहज प्राप्त हो जाते है ? अधिकाश व्यक्ति तो ऐसे ही होते है, जिनकी मनःस्थिति उनकी पारिवारिक परिस्थितियो पर ही निर्भर करती है ।

यदि सस्कारविहीन व्यक्तियो को भोगवादी भौतिक वातावरण मिल जाता है तो उनके साथ तो "करेला और नीम चढ़ा" वाली कहावत ही चरितार्थ होती है । करेला स्वय कड़वा और फिर नीम चढ़ी बेल पर फूला-फूला हो तो उसकी कड़वाहट का तो कहना ही क्या है ?

प्राणियो मे सस्कार दो तरह से आते है, एक तो जन्म-जन्मान्तरो से और दूसरे पीढ़ी-दर-पीढियो से । दोनो प्रकार के सस्कारो से नई पीढ़ियाँ प्रभावित होती है । अतः प्रत्येक माता-पिता की यह जिम्मेदारी है कि वे अपनी सतान को दोनो प्रकार के सु-सुस्कारो से सस्कारित करें और उन्हे कु-सस्कारो से बचाये । इस अन्तर्भावना ने ही मुझे इस कृति को लिखने के लिए उत्प्रेरित किया है ।

प्रस्तुत 'सस्कार' नामक कथानक मे विविध पात्रो के माध्यम से जीवन के यथार्थ को रेखाकित करते हुए भले-बुरे सस्कारो का प्रभाव एव उनसे होने वाले लाभ-हानि का दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया गया है ।

इसमे अत्यन्त सरल, सुबोध भाषा-शैली मे जैनदर्शन का गभीर तात्त्विक चिन्तन प्रस्तुत करने का प्रयास भी स्थान-स्थान पर किया
दो परिवारो के माध्यम से दैनिक जीवन मे घटित होनेवाली
व सामाजिक समस्याओ को उभारते हुए उनके उचित

का भी प्रयास किया है । इन्हीं सबके साथ खान-पान की शुद्धि, अहिंसक आचरण, सांप्रदायिक सद्भाव और नैतिकता के प्रेरणादायक प्रसंग भी कथानक की सहज स्वाभाविक कथा-यात्रा के बीच-बीच में प्रस्फुटित होते गये हैं, जो पाठकों को विशेष लाभप्रद होंगे ।

वस्तुतः यह कथानक के लिए लिखा गया कथानक नहीं है, बल्कि कथानक के सहारे मैंने कल्पित पात्रों द्वारा जैनाचार और तत्त्वविचार को ही आगम सम्मत युक्तियों और अनुभवों के आधार पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षकों की अक्षमता और शासन की लापरवाही के कारण शिक्षण में जो धांधली चल रही है, अबोध बालकों के साथ जो खिलवाड़ हो रहा है; उस ओर शिक्षकों और समाज का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास भी किया गया है ।

दहेज प्रथा और परिवार नियोजन जैसी ज्वलन्त समस्याओं पर भी मौलिक एवं नया चिन्तन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

अनेक पात्रों वाले इस कथानक में साधु-संतों के श्रीमुख से सदाचार प्रेरक और तात्त्विक प्रवचन भी रोचक शैली में कराये गये हैं । उनसे पाठक जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों से परिचित तो होंगे ही, उनकी तर्क और युक्तियों से प्रभावित भी होंगे – ऐसा मेरा विश्वास है ।

अपनी बात को कहने में मैं कितना सफल हो सका हूँ, इसका निर्णय तो मेरे प्रबुद्ध पाठक ही करेंगे । 'जयजिनेन्द्र' ।

– रतनचन्द भारिल्ल

संस्कारों के सम्बन्ध में पूज्य गुरुदेवश्री के दो शब्द

जो सत्य का श्रवण रुचिपूर्वक करता है, उसमें उससे सत्य के संस्कार पड़ते हैं, इन सत्य के संस्कारों से धर्म प्राप्त होता है । भले अभी विकल्प न टूटे; तो भी उसके संस्कार से भविष्य में धर्म प्राप्त होता है ।

– श्री कानजी स्वामी : आत्मधर्म : मार्च, १९७८; पृष्ठ-२६

"क्यो रे विज्ञान ! तू कल दिनभर कहाँ छिपा रहा ? इसतरह कब तक छिपता रहेगा ? अब तो तू दस वर्ष का हो गया है । क्या अब भी धाय माँ का पल्लू पकड़े-पकड़े फिरेगा ? क्या अभी भी लड़कियों की तरह रग-गुलाल से डरता है ? डरपोक कहीं का !" — उसके अह पर चोट करते हुए सुदर्शन ने कहा ।

"डरने की तो कोई बात नहीं है मित्र ! पर मुझे यह होली की हुड़दग बिल्कुल पसन्द नहीं है । मै खूब सोचता हूँ, पर मेरा मन ही नही होता इस रासलीला मे शामिल होने को ।" — विज्ञान ने सहज भाव से कहा ।

पास ही खड़े ज्ञान ने सुदर्शन के कान मे कुछ कहा और दोनो मन ही मन मुस्कुराते हुए कक्षा मे चले गये ।

कहने को तो होली का त्योहार एक दिन का ही होता है, पर वस्तुतः इसका प्रभाव रंग पचमी तक रहता है । भले छुट्टियाँ न भी हो, तो भी स्कूल और कार्यालय इसके प्रभाव से अछूते नही रहते ।

× × ×

जो गम्भीर प्रकृति के होते है, जिन्हे अधिक हुड़दग पसन्द नहीं है, जब वे भी इसके प्रभाव से अछूते नही रह पाते तो फिर जैननगर की शासकीय शाला के छात्र-छात्राये इसके प्रभाव से अछूते कैसे रह सकते थे ?

होली के दूसरे दिन शासकीय नियम के अनुसार रंग व गुलाल से होली खेलने का निषेध होने पर भी बालक-बालिकाओ के दिलो मे रगारंग की उमग कम नही हुई थी । इनकी देह पर से भी अभी पूरी तरह रंग नही उतरा था ।

अधिकांश छात्र-छात्राओं की चोरजेबों में रंग और गुलाल की पुड़ियाँ छुपी-छुपी मुस्करा रही थीं तथा उनके गालों की लाली बनने की प्रतीक्षा कर रहीं थीं ।

ज्यों ही मध्यावकाश की घंटी बजी कि क्षण भर में सभी छात्र-छात्राएँ क्रीड़ा शिक्षक के निर्देशानुसार खो-खो खेलने खेल के मैदान में पहुँच तो गये, पर शिक्षक के देखते ही देखते पल भर में शाला का सम्पूर्ण वातावरण होली की हुड़दंग में बदल गया ।

विज्ञान के सिवाय उनमें एक आठ वर्षीय तीसरी कक्षा में पढ़नेवाली भोली-भाली सूरतवाली 'विद्या' नाम की लड़की भी ऐसी थी, जिसे रंग-गुलाल लगाना व लगवाना बिल्कुल ही पसन्द नहीं था । यदि कोई उसे हठाग्रह करके रंग-गुलाल लगा देता तो वह घंटों रोती रहती थी। पर पता नहीं आज उसका हृदय किस तरह उत्साह व उमंग से भर उठा और न मालूम उसे क्या सूझा कि उसने शाला के मध्यावकाश में, जब खो-खो का खेल होली की हुड़दंग में बदल गया था, तब उसने चुपके-चुपके से 'विज्ञान' के पीछे जाकर धीरे से उसके गालों पर गुलाल मल दी और जोर-जोर से ताली बजाते हुए खिल-खिलाकर हंस पड़ी। पर ज्यों ही अन्य छात्र-छात्राओं ने उसकी ओर आश्चर्य भरी दृष्टि से देखा तो वह सहम गई, शरमा गई और अपने में ही सिमट गई।

उस बालिका की इस असंभावित सहज स्नेहपूर्ण शरारत को देखकर बालक विज्ञान क्षण भर तो स्तंभित रह गया, पर थोड़ी ही देर में उसके मन में भी किसी अन्तःकरण के कोने से सुसुप्त संस्कार जागृत हो गये। और अज्ञात अन्तःप्रेरणा से प्रेरित होकर उसने भी चुपचाप अपने मित्र से गुलाल की पुड़िया माँगकर विद्या के गालों पर मलते हुए माथे में सिन्दूर-सा भर दिया ।

उनके इस अप्रत्याशित व्यवहार को देखकर सभी छात्र-छात्रायें तो अचंभित थे ही, अध्यापक-अध्यापिकाएँ भी उन्हें आश्चर्यभाव से देख रहे थे और परस्पर में कह रहे थे कि – "इनके इस व्यवहार को

देखकर तो ऐसा लगता है कि इनका तो पिछले जन्म-जन्मान्तर का कोई अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है । इनके ये सस्कार इस जन्म मे भी इन्हें एक-दूसरे से अलग नही कर सकते ।"

कक्षा पॉंच के बाद तो वे सब बिखर गये; पर बड़े होने पर विज्ञान, विद्या, ज्ञान और सुदर्शन चारो चार राहो से आकर फिर एक चौराहे पर मिल गये ।

जिसका जिसके साथ जिस तरह का संस्कार होता है, प्रकृति उसे सहज रूप से ही मिला देती है ।

× × ×

ज्ञान, विज्ञान और सुदर्शन एक ही नगर के रहने वाले और एक साथ खेलने वाले बालसखा थे । तीनो की प्रारम्भिक शिक्षा एक ही स्कूल मे हुई थी, पर सुदर्शन और ज्ञान के पिता ने प्रारम्भ से ही अपने बेटो को लौकिक शिक्षा के साथ नैतिक शिक्षा और धार्मिक सस्कार भी दिये थे; परन्तु दुर्भाग्य से विज्ञान को यह सौभाग्य नही मिल पाया था ।

विज्ञान का परिवार भी धार्मिक तो था, पर परिस्थितियो की प्रतिकूलताओ ने उसे ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया था, जहाँ से केवल एक ही रास्ता खुलता था । और वह था पश्चिमि सभ्यता और संस्कृति से युक्त भौतिकवाद का ।

उसकी मॉं तो उसके जन्म लेते ही चल बसी थी, पिताश्री को अपने कल-कारखाने समालने और उद्योग-धधो से ही फुर्सत नही थी; दुर्भाग्य से दादाजी का सान्निध्य भी बहुत समय तक नही मिल सका था । वे भी विज्ञान को पाँच वर्ष का छोड़ दिवगत हो गये; पर जब तक रहे, तब तक उसे अपने पास ही सुलाते रहे और जब तक उसे नीद नहीं आ जाती तब तक सदाचार प्रेरक पौराणिक कहानियाँ सुनाते रहे । बचपन मे विज्ञान को कहानियाँ सुनने का शौक भी बहुत था ।

अधिकांश छात्र-छात्राओं की चोरजेबों में रंग और गुलाल की पुड़ियाँ छुपी-छुपी मुस्करा रही थीं तथा उनके गालों की लाली बनने की प्रतीक्षा कर रहीं थीं ।

ज्यों ही मध्यावकाश की घंटी बजी कि क्षण भर में सभी छात्र-छात्राएँ क्रीड़ा शिक्षक के निर्देशानुसार खो-खो खेलने खेल के मैदान में पहुँच तो गये, पर शिक्षक के देखते ही देखते पल भर में शाला का सम्पूर्ण वातावरण होली की हुड़दंग में बदल गया ।

विज्ञान के सिवाय उनमें एक आठ वर्षीय तीसरी कक्षा में पढ़नेवाली भोली-भाली सूरतवाली 'विद्या' नाम की लड़की भी ऐसी थी, जिसे रंग-गुलाल लगाना व लगवाना बिल्कुल ही पसन्द नहीं था । यदि कोई उसे हठाग्रह करके रंग-गुलाल लगा देता तो वह घंटों रोती रहती थी। पर पता नहीं आज उसका हृदय किस तरह उत्साह व उमंग से भर उठा और न मालूम उसे क्या सूझा कि उसने शाला के मध्यावकाश में, जब खो-खो का खेल होली की हुड़दंग में बदल गया था, तब उसने चुपके-चुपके से 'विज्ञान' के पीछे जाकर धीरे से उसके गालों पर गुलाल मल दी और जोर-जोर से ताली बजाते हुए खिल-खिलाकर हंस पड़ी। पर ज्यों ही अन्य छात्र-छात्राओं ने उसकी ओर आश्चर्य भरी दृष्टि से देखा तो वह सहम गई, शरमा गई और अपने में ही सिमट गई।

उस बालिका की इस असंभावित सहज स्नेहपूर्ण शरारत को देखकर बालक विज्ञान क्षण भर तो स्तंभित रह गया, पर थोड़ी ही देर में उसके मन में भी किसी अन्तःकरण के कोने से सुसुप्त संस्कार जागृत हो गये। और अज्ञात अन्तःप्रेरणा से प्रेरित होकर उसने भी चुपचाप अपने मित्र से गुलाल की पुड़िया माँगकर विद्या के गालों पर मलते हुए माथे में सिन्दूर-सा भर दिया ।

उनके इस अप्रत्याशित व्यवहार को देखकर सभी छात्र-छात्रायें तो अचंभित थे ही, अध्यापक-अध्यापिकाएँ भी उन्हें आश्चर्यभाव से देख रहे थे और परस्पर में कह रहे थे कि – "इनके इस व्यवहार को

देखकर तो ऐसा लगता है कि इनका तो पिछले जन्म-जन्मान्तर का कोई अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है । इनके ये संस्कार इस जन्म मे भी इन्हे एक-दूसरे से अलग नहीं कर सकते ।"

कक्षा पाँच के बाद तो वे सब बिखर गये; पर बड़े होने पर विज्ञान, विद्या, ज्ञान और सुदर्शन चारो चार राहो से आकर फिर एक चौराहे पर मिल गये ।

जिसका जिसके साथ जिस तरह का संस्कार होता है, प्रकृति उसे सहज रूप से ही मिला देती है ।

× × ×

ज्ञान, विज्ञान और सुदर्शन एक ही नगर के रहने वाले और एक साथ खेलने वाले बालसखा थे । तीनो की प्रारम्भिक शिक्षा एक ही स्कूल मे हुई थी, पर सुदर्शन और ज्ञान के पिता ने प्रारम्भ से ही अपने बेटो को लौकिक शिक्षा के साथ नैतिक शिक्षा और धार्मिक सस्कार भी दिये थे; परन्तु दुर्भाग्य से विज्ञान को यह सौभाग्य नहीं मिल पाया था ।

विज्ञान का परिवार भी धार्मिक तो था, पर परिस्थितियो की प्रतिकूलताओ ने उसे ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया था, जहाँ से केवल एक ही रास्ता खुलता था । और वह था पश्चिमि सभ्यता और सस्कृति से युक्त भौतिकवाद का ।

उसकी माँ तो उसके जन्म लेते ही चल बसी थी, पिताश्री को अपने कल-कारखाने सभालने और उद्योग-धधो से ही फुर्सत नही थी; दुर्भाग्य से दादाजी का सान्निध्य भी बहुत समय तक नहीं मिल सका था । वे भी विज्ञान को पाँच वर्ष का छोड़ दिवगत हो गये; पर जब तक रहे, तब तक उसे अपने पास ही सुलाते रहे और जब तक उसे नींद नहीं आ जाती तब तक सदाचार प्रेरक पौराणिक कहानियाँ सुनाते रहे । बचपन मे विज्ञान को कहानियाँ सुनने का शौक भी बहुत था ।

अधिकांश छात्र-छात्राओं की चोरजेबों में रंग और गुलाल की पुड़ियाँ छुपी-छुपी मुस्करा रही थीं तथा उनके गालों की लाली बनने की प्रतीक्षा कर रहीं थीं ।

ज्यों ही मध्यावकाश की घंटी बजी कि क्षण भर में सभी छात्र-छात्राएँ क्रीड़ा शिक्षक के निर्देशानुसार खो-खो खेलने खेल के मैदान में पहुँच तो गये, पर शिक्षक के देखते ही देखते पल भर में शाला का सम्पूर्ण वातावरण होली की हुड़दंग में बदल गया ।

विज्ञान के सिवाय उनमें एक आठ वर्षीय तीसरी कक्षा में पढ़नेवाली भोली-भाली सूरतवाली 'विद्या' नाम की लड़की भी ऐसी थी, जिसे रंग-गुलाल लगाना व लगवाना बिल्कुल ही पसन्द नहीं था । यदि कोई उसे हठाग्रह करके रंग-गुलाल लगा देता तो वह घंटों रोती रहती थी। पर पता नहीं आज उसका हृदय किस तरह उत्साह व उमंग से भर उठा और न मालूम उसे क्या सूझा कि उसने शाला के मध्यावकाश में, जब खो-खो का खेल होली की हुड़दंग में बदल गया था, तब उसने चुपके-चुपके से 'विज्ञान' के पीछे जाकर धीरे से उसके गालों पर गुलाल मल दी और जोर-जोर से ताली बजाते हुए खिल-खिलाकर हंस पड़ी। पर ज्यों ही अन्य छात्र-छात्राओं ने उसकी ओर आश्चर्य भरी दृष्टि से देखा तो वह सहम गई, शरमा गई और अपने में ही सिमट गई।

उस बालिका की इस असंभावित सहज स्नेहपूर्ण शरारत को देखकर बालक विज्ञान क्षण भर तो स्तंभित रह गया, पर थोड़ी ही देर में उसके मन में भी किसी अन्तःकरण के कोने से सुसुप्त संस्कार जागृत हो गये। और अज्ञात अन्तःप्रेरणा से प्रेरित होकर उसने भी चुपचाप अपने मित्र से गुलाल की पुड़िया माँगकर विद्या के गालों पर मलते हुए माथे में सिन्दूर-सा भर दिया ।

उनके इस अप्रत्याशित व्यवहार को देखकर सभी छात्र-छात्रायें तो अचंभित थे ही, अध्यापक-अध्यापिकाएँ भी उन्हें आश्चर्यभाव से देख रहे थे और परस्पर में कह रहे थे कि – "इनके इस व्यवहार को

देखकर तो ऐसा लगता है कि इनका तो पिछले जन्म-जन्मान्तर का कोई अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है । इनके ये सस्कार इस जन्म मे भी इन्हे एक-दूसरे से अलग नही कर सकते ।"

कक्षा पाँच के बाद तो वे सब बिखर गये; पर बड़े होने पर विज्ञान, विद्या, ज्ञान और सुदर्शन चारो चार राहो से आकर फिर एक चौराहे पर मिल गये ।

जिसका जिसके साथ जिस तरह का संस्कार होता है, प्रकृति उसे सहज रूप से ही मिला देती है ।

× × ×

ज्ञान, विज्ञान और सुदर्शन एक ही नगर के रहने वाले और एक साथ खेलने वाले बालसखा थे । तीनो की प्रारम्भिक शिक्षा एक ही स्कूल मे हुई थी, पर सुदर्शन और ज्ञान के पिता ने प्रारम्भ से ही अपने बेटो को लौकिक शिक्षा के साथ नैतिक शिक्षा और धार्मिक सस्कार भी दिये थे; परन्तु दुर्भाग्य से विज्ञान को यह सौभाग्य नही मिल पाया था ।

विज्ञान का परिवार भी धार्मिक तो था, पर परिस्थितियो की प्रतिकूलताओ ने उसे ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया था, जहाँ से केवल एक ही रास्ता खुलता था । और वह था पश्चिमि सभ्यता और सस्कृति से युक्त भौतिकवाद का ।

उसकी माँ तो उसके जन्म लेते ही चल बसी थी, पिताश्री को अपने कल-कारखाने सभालने और उद्योग-धधो से ही फुर्सत नही थी; दुर्भाग्य से दादाजी का सान्निध्य भी बहुत समय तक नही मिल सका था । वे भी विज्ञान को पाँच वर्ष का छोड़ दिवगत हो गये; पर जब तक रहे, तब तक उसे अपने पास ही सुलाते रहे और जब तक उसे नींद नहीं आ जाती तब तक सदाचार प्रेरक पौराणिक कहानियाँ सुनाते रहे । बचपन मे विज्ञान को कहानियाँ सुनने का शौक भी बहुत था ।

दादाजी जानते थे कि बचपन के ये संस्कारों के बीज निश्चित ही समय पर वातावरण का जल पाकर अंकुरित हो जायेंगे, अतः उन्होंने सोचा, – "अभी जितने गहरे संस्कार डल जावें उतना ही अच्छा।"

पर होनी को कौन टाल सकता है, उसे उनका पूरा लाभ नहीं मिलना था, सो नहीं मिला, असमय में ही उनकी छत्रछाया भी उस पर से उठ गई ।

माँ का निधन हो जाने से वह बचपन में तो अधिकांश धाय माँ और नौकरों के हाथों में ही रहा और बड़ा होते ही पांचवीं कक्षा के बाद उसे एक ऐसे इंगलिश-मीडियम स्कूल एवं होस्टल में प्रविष्ट कर दिया गया, जिसमें वह अपनी भारतीय संस्कृति और सदाचार से दिन-प्रतिदिन दूर-अतिदूर होता चला गया । इसकारण उसे भारतीय श्रमण संस्कृति की हर बात अटपटी पोपडम सी लगने लगी । वह करे तो करे भी क्या ? उसका उठना-बैठना, रहन-सहन, बोल-चाल, खान-पान – सबकुछ बदल चुका था । वातावरण बदल जाने से दादाजी द्वारा गये संस्कारों का रंग भी फीका पड़ गया था । अब उसे अंडे और आमिसमय भोजन में हिंसा के बजाय विटामिन और शरीर पोषक तत्व ही नजर आने लगे थे ।

अब जब भी वे तीनों बालसखा आपस में एक दूसरे से मिलते, तभी किसी न किसी बात पर उनमें भारतीय संस्कृति के विषय में बहस और नोक-झोंक हो जाया करती थी ।

ईसाई मिशनरी द्वारा संचालित स्कूल और कॉलेज में पढ़ने तथा होस्टल में लगातार पन्द्रह वर्ष के लम्बे समय तक रहने के कारण विज्ञान के खान-पान और रहन-सहन में तो सम्पूर्णतः भौतिकवाद के संस्कार आ ही गये थे, पूजा-पाठ जैसे पवित्र अनुष्ठानों पर से भी उसकी आस्था और विश्वास उठ गया था । केवल एक मानव सेवा ही धर्म है, शेष सब ढोंग है, पाखण्ड है, आडम्बर है – ऐसी धारणाओं ने उसके चिन्तन को विकृत कर दिया था ।

इसके सिवाय हृदय को हिला देने वाली ईसामसीह की कुर्बानी की कहानियो ने उसके कोमल हृदय पर ऐसी छाप छोड़ी कि अब उसे एकमात्र ईसू ही सर्वश्रेष्ठ महामानव या ईश्वरीय अवतार के रूप में वन्दनीय एव प्रातःस्मरणीय हो गये थे ।

जब तक वह स्नातक होकर घर लौटा तब तक उसके पिता लक्ष्मीकान्त बड़े लोगो को होने वाले सभी राज रोगों से घिर चुके थे । उनका उद्योग-धधा केवल भगवान के भरोसे और मुनीम-गुमास्तों एव मैनेजरों के बल पर ही चल रहा था । घर में कोई दूसरा सहारा तो था नहीं, अतः वे विज्ञान की वापसी की बड़ी बेचैनी से प्रतीक्षा कर रहे थे ।

× × ×

विज्ञान की वापसी से एक ओर जहाँ उन्हें भारी राहत महसूस हुई, वहीं दूसरी ओर उसके बदले हुए विचार, एकदम पश्चिमी सभ्यता के रहन-सहन और खान-पान ने उन्हें विस्मित कर दिया।

उन्होने तो उसी ईसाई मिशनरी स्कूल और हॉस्टल की ही सर्वाधिक प्रशसा सुनी थी, अतः व्यापारिक दृष्टि से अंग्रेजी मीडियम से लौकिक शिक्षा दिलाने और नैतिक एव सदाचारी बनाने के लिए विज्ञान को उस स्कूल मे प्रविष्ट करा दिया था। उन्हें क्या पता था कि ईसाइयों के सदाचार का मापदण्ड भारतीयों के सदाचार से बिल्कुल भिन्न होता है।

वे उद्योगपति तो थे, पर आधुनिक उद्योगपतियों जैसे सारी कलाओं मे पारंगत सर्वगुण सम्पन्न नहीं थे । अधिक पढ़े-लिखे भी नहीं थे । सीधे-सादे सज्जन प्रकृति के धार्मिक रुचि सम्पन्न व्यक्ति थे । अतः उन्हें विज्ञान का बदला हुआ रूप [illegible] लग रहा था और वे अपने इस कृत्य पर पछता भी रहे थे, पर 'अब पछताये क्या होत है, जब चिड़िया चुग गई खेत ।'

परन्तु वे विवश थे । [illegible] घर मे विज्ञान को मनाने के लिए [illegible] होने के कारण उनके [illegible]

था; अतः घर में रखकर पढ़ाना-लिखाना तो संभव था नहीं और नगर में अन्य लोग भी उत्तम व्यवस्था और उत्तम पढ़ाई की दृष्टि से उसी शिक्षा संस्थान की प्रशंसा किया करते थे और विज्ञान को उसी में प्रविष्ट कराने का परामर्श दिया करते थे, इसकारण ऐसा बनाव बन गया था।

पर उन्होंने इस सम्बन्ध में विज्ञान से कुछ नहीं कहा, कहते भी क्या? उसमें उस बेचारे का दोष भी क्या था ? उसे तो जैसा वातावरण मिला, वैसा ढल गया ।

जो होना था सो तो हो ही गया; पर उन्होंने इस घटना से प्रेरणा पाकर यह संकल्प किया कि – यदि मैं थोड़े दिन और जीवित रहा तो मैं इस शिक्षा संस्थान के समानान्तर ही एक ऐसा आदर्श शिक्षा संस्थान स्थापित करूँगा, जिसमें आधुनिक संदर्भ में सभी प्रकार की सर्वश्रेष्ठ लौकिक शिक्षा के साथ भारतीय सभ्यता, श्रमण-संस्कृति, नैतिक शिक्षा और अहिंसक सदाचारी जीवन जीने की कला में छात्रों को निपुण किया जाएगा और वीतराग-विज्ञान की महिमा से छात्रों को परिचित कराया जायेगा।

इसके लिए उन्होंने प्रोफेसर ज्ञान के पिता श्री अरहंत जैन, जो स्वयं एक अनुभवी शिक्षाविद् थे, को बुलाया और उन्हें अपने विचारों से अवगत कराते हुए परामर्श किया ।

वे भी वर्तमान शिक्षा के दोषों को दूर करना चाहते थे, पर अभी तक वे यह सोचकर पीछे हट जाते थे कि – 'अकेला एक चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। अतः चुप रहने में ही सार है ।'

परन्तु अब जब उन्हें एक श्रीमंत का सहारा मिला तो उनका उत्साह तो दस गुणा बढ़ा ही, साहस भी बढ़ गया और उन्होंने इस दिशा में सोचना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने सेठ लक्ष्मीकान्त को आश्वस्त किया कि "मैं तीन माह के अन्दर ही उन्हें इस विषय की आद्योपांत लिखित रूपरेखा प्रस्तुत कर दूँगा ।"

× × ×

सेठ लक्ष्मीकान्त ने श्री अरहत जैन से मनोवाछित रूपरेखा पाते ही एक करोड़ रुपये देने की घोषणा करके अपने सकल्प के अनुसार शिक्षा केन्द्र को साकार रूप तो दे दिया, पर वे उसे फूलता-फलता नहीं देख पाये । उनके मरणोपरान्त श्री अरहंत जैन के निर्देशन मे वह नव सस्थापित आदर्श शिक्षा सस्थान प्रारम्भ मे एक दशक तक तो अपने उद्देश्यो की ओर अग्रसर रहा, पर उनकी भी आँखे बन्द होते ही उसकी व्यवस्था कुछ ऐसे हाथो मे पहुँच गई, जिन्हें धर्म और सस्कृति से तो कोई लगाव था ही नही, सामान्य शिक्षा व्यवस्था को सुचारु रीति से चलाने का अनुभव भी नही था। इस कारण अब वह शिक्षा सस्थान केवल राजनैतिक चर्चा-वार्ता और अध्यापको की आजीविका का साधन मात्र बनकर रह गया था ।

पिता के दिवगत हो जाने से अनायास ही विज्ञान के कोमल कंधों पर सम्पूर्ण उद्योग-व्यापार और घर-बाहर का बोझ आ गया था । इस कारण बहुत दिनो तक तो वह कहीं आ-जा भी नहीं सका और उसका किसी से मिलना-जुलना भी नहीं हो पाया था । पर उसने अपनी चतुराई और दूरदर्शिता से व्यापार को कुछ इस तरह से सभाला और ऐसा व्यवस्थित किया कि उसकी आर्थिक आय पर विपरीत प्रभाव भी न पड़ा और अधिक व्यवस्था भी न रही ।

× × ×

विज्ञान अपनी पढ़ाई पूरी करके जब से होस्टल से वापिस घर आया है, तब से अब तक वह अनेक लोगो के मुँह से ज्ञान और सुदर्शन की कार्य-शैली की काफी कुछ प्रशसा सुन चुका था ।

इतना तो उसे भी ज्ञात था कि उन दोनो ने अपने घर पर रह कर ही अपने नगर के उस शासकीय विद्यालय मे आद्योपात शिक्षा प्राप्त की है, जहाँ पढ़ाई के नाम पर इकट्ठे होने वाले छ
तो अधिकाश परस्पर एक-दूसरे के सच्चे-झूठे प्रेम-प्रस

हुआ करते और अध्यापक लोग राजनीति एवं राजनेताओं पर कपोल-कल्पित टीका-टिप्पणियाँ किया करते।

इन परिस्थितियों में भी वे दोनों अपने परिश्रम के बल पर बोर्ड एवं विश्वविद्यालय की प्रत्येक परीक्षा में लगभग पहला-दूसरा स्थान ही पाते रहे । ज्ञान एम. ए., पीएच. डी. करके प्रोफेसर हो गया है और सुदर्शन एल. एल. बी. करके वकील बन गया है ।

व्यवसाय के क्षेत्र में वे चले तो अपने-अपने पिता के पद-चिन्हों पर ही, पर कार्य-शैली में वे उनसे बिल्कुल भिन्न तरीके से आगे बढ़ रहे थे । उनकी नवीन कार्य-शैली की नगर में सर्वत्र चर्चा थी ।

अतः विज्ञान की उनसे मिलने की इच्छा प्रबल हो उठी थी, पर कार्य की व्यस्तता के कारण अभी तक वह उनसे मिल नहीं पाया था।

× × ×

एक दिन अपने व्यस्त कार्यक्रम में से समय निकालकर विज्ञान अपने बालसखा प्रो. ज्ञान से मिलने उसके घर गया । उससे मिलते ही हाथ के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाते हुए विज्ञान ने कहा — "गुडमॉर्निंग मि. ज्ञान !"

ज्ञान ने विज्ञान के द्वारा किए गये गुडमॉर्निंग को अनसुना कर बात बदलने की नियत से कहा — "ओ हो ! विज्ञान तुम! ----- यहाँ ------! अचानक कैसे याद आ गई कृष्ण कन्हैया को सुदामा की यह कुटिया? जब से तुम पढ़कर लौटे, तब से तो ईद के चाँद ही हो रहे हो, कभी दिखते ही नहीं, किस दुनिया में रहते हो आजकल?"

विज्ञान ने भी ज्ञान की औपचारिकता का उत्तर देना आवश्यक न मानते हुए पुनः कुछ जोर से कहा— "गुडमॉर्निंग मि. ज्ञान!"

ज्ञान ने विस्मय भाव से कहा, "क्या कहा ? गुडमॉर्निंग ! मित्र गुडमॉर्निंग नहीं, जयजिनेन्द्र कहो जयजिनेन्द्र ।"

"क्यों भाई ज्ञान ! जयजिनेन्द्र क्यों ? गुडमॉर्निंग क्यों नहीं?" — विज्ञान ने जिज्ञासा प्रकट की ।

ज्ञान ने समाधान किया – "हम जैन है न !"

विज्ञान ने कहा – "यह तो मै भी जानता हूँ कि हम जैन हैं, पर क्या जैनों को जयजिनेन्द्र करना ही जरूरी है ? क्या हम गुडमॉर्निंग नही कर सकते है ?"

ज्ञान ने समझाया – "अरे भाई ! वैसे तो सब स्वतत्र हैं, सभी अपनी-अपनी मर्जी के मालिक है । जो जिसके जी मे आये करे । कौन किसको रोक सकता है । पर हमारे उपास्य देव तो जिनेन्द्र भगवान ही हैं न ? अतः हमारे लिए तो वे ही प्रातःस्मरणीय हैं । इसलिए हम प्रातः सर्वप्रथम अपने उपास्य देव – जिनेन्द्र देव का स्मरण करने के लिए जयजिनेन्द्र करते है और करना चाहिए ।

देखो न! प्रत्येक रामभक्त 'जय रामजी' करता हैं या नही? प्रत्येक खुदाभक्त 'खुदाहाफिज' कहता है या नहीं ? प्रत्येक गुरुभक्त 'जयगुरुदेव' कहता है या नही ? प्रत्येक हिन्द प्रेमी 'जयहिन्द' कहता है या नहीं?

जब सर्वत्र ऐसा है तो तुम्ही सोचो – प्रत्येक जिनेन्द्र भक्त को जयजिनेन्द्र करना चाहिए या नही ?"

विज्ञान ने कहा – "यह सब तो ठीक है, पर इस सब मे एक तो साम्प्रदायिकता की गध आती है और दूसरे ये अभिवादन पुरातनपन्थी से लगते है, अतः अटपटे भी लगते है, तथा 'गुडमॉर्निंग' एक कोमल शब्द है, इससे किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष का सम्बन्ध भी नहीं है। अतः मुझे तो 'गुडमॉर्निंग' अभिवादन ही अच्छा लगता है ।"

ज्ञान ने पुनः समझाने का प्रयत्न किया – "देख भाई ! अच्छा-बुरा तो सस्कारो पर निर्भर करता है । तुझे पूरे पन्द्रह वर्ष उसी वातावरण मे रहते-रहते वैसी ही आदत पड़ गई है और तू भारतीय सस्कृति से अच्छी तरह परिचित भी नही है, अतः अच्छे लगने की तो बात अलग है, पर यदि तू तर्क-युक्ति से विचार करेगा तो तुझे स्वय अपनी कमजोरी का पता चल जायेगा ।

मैं पूछता हूँ "यदि तुझे भारतीय अभिवादनों में साम्प्रदायिक और पुरातन पन्थ की गंध आती है तो क्या गुडमॉर्निंग में पाश्चात्य संस्कृति व आधुनिक सभ्यता की गंध नहीं है ? और क्या पाश्चात्य संस्कृति में कोई धार्मिक विचारों को स्थान नहीं है?

अरे भाई ! सभी वर्गों में अपने-अपने धर्म हैं, दर्शन हैं, उनके अपने सिद्धान्त हैं, अपने-अपने इष्टदेव हैं, जिन्हें वे प्रातःस्मरणीय मानते हैं और अभिवादन के रूप में स्मरण भी करते हैं ।

क्या हम 'जयजिनेन्द्र' जैसे अपने प्रसिद्ध अभिवादन की उपेक्षा करके दुनिया की दृष्टि में सिद्धान्तविहिन साबित नहीं होंगे ? हमें 'जयजिनेन्द्र' करने में संकोच नहीं होना चाहिए । हमें अपने उपास्य देव को छोड़ अन्य कुछ बोलकर हर एक के सामने गिरगिट की तरह रंग भी नहीं बदलना चाहिए । कोई हम से कुछ भी बोलकर अभिवादन करे, पर हम तो उसके उत्तर में जयजिनेन्द्र ही कहें।"

विज्ञान ने जानने की जिज्ञासा से कहा – "राम, कृष्ण, आदि तो ऐतिहासिक महापुरुष हुए हैं और हिन्दू संस्कृति में इन्हें ईश्वरीय अवतार माना गया है, पर यह जिनेन्द्र कौन हैं ? जिसकी हम जय बोलते हैं; यह मेरी समझ में आज तक नहीं आया।"

ज्ञान ने कहा – "जिन्होंने मोह-राग-द्वेष और इन्द्रियों के विषयों पर विजय प्राप्त कर ली है, जो पूर्ण वीतरागी और सर्वज्ञ हो गये हैं, वे सब आत्माएं जिनेन्द्र हैं ।" जैनधर्म में भी ऋषभदेव से महावीर तक चौवीस तीर्थंकर ऐसे ही जिनेन्द्र हैं जो ऐतिहासिक महापुरुष के रूप में भी मान्य हैं। उनके स्मरण करने से उनसे प्रेरणा पाकर हम भी उन जैसे बन सकते हैं, इसलिए जैन संस्कृति में 'जयजिनेन्द्र' बोलने की परम्परा है ।

विज्ञान ने कहा – "ज्ञान ! तुम्हारा प्रस्तुतीकरण तो बहुत ही बढ़िया है । क्यों नहीं होगा, प्रोफेसर जो ठहरे । पर सवेरे-सवेरे तुम यह

क्या राग छेड़ बैठे हो ? जिससे साम्प्रदायिकता पनपे, ऐसी बात ही क्यो करना ?"

ज्ञान ने दृढ़ता से कहा — "नहीं विज्ञान ! धर्म और दर्शन के सिद्धान्तों से कभी साम्प्रदायिकता नहीं पनपती । फिर यह भारत तो ऐसा बगीचा है, जिसमें विभिन्न धर्म और दर्शन के रंग-बिरंगे फूल खिलते है और सभी अपनी-अपनी पसंद के अनुसार उनकी सौरभ से सुरभित होते है।

धर्म और दर्शनों की दृष्टि से भारत मे विविधता होते हुए भी भारतीय-राष्ट्रीयता की भावना से सब एक है । सभी दार्शनिक एक-दूसरे के धर्म और दर्शनो के बारे मे जानना भी चाहते है। समय-समय पर होने वाले सर्वधर्म सम्मेलन इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं । साम्प्रदायिकता भड़कती है स्वार्थी राजनेताओ द्वारा वोट बटोरने के लिए जातिवाद, वर्गवाद और प्रान्तीयता का विषवमन करने से । या फिर धर्मान्धता से, धर्म से नहीं। धर्म तो गेहूँ के साथ घुन की तरह मुफ्त मे ही पिसता है, व्यर्थ मे ही बदनाम होता है । अतः धर्म मे राजनीति को नहीं आने देना चाहिए। राजनीति में धर्म तो रहे, पर धर्म में राजनीति का क्या काम ? पानी में नाव तो रहती है, पर यदि नाव में पानी आ गया तो वह नाव को ले डूबता है । यही स्थिति धर्म की है । यदि धर्म में राजनीति आ गई तो वह धर्म को भी बदनाम कर देती है।

फिर जैनधर्म तो वैसे भी किसी सम्प्रदाय विशेष का नही है, जो इसका पालन करता है, यह तो उसी का है, देखो न ! जैनधर्म के प्रतिपादक चौबीसों ही तीर्थंकर जाति से क्षत्रिय थे, इसके विवेचक गौतम गणधर ब्राह्मण थे । उनके अनेक आचार्य भी क्षत्रिय और ब्राह्मण कुल के हुए है, पर आज इसके उपासक अधिकाश वणिक है ।"

विज्ञान तुम्हें पता नही "जयजिनेन्द्र' शब्द कितना व्यापक है, कितना पवित्र है और कितना समष्टिगत है? न केवल आदिनाथ से महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर ही जिनेन्द्र है, बल्कि राम, हनुमान भी जिनेन्द्र

हैं, इनके अलावा वे असंख्य-अनंत आत्माएँ जिन्होंने मोह-राग-द्वेष-काम-क्रोधादि विकारों पर एवं इन्द्रियों के विषयों पर विजय प्राप्त कर ली है, पूर्ण वीतरागी और सर्वज्ञ हो गये हैं, वे सभी जिनेन्द्र हैं । जयजिनेन्द्र में इन्हीं सब पवित्र परमात्माओं की ही जय बोली जाती है, किसी व्यक्ति विशेष की नहीं ।

जैनधर्म की मान्यता के अनुसार "प्रत्येक आत्मा द्रव्यस्वभाव से तो भगवान ही है, अपनी भूल को मिटाकर वह पर्याय में भी परमात्म दशा प्रगट कर सकता है। यह तो विशुद्ध आध्यात्मिक धर्म है, आत्मा से परमात्मा बनने की कला सिखाने वाला धर्म है । इसका सम्पूर्ण व्यवहार भी अध्यात्म का ही साधक है।"

विज्ञान ने वातावरण की गम्भीरता को तोड़ते हुए कहा – "ज्ञान! यदि तू एक-एक बात पर ऐसे लेक्चर देगा, तब तो हो गया अपना कल्याण । मैं तो कुछ गपशप लगाने और मनोरंजन करने के विचार से आया था । पर तूने तो मुझे एक अजीब-सी उलझन में डाल दिया है ।

"खैर ! छोड़ो अभी इन बातों को" – यह कह कर समस्या को पीछे धकेलते हुए विज्ञान ने पुनः कहा – "हाँ, और क्या हाल-चाल हैं तेरे ! क्या भाभी लाने का विचार नहीं है ? गृहणी के बिना भी कोई घर कहलाता है ? माता-पिता कब तक साथ दे पायेंगे ? भाभी के आने से उन्हें भी तो कुछ सहारा हो ही जायेगा न ?"

उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना विज्ञान ने आगे कहा – "और सुन! सुदर्शन के क्या हाल-चाल है । वह भी तो बहुत दिनों से नहीं मिला।"

ज्ञान ने कहा – "मेरे और सुदर्शन के काम में मौलिक अन्तर यह है कि मैं तो शिक्षण के क्षेत्र में हूँ, सो इस क्षेत्र में एक तो वैसे भी काफी छुट्टीयाँ होती हैं, फिर कॉलेज के प्रोफेसरों पर प्राथमिक एवं माध्यमिक शालाओं के अध्यापकों की भाँति खाली समय में भी विद्यालय में ही उपस्थित रहने का कोई खास प्रतिबंध नहीं होता, पढ़ने वाले

विद्यार्थी भी कम ही होते है । इसकारण वैसे तो इस क्षेत्र मे समय ही समय है, पर काम जिम्मेदारी का है और गभीर अध्ययन-अध्यापन का है, सो जो व्यक्ति जिम्मेदारी अनुभव करे और काम करना चाहे, उसे तो काम ही काम है और जो न करना चाहे उसे कुछ भी काम नही है।

सौभाग्य से मेरी तो दर्शन और अध्यात्म मे स्वभावतः रुचि है और सयोग से काम भी दर्शनशास्त्र पढ़ाने का ही मिल गया है । इसलिए मेरे लिए तो कॉलेज भी घर जैसा है और घर भी कॉलेज जैसा ही है । एक ही धुन, एक ही काम, एक ही चर्चा-वार्ता । अतः मै तो पूरा दिन फ्री होकर भी व्यस्त हूँ और व्यस्त होकर भी फ्री हूँ ।

पर सुदर्शन एक वकील है; अतः वह कहता है कि मुझे तो मरने की भी फुरसत नही है । एक दिन मैने तो उससे कह दिया कि — "भाई ! यह तो वहुत ही बढ़िया बात है । तू सदा व्यस्त ही रहना, यदि मरने को फुरसत मिल गई तो तेरा सब करा-कराया यो ही रखा रह जायेगा ।

वह तो सकेत मे ही समझ गया । समझदार को इशारा ही काफी होता है न? तभी से वह दोनो समय स्वाध्याय को और दर्शन-पूजन को तो समय निकालने लगा है, बाकी जो व्यस्तता है वह तो है ही।"

विज्ञान ने आश्चर्य प्रकट किया — "क्या वह भी तुम जैसा ही पुरातन पथी वन गया है ? क्या कहा ? दर्शन ! पूजन!! स्वाध्याय!!! किस जमाने की बाते कर रहा है तू ? क्या पूजा-पाठ कोरा ढोग नही है ? क्या पडिताई कोरा पाखड नहीं है?

अरे मित्र ! यह धन्धा वेचारे पण्डितो को ही रहने दो न! समाज को बेवकूफ बनाने के लिए वे क्या कम पड़ते है, जो तुम भी उनके सहयोगी बन गये हो । अरे! तुम्हें तो उन पण्डितो का भडाफोड़ करने का काम करना चाहिए था, ताकि समाज उनके चक्कर से बच सके ।

पढ़े-लिखे प्रोफेसर और वकील होकर भी किन दकियानूसी बातों में पड़ गये हो तुम लोग ?

अरे मानव सेवा करो, मानव सेवा ही सच्चा धर्म है । क्या धरा है इन पत्थरों के पूजने में ? ये पत्थर घिस जाते हैं, पर इन पुजारियों और पण्डितों के पापाचार नहीं घिसते ।"

ज्ञान ने विज्ञान के जोश को ठंडा करते हुए कहा – "अरे मित्र! तुम तो यों ही बहक गये, पहले उससे मिलो तो सही और उसके विचारों से भी परिचित होकर तो देखो, हो सकता है उसके विचार तुमसे मिलते-जुलते हों । जो पण्डित तुम्हें पाखंडी दिखते हैं, जो पुजारी तुम्हें ढोंगी दिखते हैं; हो सकता है, वे पण्डित वास्तव में पाखंडी हों और वे पुजारी भी ढोंगी हों; पर इसका अर्थ यह तो नहीं है कि ज्ञान ही पाखंड हो गया और पूजा-पाठ ही ढोंग हो गये । पूजा-पाठ तो ढोंग नहीं है, ज्ञान तो पाखंड नहीं है ? तो क्यों न हम धर्म का सच्चा ज्ञान अर्जित कर झूठे पाण्डित्य प्रदर्शन का पर्दाफास कर दें ? क्यों न हम सच्चे पुजारी बनकर ढोंगियों के ढोंग को न चलने दें?

इसके लिए पहले स्वाध्याय द्वारा स्वयं को सच्चा ज्ञान अर्जित करना होगा न ?

सुदर्शन एक वकील है, कानून का पंडित है । वह जानता है कि जिस तरह कोर्ट में जाने के पहले तत्सम्बन्धी फाइलें और कानून की किताबें पढ़ना जरूरी है, उसी तरह वीतराग धर्म की वकालत करना हो तो तत्सम्बन्धी साहित्य का आद्योपांत अध्ययन करना भी जरूरी है।"

विज्ञान अपने जोश के साथ होश में आता हुआ बोला – "हाँ, तू बिल्कुल ठीक कहता है, चलो मैं भी उससे मिलना चाहता हूँ और जानना चाहता हूँ कि वह कितने गहरे पानी में हैं ?" यह कहते हुए वे दोनों सुदर्शन के घर की ओर चल दिये ।

●

२

ठंड का मौसम, उसमे भी माघ का महीना, अतः ठंड तो अपने यौवन पर थी ही, मावठ पड़ने और तेज हवाये चलने से ठंड का प्रभाव और भी अधिक बढ़ गया था ।

पर ऐसा कुछ नहीं था कि काम-काज ही ठप्प हो गया हो । दिन-रात चलने वाले कारखाने यथावत चल रहे थे, सड़को पर दौड़ने वाले छोटे-बड़े वाहन बराबर सड़को पर दौड़ रहे थे, मजदूर अपनी मजदूरी पर जा चुके थे, बाजार खुले थे, धंधा-व्यापार भी बराबर चल रहा था ।

स्कूल कॉलेज भी खुले थे और लगभग सब छोटे-बड़े बालक वृन्द अपनी-अपनी पुस्तकें बगल मे दबाये शालाओ मे पहुँच रहे थे ।

पर आदर्श विद्यालय के अधिकाश क्लास रूम खाली पड़े थे । विद्यार्थी न आये हो, यह बात नही थी, पर कक्षा मे अध्यापक के आये बिना वे बालक वहाँ बैठे-बैठे करते भी क्या । अतः कुछ पुस्तकालय मे चले गये थे, कुछ टी-स्टाल मे जा बैठे थे और कुछ खेल के मैदान मे इधर-उधर घूम रहे थे तथा कुछ क्लास रूम के आस-पास खड़े-खड़े अध्यापको के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

प्राचार्य महोदय अपने प्राचार्य कक्ष मे बैठे-बैठे न्यूज पेपर पढ़ने मे व्यस्त थे । दो-चार अध्यापको को छोड़कर शेष सभी अध्यापक शिक्षक कक्ष मे हीटर जलाये चुनावी चर्चा का आनन्द ले रहे थे ।

× × ×

ज्यो ही प्रोफेसर ज्ञान ने दर्शन शास्त्र का प्रथम पीरियड पढ़ाने के बाद शिक्षक कक्ष मे प्रवेश किया तो उसे आया देख उसके ही साथ

नियुक्त हुए एक नये साइंस के शिक्षक ने धीरे से लोगों की निगाहें बचाकर पंखा चला दिया ।

वहीं वैठे हिन्दी साहित्य के वरिष्ठ शिक्षक ने विस्मय भाव से पूछा– "अरे ! इतनी सर्दी में यह पंखा किसने चलाया है ?"

तीसरे एक अधेड़ उम्र के कॉमर्स के शिक्षक ने व्यंग्य करते हुए कहा – "बेचारा प्रो. ज्ञान पढ़ा-पढ़ा कर पसीना-पसीना हो गया है न ? और पढ़ाते-पढ़ाते उसका माथा भी तो गरम हो गया होगा न? बस, इसी कारण उस पर कृपा करके किसी दीनदयाल ने ही चलाया होगा ।"

चौथे अंग्रेजी के शिक्षक ने कहा – "अच्छा, तो यह बात है ! मैं समझा नहीं था कि यहाँ भी ऐसे दीनदयाल हैं ।"

पाँचवें अध्यापक ने चौथे को निशाना बनाकर कटाक्ष किया – "तुम समझोगे भी कैसे ? पुरानी पीढ़ी के थर्ड क्लास अध्यापक जो ठहरे। तुम में अक्ल ही कितनी है ।"

उनमें से एक पुराने अधायपक को प्रो. ज्ञान के प्रति किया गया नये अध्यापकों का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा, अतः उसने कहा – "अरे भाई! ये व्यर्थ की बातें बन्द भी करो न ! इस तरह एक भले आदमी का मजाक उड़ाना तुम्हें शोभा नहीं देता ।

विषय वदलने की भावना से उसने प्रो. ज्ञान से प्रश्नवाचक मुद्रा में पूछा – "क्यों ज्ञान ! तुम्हारे उस ज्ञापन का क्या हुआ, जिसमें तुमने वर्तमान शिक्षा नीति और गिरते हुए शिक्षा स्तर के बारे में शासन का ध्यान आकर्षित करने की योजना बनाई थी ?

गंभीर व्यक्तित्व के धनी प्रो. ज्ञान ने सबकी सब बातों को धैर्यपूर्वक शान्ति से सुन लिया । किसी पर भी कोई प्रतिक्रिया प्रगट नहीं की। चेहरे पर भी कोई घृणा या क्षोभ का भाव नहीं आने दिया; क्योंकि ज्ञान के लिए यह सब चर्चा-वार्ता कोई नई बात नहीं थी । उसे तो आये दिन किसी न किसी वात को लेकर इसी तरह व्यंग्य-वाणों का

निशाना बनना ही पड़ता था; क्योकि उसकी कर्तव्यनिष्ठा उसके नये साथियो को पसद नही थी, "पर खटमलो के कारण खाट और बिस्तर थोड़े ही फैंक दिया जाता है और मच्छरो की वजह से मकान थोड़े ही छोड़ दिया जाता है ।" यह सोचकर वह अपने कर्तव्य को बराबर नियमित रूप से करता रहा ।

बस, उस बेचारे का अपराध ही केवल यह था कि वह अपने कर्त्तव्य के प्रति इतना जागरूक क्यो है ? वह उनके कदम से कदम मिलाकर क्यो नही चलता ? जैसा वे सब करते हैं, वही सब वह क्यो नहीं करता ? जब वे सब हीटर से हाथ सेक रहे थे, तब उसने कक्षा क्यो ली ? वह सबका साथ छोड़कर अकेला ही अधिकारियो और विद्यार्थियो का चहेता क्यो बनना चाहता है ?

ज्ञान की टीका-टिप्पणी करते हुए अध्यापक आपस मे बाते कर रहे थे।

एक शिक्षक बोला – "उसका क्या ? न कोई आगे, न कोई पीछे और न स्वय को भी कोई शौक, इस कारण उसका खर्च ही क्या है? पर हम तो बाल-बच्चो वाले है न ? अतः हमे तो ट्यूशने भी चाहिए न ? यदि यही पर सब कुछ पढ़ा देगे तो हमारे पास ट्यूशन से पढ़ने कौन आयेगा ? कभी-कभी तो पीरियड छोड़ने का बहाना मिलता है, सो उसे भी …। ये हजरत न कभी स्वयं चैन से बैठेगे और न दूसरो को बैठने देगे ।"

दूसरे ने कहा – "इसके घर मे कोई मन लगने-लगाने के साधन तो है नही, इस कारण समय से भी दस-बीस मिनट पहले यहाँ आ जाना और जब तक पूरा विद्यालय बद न हो जाय तब तक विद्यालय मे जमे रहना तथा प्रत्येक पीरियड को पूरे समय तक घसीटना तो इसका स्वभाव-सा बन गया है । सो इसकी तो यें जाने; पर इसके कारण आजू-बाजू की कक्षाओ के शिक्षको को भी पूरा पीरियड लेना पड़ता है। वे बेचारे कभी पाच-दस मिनट पहले भी पीरियड नहीं छोड़ पाते ।"

तीसरे ने कहा – "हाँ यार ! इसके इस आदर्शवाद ने हम लोगों को तो तंग कर ही रखा है, प्राचार्य भी इससे परेशान रहते हैं । यह उन्हें भी समय-समय पर कर्त्तव्य का पाठ पढ़ाये बिना नहीं मानता। वे नये-नये आये हैं न ? और इसकी पहुँच ऊपर तक है, बस इसी से इसका दिमाग सातवें आकाश में चढ़ रहा है । और यह उनका प्रिय भी बनना चाहता है । ठीक है, हम भी देख लेंगे, यह अपने आपको समझता क्या है ? हम भी ऊपर तक पहुँचना जानते हैं ।"

जब अध्यापकों की व्यंगोक्तियों और ईर्ष्याभरी वार्ता सुनते-सुनते बहुत देर हो गई तो उन्हीं में से एक गंभीर प्रकृति के अध्यापक ने ज्ञान के पक्ष में बोलते हुए कहा – "देखो भाई ! तुम कुछ भी कहो; पर वह आदमी है तो ईमानदार । परिश्रमी भी है और भला भी है। वह जो भी करता है, जनहित की दृष्टि से तो ठीक ही करता है।

यदि तुम भी अपने हृदय पर हाथ रखकर स्वयं अपनी आत्मा से पूछो तो तुम्हारी अंतरात्मा भी यही कहेगी कि – 'वह जो भी करता है सब ठीक ही करता है ।' तुम्ही बताओ वह बुरा क्या करता है?

तुम लोग उसे इतना सताते हो, अपमानित भी करते हो, तब भी वह बेचारा तुम्हारे विरुद्ध कभी-कहीं मुँह नहीं खोलता । उसने आज तक न कभी विज्ञान के साथ अपनी बचपन से चली आ रही मित्रता का लाभ उठाया और न अपने पिता के प्रभाव का ही उपयोग किया। यदि कोई और होता तो ... ।

चौथे ने कहा – "बात तो तुम ठीक कहते हो, परन्तु .... ।

"परन्तु क्या ?" – पहले शिक्षक ने कहा ।

पुराने शिक्षक ने आँख बदलते हुए उत्तर दिया – "यह किन्तु .... परन्तु लगाकर मैं किसी को इस तरह बिना कारण अपमानित करना व सताना सहन नहीं कर सकता । मैं उस सीधे-सादे सज्जन व्यक्ति की सज्जनता को इस तरह अपमानित नहीं होने दूँगा । तुम्हें पता होना चाहिए कि वह मेरा शिष्य भी रहा है ।"

वातावरण का रुख बदला देख शेष लोगो की आगे कुछ बोलने की हिम्मत तो नही हुई, पर कुछ ने मुँह टेड़ाकर उपेक्षाभाव प्रदर्शित तो कर ही दिया । और सबने थोड़ी देर के लिए चुप्पी साध ली ।

वातावरण की गम्भीरता को पुनः भग करते हुए बात बदलकर एक ने दूसरे से आपस मे कहा — "मित्र ! तुम्हारी कल की भाग ने तो ऐसा रंग जमाया कि मै चौबीस घटे मे मुश्किल से यहाँ आने लायक हो पाया हूँ । उसके नशे से कल का पूरा दिन तो बेकार हो ही गया, आज भी कुछ काम करने जैसी स्थिति नहीं है । लिखने मे हाथ काँपते है और चलने मे पैर । बड़ा बुरा नशा होता है भाग का । तुम्हें मालूम है कि मै कभी भाग नही पिता, फिर तुमने बिना बताये ठंडाई के नाम पर भग क्यो पिला दी ?

एक अन्य शिक्षक बोला — "तो क्या हुआ ? कोई रोज-रोज थोड़े ही घुटती है और उसमे नहीं पीने जैसी बात ही क्या है ? अरे ! यह तो भगवान शकर की प्रिय बूटी है, शकर की ! समझे ? यदि पियोगे ही नही तो पीना सीखोगे कैसे ?

तीसरे ने सिगरेट सुलगाकर कश लगाते हुए बहस को बद करने की नियत से कहा — "यह सब तो जो हुआ सो हो गया । अब इस पर बहस करने से क्या लाभ? अब तो यह बताओ कि अगले रविवार के मनोरंजन के लिए क्या कार्यक्रम बनाया है ?"

चौथे ने व्यग्य मे कहा — "अरे भाई ! क्या तुम्हें इतना भी होश नहीं है ? अभी-अभी तुमने सास्कृतिक कार्यक्रम के सयोजक प्रो. ज्ञान साहब की यह सूचना नही पढ़ी कि — "अगले रविवार को सास्कृतिक कार्यक्रम के अन्तर्गत भाषण, निबन्ध एव खेलकूद प्रतियोगिताये आयोजित की गई है, उनमें सभी की उपस्थिति प्रार्थनीय है ।"

पाँचवें ने सूचना के शब्दों मे से "बाल की खाल निकालते हुए "उपस्थिति प्रार्थनीय ही तो है, अनिवार्य तो नही ।"

"हाँ, है तो प्रार्थनीय ही" — एक अन्य ने कहा ।

"बस तो फिर क्या है, बना देंगे कोई बहाना । तुम तो यह बताओ कि तुम्हारा मनोरंजन का कार्यक्रम क्या है ? सप्ताह में एक ही दिन तो मिलता है इसके लिए, उस दिन भी यही माथा-पच्ची ! ...

बातों-बातों में दूसरा पीरियड भी पूरा हो गया, पर अध्यापकों की बातें पूरी नहीं हो पाईं। विद्यार्थी भी आखिर कक्षा में बैठे-बैठे कब तक प्रतीक्षा करते । वे भी एक-एक करके वहाँ से खिसकने लगे ।

कुछ ने बारह से तीन वाले शो में सिनेमा जाने का कार्यक्रम बना लिया । कुछ इधर-उधर हो गए और कुछ अपने-अपने घर चले गये।

× × ×

जो माता-पिता बालकों की पढ़ाई के प्रति जागरूक थे, जिम्मेदारी अनुभव करते थे, उनमें से एक ने पूछा — "क्यों राजू ! आज तुम विद्यालय से इतने जल्दी वापस कैसे आ गये ?

राजू एक क्षण तो चुप रहा, फिर प्राचार्य के प्रति अपने असंतोष को प्रकट करते हुए व्यंग्य में बोला — "आज हमारे प्राचार्य महोदय की कन्डोलेन्स मीटिंग (शोक सभा) के कारण छुट्टी हो गई है ।"

राजू के भोले-भाले पिता राजू के व्यंग्य की भाषा न समझ सके। अतः उन्होंने गंभीर होकर पश्चाताप प्रगट करते हुए कहा — "अरे! यह तो बहुत बुरा हुआ ! बेचारे बहुत भले आदमी थे ।

राजू तीखे स्वर में बोला — "क्या कहा पापा ! भले आदमी ! अरे ! किसने बना दिया उसे प्रिंसिपल ?" और तुम कहते हो कि बहुत बुरा हुआ ! पापा ! यदि ऐसा बुरा असल में एक बार हो जाता तो कहीं अधिक अच्छा होता । हम लोगों को उनके पुतले जला-जलाकर बार-बार नकली कन्डोलेंस तो न करनी पड़ती । उनके नाम पर बार-बार रोने से तो बच जाते ।"

"राजू ! तू क्या बकता है ? क्या तुम लोगों ने प्रिन्सिपल का पुतला जलाया है ? यह तो तुम लोगों ने अच्छा नहीं किया ।"

"अरे पापा ! मैने कुछ नहीं किया । मै करता भी कैसे ? आपका बेटा जो ठहरा ! पर आप किस-किस को रोक लेगे ? जब वे स्वयं जिन्दा रहकर भी मरे जैसे सिद्ध हो रहे हैं । कोई कुछ भी कहे, उनकी कान पर जूँ तक नही रेंगती । उन्हें तो न्यूज पेपर पढ़ने से ही फुरसत नही मिलती ।

कौन पीरियड ले रहा है, कौन नहीं ले रहा है, कौन अब आया, कब चला गया ? कुछ देखते ही नहीं । देख भी लेते है तो कुछ कहते नही हैं।

वे ऑफिस मे बैठे-बैठे अखबार पढ़ते रहते और अध्यापक लोग स्टाफ रूम मे गप्पे लगाते रहते । विद्यार्थियो को तो छुट्टी से स्वभाव से ही प्रेम होता है । कोई बहाना मिला नहीं कि एक-एक कर खिसकने लगते है । दस-पाँच जो पढने के प्रति सीरियस होते है, जब वे 'सर' से पढ़ाने को कहते, तो उनसे यह पूछा जाता, कितने लड़के हैं क्लास रूम मे ?

उत्तर मिलता — "दस-बारह"

सर कहते — "बस, दस-बारह ही ! बाकी कहाँ गये ?"

छात्र कहता — "सर ! यहाँ-वहाँ घूम-फिर रहे होगे, आप क्लास मे पहुँचेगे तो आपको देखकर शायद और दस-पाँच आ जावे ।"

सर का उत्तर होता — "अच्छा-ऐसा करो, कल सबको रोककर रखना, ठीक है न ?"

बस, आये दिन यही होता है । वे दस-पाँच छात्र भी निराश हो मुँह लटकाये चल देते ।

यदि शिक्षको को बार-बार बुलाने जाते तो लड़के अलग झगड़ते और शिक्षक अलग झिड़कते । बहुत हुआ तो कह देते, चलो ! बैठो क्लास मे । अभी आते है । पर उनकी वह 'अभी' कभी नही होती । आखिर कोई कब तक इन्तजार करे रोज-रोज ? धीरे-धीरे लड़के

का अर्थ समझने लगे थे, अतः 'अभी' शब्द सुनते ही सब घर को चल देते ।

मैंने भी सोचा – "चलो घर ही चलें, वहीं कुछ पढ़ेंगे-लिखेंगे ।"

राजू के पिता को राजू की दर्द भरी कहानी सुनकर दुःख तो हुआ, पर फिर भी उन्होंने कहा – "बेटा । कुछ भी हो, परन्तु तुम्हें अपने गुरुजनों के बारे में ऐसा नहीं सोचना चाहिए । वे तुम्हारे गुरु हैं, अतः आदरणीय हैं, क्या तुमने एकलव्य की कहानी नहीं पढ़ी ? क्या तुमने महाभारत में गुरु द्रोण और अर्जुन आदि का परस्पर व्यवहार नहीं देखा ?

भविष्य में कभी ऐसी भूल नहीं करना तथा जो लड़के ऐसा कोई भी काम करें, उनका साथ नहीं देना । समझे !"

"समझ गया, पापा ! अच्छी तरह समझ गया । क्यों पापा ! क्या यहाँ इससे अच्छा और कोई विद्यालय नहीं है ?"

"हाँ, एक ईसाई मिशन का विद्यालय है, जहाँ पढ़ाई एकदम बढ़िया होती है, पर"

"पर क्या ?" – राजू ने जिज्ञासा प्रगट की ।

"कुछ नहीं, सोचूँगा, इस विषय में क्या हो सकता है ।" – पापा ने कहा ।

× × ×

जब प्राचार्य महोदय का अखबार के पूरे पृष्ठों का आद्योपांत स्वाध्याय हो चुका तो एक घंटे बाद रुआब के साथ ऑफिस से बाहर निकले। देखते क्या हैं कि पन्द्रह सौ विद्यार्थियों में केवल दो-सवा दो सौ विद्यार्थी ही चार कक्षाओं में पढ़ते दिखाई दे रहे हैं । शेष सभी सोलह कक्षाएँ खाली पड़ी थीं।

कक्षाओं को खाली देखकर पहले तो उन्हें जरा-सा जोश आया, पर शिक्षककक्ष तक पहुँचते-पहुँचते उनका वह जोश भी ठंडा हो गया ।

फिर क्या था, बड़े ही विनम्र स्वर में बन्धुत्वभाव व्यक्त करते हुए बोले – "क्यों बन्धुओं ! क्या हो रहा है ?

अध्यापको मे अधिकाश तो अपने अपराध बोध के कारण नीची निगाहें करके चुप रहे, पर एक चालाक प्रकृति के मुँहबोले अध्यापक ने साहस बटोरकर बहाना बनाते हुए कहा — "सर ! क्या है कि आज ठंड अधिक पड़ रही है न ? इस कारण अधिकाश लड़के तो आये ही नही थे। हाँ, जो थोड़े से आये थे, वे भी दाँत किटकिटा रहे थे । दो-चार ने पीरियड लेने को भी कहा, पर आप ही सोचिए न ! भला ऐसी ठंड मे यदि दस-पन्द्रह लड़को को पढाने बैठ भी जावे तो जो नही आये, वे पिछड़े जाते न ? इसलिए हम लोगों ने सोचा — "जब पूरी उपस्थिति होगी तभी पढ़ाना ठीक रहेगा !"

दूसरे ने कहा — "सर ! लगभग यही स्थिति सब कक्षाओ की थी । हाँ मे हाँ भराने के लिए दूसरे शिक्षको की ओर मुँह करके कहा— "क्यो थी न ?"

समवेत स्वर मे सब ने कहा — "हाँ, देखो न ! कितनी ठंड है ? हाथ भी बाहर नहीं निकाले जाते । भला ऐसे मे पढ़ाना ...।

"हाँ, सो तो है ही" — प्राचार्य ने भी हाँ मे हाँ मिला दी ।

वे भी सबके साथ बैठकर अपने अखबारी ज्ञान का प्रदर्शन करते हुए राजनीति की चर्चा करने लगे ।

× × ×

शिक्षा सस्थान की गिरती हुई स्थिति और धूमिल होती हुई छवि की जानकारी जब भी किसी नागरिक द्वारा व्यवस्थापिका समिति को दी जाती तो वे सस्था या शिक्षको के प्रति राग-द्वेष का परिणाम कहकर उसे टाल जाते थे ।

इस विषय मे उनका कहना था कि — "काम करने वालो को भलाई-बुराई तो झेलनी ही पड़ती है । धीरे-धीरे उनका सोच भी इसीतरह का बन गया था ।"

प्राचार्य भी अपने बचाव के लिए ऐसा ही कुछ स्पष्टीकरण दे दिया करते थे ।

पर जब शिकायतें सुनते-सुनते व्यवस्थापिका समिति के कान पक गये और पानी सिर से ऊपर पहुँच गया तो समिति ने सक्रिय होकर एक जाँच समिति की नियुक्ति कर दी ।

फिर जाँच समिति की रिपोर्ट के अनुसार समिति द्वारा प्राचार्य और प्राध्यापकों को यह नोटिस दिये गये कि "यदि छह मास के अन्दर स्थिति में सुधार नहीं हुआ तो पूरे विद्यालय परिवार पर कठोर कार्यवाही की जायेगी ।

जिन मूल उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शिक्षा संस्थान स्थापित किया गया है, यदि उनमें किंचित् भी उदासीनता बरती जायेगी तो सम्बन्धित व्यक्ति की तो विना नोटिस दिए ही तत्काल प्रभाव से तुरंत सर्विस समाप्त कर दी जायेगी । यदि आवश्यक समझा गया तो विद्यालय भी बन्द किया जा सकता है और उससे हुई क्षति की जिम्मेदारी संस्था की नहीं होगी ।

इसके सिवाय व्यवस्थापिका समिति ने प्रो. ज्ञान की संस्था के प्रति समर्पण की भावना, कर्तव्यनिष्ठा और छात्रों के प्रति हित की भावना उसे उपप्राचार्य पद पर पदोन्नत कर दिया ।

जिन अध्यापकों को जाँच समिति द्वारा दोषी ठहराया गया था, उनकी तीन-तीन वर्ष तक के लिए वेतन वृद्धि रोक दी गई ।

अध्यापकों को सुधरने का अवसर प्रदान करने हेतु एक विशेष आदेश यह भी दिया गया कि यदि उन्होंने एक वर्ष के अन्दर अपने चरित्र को सुधार कर स्वयं को शिक्षण में सक्षम और योग्य सिद्ध कर दिखाया तो उन्हें तीन-तीन अतिरिक्त वेतन वृद्धियाँ देकर प्रोत्साहित किया जायेगा।"

× × ×

अन्त में समिति के अध्यक्ष ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा — "काश ! ज्ञान जैसे समर्पित और ईमानदार व्यक्ति इस संस्था को मिलते रहें तो अभी भी कुछ नहीं विगड़ा । एक न एक दिन यह संस्था अवश्य ही अपने उद्देश्यों में सफल होगी ।"

अध्यक्ष की भावनाओ का सम्मान करते हुए प्रो. ज्ञान की प्रशसा मे इसी आशय का एक प्रस्ताव पारित करके श्रेष्ठ कार्यकर्ताओ को प्रोत्साहित करने का अभिनन्दनीय कार्य भी व्यवस्थापिका समिति ने किया। •

सप्त व्यसनों का त्यागी और अष्ट मूलगुणों का धारी व्यक्ति ही आत्मा-परमात्मा की बात समझ सकता है, सात तत्त्वों की बात समझ सकता है, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की पहचान कर सकता है । अतः प्रत्येक जैन श्रावक को सप्त व्यसनों का त्यागी और अष्ट मूलगुणों का धारी होना चाहिये ।

सामान्यत: मद्य-मास-मधु और पाँचों उदुम्बर फलों का त्याग ही अष्ट मूलगुण है । मूलगुण अर्थात् मुख्यगुण, जिनके धारण किये बिना श्रावकपना ही सभव नहीं । जिसप्रकार मूल (जड़) के बिना वृक्ष का खड़ा रहना सभव नहीं है, उसीप्रकार मूलगुणों के बिना, श्रावकपना भी सभव नहीं है ।

ये मुख्यरूप से आठ है, अत: इन्हें अष्ट मूलगुण कहते हैं । मद्य-मास-मधु व पाँच उदुम्बर फलो का सेवन महादु:खदायक और अपार पापो का घर है अर्थात् इनके खाने-पीने से महापाप उत्पन्न होता है; अतः इनका त्याग करके निर्मल बुद्धि को प्राप्त श्रावक ही जैनधर्म के उपदेश का पात्र होता है ।

— सामान्य श्रावकाचार, पृष्ठ-6

३

यह वही शिक्षाकेन्द्र है, जो ईसाई मिशन के लोकप्रिय शिक्षा संस्थान के समानान्तर भारतीय संस्कृति व सभ्यता की सुरक्षा हेतु, आध्यात्मिक विचार और अहिंसक आचरण के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने हेतु, नैतिकता और सदाचार के संस्कार डालने हेतु एवं पश्चिमी संस्कारों व दुर्व्यसनों से दूर रखने के पवित्र उद्देश्य से विज्ञान के पिता द्वारा दो दशक पूर्व स्थापित किया गया था ।

इन्हीं उद्देश्यों से प्रभावित होकर नगर के श्रीमंतों ने भी लाखों रुपयों का योगदान इस संस्थान को दिया था । उसी के फलस्वरूप धीरे-धीरे यह संस्थान वट-वृक्ष की तरह बढ़ा और नगर में ही नहीं, पूरे प्रदेश के सबसे बड़े और श्रेष्ठ शिक्षा-संस्थान के रूप में पहचाना जाने लगा था ।

प्रारम्भ में एक दशक तक, जबतक मूल संस्थापक सेठ लक्ष्मीकांत और उनके सहयोगी श्री अरहंत जैन रहे तब तक तो यह संस्थान अपने उद्देश्यों के प्रति जागरूक रहा; पर संस्थापक और सहयोगी श्री अरहंत जैन के दिवंगत होते ही गत कुछ वर्षों से इसकी छवि धूमिल होते-होते स्थिति यहाँ तक आ पहुँची कि अब उसकी चर्चा सुनते ही शर्म से आँखें नीचे झुक जाती हैं ।

× × ×

इस शिक्षाकेन्द्र के अन्तर्गत पहली कक्षा से लेकर स्नातकोत्तर स्तर तक कला, विज्ञान एवं वाणिज्य आदि सभी प्रमुख विषयों के पठन-पाठन की व्यवस्था है ।

वैसे शासन तो आवश्यकतानुसार स्वयं छोटी-छोटी जगहों पर भी अपने शिक्षाकेन्द्र स्थापित करता है, सो यह तो जिला स्तर का नगर

है, अतः यहाँ भी शासकीय शिक्षा की आद्योपान्त व्यवस्था है, फिर भी शासन ने निजी शिक्षा-सस्थाओ की स्थापना को प्रोत्साहित कर रखा है और भरपूर अनुदान भी दे रखा है; क्योकि शासन से भी यह बात छिपी नही है कि शासकीय शिक्षाकेन्द्रो की तुलना मे निजी शिक्षा-सस्थान श्रेष्ठ सेवाये करते हैं, अच्छा परीक्षा परिणाम देते है । पर गत कुछ समय से इस शिक्षाकेन्द्र की छवि धूमिल हो रही है ।

इस शिक्षा सस्थान की छवि धूमिल होने मे छात्रो से कही अधिक हाथ प्राचार्य एव अध्यापको की अक्षमता, अयोग्यता एव उनकी आर्थिक कमजोरी का था, साथ ही व्यवस्थापिका समिति का नियुक्तियो के समय अनावश्यक हस्तक्षेप एव देख-रेख मे लापरवाही और राजनेताओ की स्वार्थपरक नीति का था ।

× × ×

श्री अरहंत जैन इसी नगर के शासकीय शिक्षा-सस्थान की माध्यमिक शाला के निवर्तमान प्रधानाध्यापक थे । यद्यपि उन्हे अपने जमाने का एक सफल प्रधानाध्यापक कहा जा सकता था; क्योकि उन्होने अपने परिश्रम, प्रतिभा और नैतिकता के बल पर छात्रो मे तो एक अच्छे प्रधानाध्यापक की पहचान बना ही ली थी, जनता मे भी जनप्रिय हो गये थे । पर सहायक अध्यापको से अपेक्षित सहयोग न मिल पाने के कारण उनके कठिन परिश्रम का पूरा लाभ छात्रो को नहीं मिल पाता था । इस कारण उन्हें मन मे असतोष भी बना रहता था, परन्तु परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी वन गई थी कि वे सम्पूर्ण समर्पण के बाद भी कुछ कर नहीं पा रहे थे ।

जब भी वे अपने अधीनस्थ अध्यापको पर कुछ कठोर अनुशासनात्मक कार्यवाही करते तो अध्यापकगण लापरवाही से प्रतिक्रिया प्रगट करते हुए यह कहकर उनका सामना करने को तैयार हो जाते कि "बहुत करेगा तो स्थानान्तरण ही तो करा सकता है, कोई जान थोड़े ही ले लेगा ?"

"बात भी सच थी । स्थानान्तर कराने के सिवाय वे बेचारे उन अकर्मण्य अध्यापकों का कर भी क्या सकते थे ? जिसके भय से कुछ सुधार की संभावना हो । और स्थानान्तरण से भी क्या होने वाला है ? साँपनाथ जायेंगे तो नागनाथ आयेंगे । उन्हें क्या फर्क पड़ने वाला था ? अतः वे हताश होकर बैठ गये थे और शान्ति से अपना समय व्यतीत कर रहे थे । उनकी सेवानिवृत्ति के भी केवल दो वर्ष ही शेष बचे थे, अतः उन्होंने शेष समय को शान्ति से निकालने का मानस बना लिया था तथा उन्होंने अपने बेटे प्रो. ज्ञान को भी यही सलाह दी थी कि – "यद्यपि इन परिस्थितियों में अब शिक्षा जैसा पवित्र कार्य करना अपने बूते की बात नही रही; पर परिस्थितियों से घबड़ा कर पलायन करना, पीछे हटना भी तो कायरता होगी । अतः मेरी सलाह मानो तो कोई ऐसा उपाय सोचो, जिससे शिक्षक अपने कर्तव्यों के प्रति पूर्ण जागरूक रहने लगे और शिक्षण का पूरा कायाकल्प हो जाय ।"

ज्ञान के कानों में उसके पिता श्री अरहंतदास के ये शब्द गूंज ही रहे थे कि इसी बीच सेठ लक्ष्मीकांत द्वारा प्रस्तावित योजना से अरहंतदास की कल्पनाओं को साकार रूप मिल गया था ।

बस, फिर क्या था अरहंतदासजी ने अपने सपनों के अनुरूप एक आदर्श शिक्षा संस्थान की स्थापना कर डाली तथा ज्ञान को भी इसी क्षेत्र में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया ।

यद्यपि ज्ञान की इच्छा इस क्षेत्र में कार्य करने की नहीं थी, क्योंकि वह उस विद्यालय की हालत देख चुका था, जिसमें वह स्वयं पढ़ा था; परन्तु वह एक तो पिता का आज्ञाकारी पुत्र था, दूसरे स्वयं भी इस क्षेत्र में कुछ आदर्श प्रस्तुत करने की भावना रखता था एवं पिता के भावनाओं को भी साकार करना चाहता था ।

इसकारण शिक्षा समाप्त होते ही वह नव स्थापित आदर्श शिक्षा संस्थान के महाविद्यालय में दर्शन विभाग का प्राध्यापक बन गया ।

प्रो. ज्ञान ने उसी शासकीय शिक्षालय मे शिक्षण प्राप्त किया था, जो शिक्षालय के नाम पर कलक था, जिसकी दशा दयनीय थी । जिसमे प्रधानाध्यापक के पद पर काम करते हुए अधिकारियो और सहयोगी अध्यापको की अकर्मण्यता के कारण श्री अरहंतदास चाहते हुए भी शिक्षण मे कुछ भी सुधार नही कर पाए थे । फिर भी ज्ञान ने अपनी प्रतिभा व परिश्रम के बल पर आदि से अन्त तक सभी कक्षाओ मे प्रथम श्रेणी प्राप्त की थी ।

यद्यपि उसका मित्र विज्ञान अपने पिता सेठ लक्ष्मीकात की मृत्यु के बाद उस नव स्थापित आदर्श शिक्षा सस्थान का सस्थापक अध्यक्ष बन गया था । अतः यदि ज्ञान चाहता तो विज्ञान से कहकर एक-एक अध्यापको की असलियत का भडाफोड़ करके उन्हे मनचाहा दण्ड दिला सकता था; पर वह इस बारे मे विज्ञान की पुरानी मित्रता का लाभ नही उठाना चाहता था, इस कारण चुप रहता था ।

पर, विद्यार्थी अवस्था मे उसने "वर्तमान शिक्षा-पद्धति के गुण-दोष एव वर्तमान शिक्षा नीति मे क्रातिकारी परिवर्तन की आवश्यकता" जैसे विषयो पर हुई भाषण एव निबन्ध प्रतियोगिताओ मे भाग लिया था । इस कारण उसका इस विषय पर गहन चिन्तन था । और पतनोन्मुख सस्थान को पुनः प्रगतिशील बनाने की योजना भी उसके मस्तिष्क मे थी; पर अभी वह उस अवसर की तलाश मे था, जब उसे कुछ कर दिखाने का अवसर मिले, अधिकार मिले । वह ऐसे घोड़े पर बैठना पसद नहीं करता था, जिसकी लगाम दूसरो के हाथ मे हो ।

उप प्राचार्य पद पर पहुँचने के बाद और अपनी योग्यता से व्यवस्थापिका समिति की नजरो मे चढ़ने के उपरान्त प्रो. ज्ञान ने शिक्षा मत्री से लेकर शिक्षा शास्त्रियो तक सभी को एक ज्ञापन लिखकर भेजा, जिसमे उसने लिखा कि — "आज के होनहार बालक ही तो कल के भारत के भाग्य विधाता, राष्ट्र के नायक और देश के भावी कर्णधार बननेवाले है ।

इन हरे बांस की भाँति मनचाहे मुड़ने योग्य, कोमलमति नन्हें-मुन्ने बालकों के चरित्र निर्माता, उनमें नैतिकता के बीज बोने वाले गुरुजन कैसे होने चाहिए । वर्तमान संदर्भ में यह बात गम्भीरता से विचारणीय है ।

वर्तमान में प्राथमिक शालाओं के अधिकांश अध्यापक बहुत साधारण योग्यता के होते हैं । न उनका कोई अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व, न उनमें कोई प्रतिभा । वस्तुतः उनमें से अधिकांश में तो गुरु बनने जैसा गौरव ही नहीं होता ।

उन्हें न्यूनतम योग्यता के आधार पर नियुक्तियाँ दे दी जाती हैं। यही एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें सबसे कम भीड़ है । जब कहीं काम नहीं मिलता तो लोग यहाँ आते हैं ।

आप स्वयं ही सोचें कि छट-छटकर बचे हुए लोग कैसे होते होंगे? क्या ऐसे व्यक्तियों को उन कोमलमति बालकों के गुरुत्व का गुरुत्तर भार सौंपा जा सकता है ? नहीं, कदापि नहीं । पर, सौंप दिया जाता है ।

सौपने के बाद यह देखने की फुरसत भी किसी को नहीं मिलती उन बालकों के बहुमूल्य जीवन के साथ क्या/कैसा खिलवाड़ हो रहा है ?

उन अध्यापकों में भी अधिकांश को तो अपने साइडबिजनेस — पार्ट टाइम जॉब और गाँवों में पंचों-सरपंचों तथा अधिकारियों के आगे-पीछे फिरने के कारण बालकों को पढ़ाने का समय ही नहीं मिलता । वे साइडबिजनेस न करें तो उनका खर्च कैसे चलेगा ? सरपंचों आदि की खुशामद न करें तो नौकरी सुरक्षित कैसे रह सकेगी ? उन्हें पढ़ाने-लिखाने में उत्साह भी नहीं होता; क्योंकि उन न वैसी योग्यता है और न

जबकि शिक्षण के क्षेत्र मे सर्वाधिक बुद्धिमान और प्रतिभावान व्यक्ति आना चाहिए; क्योंकि अध्यापक न केवल अक्षर ज्ञान देनेवाला एक सामान्य व्यक्ति होता है, बल्कि वह बालको के चतुर्मुखी व्यक्तित्व का विकास करनेवाला एव उनके चरित्र का निर्माता भी होता है ।

यदि एक इन्जीनियर भूल करेगा तो कोई बड़ा अनर्थ होने वाला नहीं है, उसकी भूल से कुछ मकान, पुल या बाध ही ढहेंगे, एक डॉक्टर भूल करेगा तो भी कोई बड़ी हानि नहीं होगी, केवल थोड़े से बीमार ही परेशान होगे, एक मैनेजर भूल करेगा तो कोई कलकारखाना या मिल ही घाटे में जायेगा और कोई सी.ए. भूल करेगा तो थोड़ा-बहुत हिसाब ही गड़बड़ाएगा; परन्तु यदि अध्यापक भूल करेगा तो पूरे राष्ट्र का ढाँचा ही चरमरा जायेगा; क्योंकि अध्यापक भारत के भावी भाग्य-विधाताओं के चरित्र का निर्माता है, कोमलमति बालकों में नैतिकता के बीज बोनेवाला और अहिंसक आचरण तथा सदाचार के संस्कार देनेवाला उनका गुरु है । अतः उसे न केवल प्रतिभाशाली, बल्कि सदाचारी और नैतिक भी होना चाहिए ।

गुरु जैसे गरिमामयी पद पर सामान्य व्यक्तियो को नहीं चुना जाना चाहिए । डॉक्टरो और इन्जीनियरो से अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान अध्यापको को मिलना चाहिए और इस क्षेत्र मे उनसे भी कही अधिक प्रतिभाशाली और बुद्धिमान व्यक्तियो का चयन होना चाहिए; क्योंकि यहाँ भौतिक वस्तुओ के बिगड़ने-सुधरने की बात नहीं है, यहाँ तो चेतन-आत्माओं को सस्कारित करने का महत्त्वपूर्ण प्रश्न है ।

एतदर्थ डॉक्टरो, इंजीनियरो जैसी ही सब सुविधायें और आकर्षक वेतनमान अध्यापक को भी आवश्यक है, अन्यथा अच्छे प्रतिभाशाली लोग इस क्षेत्र मे नही आयेगे । कम से कम प्रथम श्रेणी से नीचे स्तर के व्यक्ति को तो अध्यापक होना ही नही चाहिए ।

पर पता नही शासन क्या सोचता है ? वह शिक्षा के इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र मे सबसे निम्न स्तर के लोगो को क्यो ले लेता है ? जो अन

किसी काम के योग्य नहीं माने जाते । न जाने उन्हें छोटे-छोटे बालकों को अध्यापन के योग्य क्यों मान लिया जाता है ? जबकि इन्हें तो अत्यन्त कुशल, मनोवैज्ञानिक, मननशील और जागरूक अध्यापकों की आवश्यकता है ।"

प्रस्तुत ज्ञापन द्वारा ज्ञान ने बड़ी विनम्रता से दृढ़ संकल्प के साथ शासन का ध्यान इस ओर आकर्षित किया ।

यदि शिक्षा विभाग ने ज्ञान के इस ज्ञापन पर ध्यान दिया तो निश्चित ही शिक्षण-संस्थाओं का कायाकल्प हो सकता है ।

× × ×

जो भी संगठन, संस्था या व्यक्ति अपने पसीने की कमाई से प्राप्त धन का सदुपयोग करके शिक्षाकेन्द्र स्थापित करता है, वह उसके माध्यम से कोई ऐसा लोक-कल्याणकारी कार्य करना चाहता है, जिससे आगामी पीढ़ी का लौकिक और पारलौकिक जीवन सुखी हो ।

यदि उसका यह प्रयोजन पूरा न हो तो केवल अर्थकारी लौकिक शिक्षा के लिए वह इतना भारी खर्च वहन क्यों करे ? और इतनी भारी व्यवस्था का भार भी अपने ऊपर क्यों ले ? वह काम तो शासन स्वयं ही करता है और शासन उसके लिए प्रतिबद्ध भी है ।

निजी संस्थाओं की रीति-नीति और उद्देश्यों से शासन न तो कभी अनभिज्ञ ही रहा है और न भ्रमित ही । फिर भी शासन अधिकतम निजी शिक्षा केन्द्रों की स्थापना और संचालन को प्रोत्साहित करता है। न केवल प्रोत्साहित करता है, बल्कि उन्हें अधिकतम अनुदान भी देता है ।

इससे स्पष्ट है कि शासन न तो नैतिक शिक्षा, भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का विरोधी है और न अहिंसक आचरण एवं आध्यात्मिक विचारों का निषेधक ।

यदि कोई शिक्षा-संस्था लौकिक पढ़ाई के साथ छात्रों में सदाचार के संस्कार डालने का महान कार्य करती है, उनमें भारतीय संस्कृति

और सभ्यता का बीजारोपण करती है, उन्हें नैतिकता का पाठ पढ़ाती है, भगवान महावीर जैसे परम पुरुष के द्वारा निरूपित अहिंसा और अपरिग्रह के सदेश द्वारा देश मे शांति और समाजवाद लाने का वातावरण बनाती है, तो वह राष्ट्रोन्नति मे प्रशसनीय और अभिनन्दनीय सहयोग ही तो करती है ।

भला, ऐसे कार्यो मे शासन को ही क्या, किसी भी जाति या वर्ग को क्या विरोध हो सकता है ? यदि ऐसा करने मे कोई सस्थान या अधिकारी सकोच करता है या हाथ खीचता है सो यह तो उसकी स्वय की ही कमजोरी है, इसमे शासन का कोई दोष नही है ।

पर पता नही, अभी तक हमारी अधिकाश निजी शिक्षा-सस्थाये अपने इन उद्देश्यो मे सफल क्यो नही हो पायी है ? वे अपने मन ही मन भले ही खुश हो ले कि वे शिक्षा के क्षेत्र मे बहुत कुछ उल्लेखनीय कार्य कर रही हैं, पर जो कुछ भी वे वर्तमान मे कर रही है, उसमे शासन का बोझ अपने माथे पर ढोने के सिवाय समाज का अपना कुछ भी नही है ।

इस सदर्भ मे ईसाई मिशन की शिक्षा-सस्थाओ से प्रेरणा ली जा सकती है । वे उत्तम शिक्षण के साथ छात्रो मे ईसाई सस्कृति के सस्कार डालने से कभी नही चूकती ।

४

यद्यपि सुदर्शन के पिता नगर के नामी एडवोकेट थे और उनकी वकालत भी सबसे अच्छी चलती थी, पर वे नहीं चाहते थे कि उनका बेटा सुदर्शन भी वकालत का ही व्यवसाय करे; क्योंकि उन्हें इस बदनाम सुदा व्यवसाय से घृणा हो गई थी ।

प्रतिदिन दिन में अनेक बार पुराण, कुरान और बाइबिल पर हाथ रखकर सत्य बोलने की शपथ के साथ सम्पूर्णतः असत्य का सहारा लेते-लेते वे ऊब चुके थे, अन्दर से टूट चुके थे ।

न जाने कितने निरपराधियों को वे जेल भिजवा कर उनके बाल-बच्चों की बद्दुआयें ले चुके थे । और अपनी झूठी जीत पर मानो स्वयं ही हंस रहे हों — ऐसी नकली हंसी-हंसकर लोगों को मूर्ख बनाया करते थे ।

अपनी बुद्धि के बल पर सबल कुतर्कों से अनगिनत अपराधियों को ८ दिला चुके थे, जो उनके किताबी कानूनों की साया में सीना ताने नगर में मार-पीट, लूट-खसोट, तोड़-फोड़ से लोगों को आतंकित कर अपनी दादागिरी का रौब जमाये हुए थे ।

अब तक वे जवानी के जोश में होश खोकर अन्य साधारण वकीलों की दौड़ में आगे निकलने के लिए नीति-अनीति की परवाह किये बिना दौड़ रहे थे। पर विवेक जागृत होते ही इस झूठे यश और धन के लोभ की पराकाष्ठा ने अब उन्हें झकझोर दिया था, अब वे आत्मग्लानि से भर चुके थे । अतः अब वे किसी भी कीमत पर अपने बेटे को इस पाप की दल-दल में नहीं फंसने देना चाहते थे ।

इसी कारण उन्होंने सुदर्शन को बचपन से ही नैतिक शिक्षा और धार्मिक संस्कार दिए थे और उसे अधिकतम धार्मिक वातावरण में रखने का प्रयास किया था ।

× × ×

४

यद्यपि सुदर्शन के पिता नगर के नामी एडवोकेट थे और उनकी वकालत भी सबसे अच्छी चलती थी, पर वे नहीं चाहते थे कि उनका बेटा सुदर्शन भी वकालत का ही व्यवसाय करे; क्योंकि उन्हें इस बदनाम सुदा व्यवसाय से घृणा हो गई थी ।

प्रतिदिन दिन में अनेक बार पुराण, कुरान और बाइबिल पर हाथ रखकर सत्य बोलने की शपथ के साथ सम्पूर्णतः असत्य का सहारा लेते-लेते वे ऊब चुके थे, अन्दर से टूट चुके थे ।

न जाने कितने निरपराधियों को वे जेल भिजवा कर उनके बाल-बच्चों की बद्दुआयें ले चुके थे । और अपनी झूठी जीत पर मानो स्वयं ही हंस रहे हों — ऐसी नकली हंसी-हंसकर लोगों को मूर्ख बनाया करते थे ।

अपनी बुद्धि के बल पर सबल कुतर्कों से अनगिनत अपराधियों को अभयदान दिला चुके थे, जो उनके किताबी कानूनों की साया में सीना ताने नगर में मार-पीट, लूट-खसोट, तोड़-फोड़ से लोगों को आतंकित कर अपनी दादागिरी का रौब जमाये हुए थे ।

अब तक वे जवानी के जोश में होश खोकर अन्य साधारण वकीलों की दौड़ में आगे निकलने के लिए नीति-अनीति की परवाह किये बिना दौड़ रहे थे। पर विवेक जागृत होते ही इस झूठे यश और धन के लोभ की पराकाष्ठा ने अब उन्हें झकझोर दिया था, अब वे आत्मग्लानि से भर चुके थे । अतः अब वे किसी भी कीमत पर अपने बेटे को इस पाप की दल-दल में नहीं फंसने देना चाहते थे ।

इसी कारण उन्होने सुदर्शन को बचपन से ही नैतिक शिक्षा और धार्मिक संस्कार दिए थे और उसे अधिकतम धार्मिक वातावरण में रखने का प्रयास किया था ।

× × ×

वकालत का व्यवसाय होने पर भी सत्य के प्रति इतनी निष्ठा अपने आप मे असाधारण बात है । कोई कितनी भी फीस का प्रलोभन क्यों न दे? पर वह झूठे मुकदमे कभी स्वीकार नहीं करता, फिर भी उसके पास इतने मुकदमे आते कि वह अस्वीकार करते-करते हैरान हो जाता।

जिसे सच्चा न्याय दिलाने से ही फुरसत नहीं मिलती हो, वह झूठे मुकदमे ले ही क्यो ? सच को झूठ और झूठ को सच करने में अपनी शक्ति का अपव्यय और वादी-प्रतिवादी के पैसो का अपव्यय करने मे उसका विश्वास नहीं था ।

वह महत्त्वपूर्ण मामले ही लेता था । बहुत से छोटे-मोटे झगड़े तो वह दोनों पक्षो को बुलाकर उन्हें मुकदमो से होने वाली हानियाँ और परेशानियाँ समझाकर परस्पर समझौतावार्ता से स्वयं ही निबटा देता था । कभी किसी को गलत सलाह नहीं देता । बिना कारण किसी को उलझन में नही डालता । इस कारण भी उसकी लोकप्रियता मे चार-चाँद लग गये थे ।

× × ×

रविवार का दिन था, सुदर्शन मन्दिर से सामूहिक पूजन का कार्यक्रम समाप्त करके प्रातः ९.३० बजे घर लौटा ही था कि ज्ञान और विज्ञान सुदर्शन के घर जा पहुँचे । सुदर्शन ने दूर से ही उन्हें देखकर चार कदम आगे बढ़कर स्वागत करते हुए कहा — "आओ, भाई ज्ञान आओ!" फिर विज्ञान की ओर दृष्टि घुमाते हुए सुदर्शन ने कहा — "ओ हो! विज्ञान ! नमस्ते मि. विज्ञान ! तुम तो बहुत दिनो बाद दिख रहे हो? किस दुनिया मे रहते हो आजकल ?

"हाँ, आप ठीक कह रहे हो; पर बात यो हुई कि पिताश्री की अस्वस्थता के कारण मैने ग्रेजुएशन करके पढ़ाई तो छोड़ दी, पर घर आते ही कारोबार सभालने में कुछ ज्यादा ही व्यस्त हो गया, इस कारण इन दिनो कहीं आना-जाना नहीं हुआ, अब थोड़ी फुरसत मिलने लगी

की हैं । अन्यथा इस व्यवसाय में तो हम उल्टे सच बोलने के लिए वाध्य हैं; क्योंकि जिन्हें पुराण और कुरान की साक्षी पूर्वक सच बोलने की प्रतिज्ञा कराई जाती है, वह और उसका सलाहकार असत्य कैसे वोल सकता है या वुलवा सकता हैं?

वकील का काम तो केवल इतना ही है न कि वह न्यायकर्ता और न्याय माँगने वाले के बीच दुभाषिये का काम करे और सत्य पक्ष को उजागर करने में न्यायाधीश की मदद करे ?

यह कौनसी कानून की किताब में लिखा है कि – "वकील धन वटोरने के लिए वादी-प्रतिवादियों को झूठे-सच्चे आश्वासन दे-दे कर मुकदमे लड़वाए और मनमानी फीस वसूल करे ? तथा झूठ को सच और सच को झूठ करने में अपनी शक्ति और जनता के धन का अपव्यय करे ?

अतः पापा ! मैं इसी व्यवसाय को करके यह बता देना चाहता हूँ कि वकालत का काम एक निहायत पवित्र पेशा है, और यह काला कोट काली करतूतों को छिपाने का साधन नहीं, बल्कि सूरदास की उस कामरी का प्रतीक है, जिस पर कृष्ण भक्ति के रंग के सिवाय दूसरा रंग नहीं चढ़ता था । अतः मेरे इस काले कोट पर भी अन्याय, अनीति, वेईमानी और धन के लालच का कोई रंग नहीं चढ़ सकेगा।

× × ×

वस, इसी संकल्प के साथ सुदर्शन ने अपने पैतृक व्यवसाय को ही पसंद किया था । भले ही उसने अपनी पूर्व पीढ़ी से चले आये व्यवसाय में परिवर्तन नहीं किया, पर उसमें उसने आशातीत प्रगति की ।

व्यवसाय में परिवर्तन करके वह पलायनवादी प्रवृति को प्रोत्साहन नहीं देना चाहता था । उसका सोचना था कि रणछोड़दास बनने के वजाय न्यायनीति से रण करना ठीक है ।

अन्तर-वाह्य व्यक्तित्व का धनी सुदर्शन देखने में सुदर्शन तो था ही; सत्यप्रिय, सदाचारी और धर्मप्रेमी भी था ।

वकालत का व्यवसाय होने पर भी सत्य के प्रति इतनी निष्ठा अपने आप मे असाधारण बात है । कोई कितनी भी फीस का प्रलोभन क्यों न दे? पर वह झूठे मुकदमे कभी स्वीकार नहीं करता, फिर भी उसके पास इतने मुकदमे आते कि वह अस्वीकार करते-करते हैरान हो जाता।

जिसे सच्चा न्याय दिलाने से ही फुरसत नहीं मिलती हो, वह झूठे मुकदमे ले ही क्यो ? सच को झूठ और झूठ को सच करने मे अपनी शक्ति का अपव्यय और वादी-प्रतिवादी के पैसो का अपव्यय करने मे उसका विश्वास नहीं था ।

वह महत्त्वपूर्ण मामले ही लेता था । बहुत से छोटे-मोटे झगड़े तो वह दोनो पक्षो को बुलाकर उन्हें मुकदमो से होने वाली हानियाँ और परेशानियाँ समझाकर परस्पर समझौतावार्ता से स्वयं ही निबटा देता था । कभी किसी को गलत सलाह नही देता । बिना कारण किसी को उलझन में नहीं डालता । इस कारण भी उसकी लोकप्रियता मे चार-चाँद लग गये थे ।

× × ×

रविवार का दिन था, सुदर्शन मन्दिर से सामूहिक पूजन का कार्यक्रम समाप्त करके प्रातः ९.३० बजे घर लौटा ही था कि ज्ञान और विज्ञान सुदर्शन के घर जा पहुँचे । सुदर्शन ने दूर से ही उन्हें देखकर चार कदम आगे बढ़कर स्वागत करते हुए कहा – "आओ, भाई ज्ञान आओ!" फिर विज्ञान की ओर दृष्टि घुमाते हुए सुदर्शन ने कहा – "ओ हो! विज्ञान ! नमस्ते मि. विज्ञान ! तुम तो बहुत दिनो बाद दिख रहे हो? किस दुनिया में रहते हो आजकल ?

"हाँ, आप ठीक कह रहे हो; पर बात यो हुई कि पिताश्री की अस्वस्थता के कारण मैंने ग्रेजुएशन करके पढ़ाई तो छोड़ दी, पर घर आते ही कारोबार सभालने मे कुछ ज्यादा ही व्यस्त हो गया, इस कारण इन दिनो कहीं आना-जाना नहीं हुआ, अब थोड़ी फुरसत मिलने लगी

तो मैंने सोचा – 'चलो अपनी पुरानी मित्र-मंडली से भी मिल लूँ । इच्छा तो बहुत दिनों से थी पर ——"

विज्ञान की बात पूरी हुई ही नहीं थी कि ज्ञान हंसी के मूड में आते हुए सुदर्शन से बोला – "मित्र ! तू भी किस नास्तिक से नमस्ते कर बैठा !"

सुदर्शन ने कहा – "क्यों ऐसी क्या बात है ? विज्ञान और नास्तिक ?"

"हाँ, पूरा नास्तिक है, न आत्मा में विश्वास, न परमात्मा में, न खान-पान का विवेक, न दिन-रात का विचार, जब जो जी में आये खाओ-पीओ और सुख से जिओ – ये हैं इसके विचार । विश्वास न हो तो तुम ही पूछ लो" – विज्ञान ने कहा ।

सुदर्शन बोला – "क्यों भाई विज्ञान ! यह ज्ञान क्या कह रहा है ?"

"वैसे तो लगभग ठीक ही कह रहा है, पर मुझे इस सम्बन्ध में तुमसे और ज्ञान से भी बहुत कुछ बातें करनी हैं ।" – विज्ञान ने कहा ।

ज्ञान ने कहा – "देखो ! मैंने कहा था न ? कि अभी यह नमस्ते तो क्या आशीर्वाद का भी पात्र नहीं है । अभी तो इसे पहले ज्ञानगंगा में गहरी डुबकियाँ लगवाकर स्नान कराना पड़ेगा, तब कहीं यह अपने साथ उठने-बैठने लायक होगा । यह इंगलिश स्कूल में जाकर तो बिल्कुल ही नास्तिक हो गया है । नमस्ते तो जयजिनेन्द्र से भी उँचा अभिवादन है ।" 'वीतरागाय नमः', 'महावीराय नमः' की तरह ही 'ते नमः' शब्द से नमस्ते बना है, जिसका अर्थ पूज्य पुरुषों को नमन करना होता है । समझे ?

विज्ञान ने कहा – "प्रोफेसर साहब समझायें और हमारी समझ में न आये – ऐसा कैसे हो सकता है ? समझाओ, समझाओ; और क्या समझाना है । तुम तो सब लोग मिलकर मुझे चाय-पानी की जगह उपदेश ही उपदेश पिलाओ । दार्शनिक जो ठहरे ।

"अरे मित्र ! बातो-बातों मे, मै पानी पिलाना और चाय, काफी की पूछना तो भूल गया । क्षमा करना मित्र !" — कहते हुए सुदर्शन ने नौकर को आवाज लगाते हुए कहा — "रामू ओ रामू ! पानी तो ला !"

खड़े होकर अपने हाथो से पानी के गिलास देते हुए सुदर्शन ने पूछा — "क्यो भाई! और क्या चलेगा ? चाय, काफी या दूध? ज्ञान तो चाय, काफी लेगा नही, यह तो दूध लेगा । पर विज्ञान ! तुम अपनी पसद बताओ !"

ज्ञान बीच मे ही बोला — "यह गरम तो बहुत हो लिया, इसे तो ठडा करने की आवश्यकता है, यदि कोई ठडा पेय हो तो इसे तो वही पिलाओ । क्यो विज्ञान! मैने ठीक कहा है न ?"

"अरे ज्ञान ! हमारा क्या, जो पिलाओगे वही पी लेगे" — विज्ञान ने लापरवाही से कहा ....।

सुदर्शन ने मजाक करते हुए कहा — "देखो भाई ! तुम भले ही कुछ भी पी सकते हो, पर यहाँ तो अभी आपको दूध-चाय और काफी ही मिल पायेगी । यद्यपि तुम मेरे मित्र ही नही मेहमान भी हो, अतः मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए पर ....।"

विज्ञान ने कहा — "अरे मित्र ! मित्रता मे मेहमानी कैसी ? मित्र कभी मेहमान नहीं होता । मित्र तो सदा मित्र ही रहता है । मित्र के आगे मेहमान का मूल्य ही क्या ? तुम मुझे मेहमान बनाकर अपने से दूर मत करो । क्या तुम यह नही जानते कि मित्र और मेहमान मे मौलिक अन्तर होता है ?"

मित्र और मेहमान की आपस मे कोई तुलना ही नहीं है । एक पूर्व है तो दूसरा पश्चिम । मित्र के साथ कोई दुराव-छिपाव नहीं होता, दिलो की दूरी नहीं होती, दोनो की देह दो होती है और दिल एक।

जबकि मेहमान के साथ होता है औपचारिकताओ का पूरा पुलिदा, उसके सामने घर की कोई कमजोरी जाहिर नहीं की जा सकती–उसके

आतिथ्य-सत्कार में कोई कमी नहीं रहनी चाहिए, मन-मस्तिष्क पर ऐसा वोझ वना रहता है । भले ही तुम्हें उधार ही क्यों न लेना पड़े, पर मेहमान का स्वागत-सत्कार तो .... । जब कि मित्र के साथ ऐसी कोई चिन्ता नहीं रहती ।

मेहमान भले प्यासा बैठा रहेगा, पर पानी माँगकर नहीं पियेगा और मित्र चौके में जाकर अपने हाथ से भी चाय बनाकर पी लेगा ।

और सुनो ! मित्र कभी किसी बात का बुरा नहीं मानता और मेहमान यदि बात-बात में बुरा न माने तो वह मेहमान कैसा ? नाराज होना और मनवाना तो मेहमान का जन्मसिद्ध अधिकार है ।

अतः तुम मुझे मित्र ही रहने दो — "मेहमान मत बनाओ, मेरा चौके में जाने का अधिकार तुम मुझसे नहीं छीन सकते ।"

ज्ञान ने हँसी के मूड़ में आकर विज्ञान से कहा — विज्ञान ! तूने मित्र और मेहमान की कैसी सुन्दर व्याख्या की ? मैं तो तुझे विज्ञान का सामान्य विद्यार्थी समझ रहा था, पर तू तो पूरा दार्शनिक निकला। मौलिक चिन्तन में भी मुझसे दो कदम आगे निकल गया ।

× × ×

विज्ञान ने कहा — "खैर ! जाने दो मित्र ! प्रशंसा करके मुझे विना वात चने के झाड़ पर क्यों चढ़ाते हो ?

"प्रशंसा की वात तो है ही, साथ ही जो सत्य है उसे, कहे बिना भी तो नहीं रहा जा सकता ।" — ज्ञान ने कहा ।

वात को वदलते हुए विज्ञान वोला — मुझे अभी-अभी ज्ञान ने वताया कि तुम लोगों के खाने-पीने के भी वड़े नखरे हैं । आलू नही खाते, प्याज नहीं खाते, मूली आदि कोई भी जमीकंद नहीं खाते, आचार-मुरब्बा नहीं खाते, वाजार का वना हलुआ, मिठाई आदि नहीं खाते, रात में नहीं खाते और पता नहीं क्या-क्या नहीं खाते-पीते ? ऐसा क्यों ? आखिर यह सव क्या नाटक है ? इसमें तुम्हारा क्या सिद्धान्त हैं ?

अरे ! जो जब जी मे आये खाओ-पीओ और सुख से जिओ । व्रत, उपवास करके और पौष्टिक पदार्थों का त्याग करके शरीर को क्यों सुखाते हो ? आखिर ये भी कोई जीवन है ? न कोई मनोरंजन, न कोई मौज-मस्ती । धर्म के नाम पर किस पाखडवाद के चक्कर मे पड़ गये हो ? अरे ! तुम पूजा-पाठ का ढोंग रचने के बजाए जनता की सेवा करो । सेवा ही सच्चा धर्म है ।"

विज्ञान बैठक मे बैठा-बैठा ज्ञान से यह कह ही रहा था कि इसी बीच सुदर्शन अन्दर से बैठक मे आ गया और उसने मेहमान की मर्यादा रखते हुए मित्र के नाते विज्ञान से जरा ऊँचे स्वर मे कहा – "विज्ञान! ज्ञान का सदाचारी, नैतिक और धार्मिक जीवन आखिर तुझे पाखण्ड-सा क्यो लगता है? और यदि पत्थर पूजने मे कुछ नहीं है तो तू कागज के टुकड़ो को क्यो पूजता है ?"

विज्ञान ने विस्मय भाव से कहा – "क्या कहा ? मैं कागज के टुकड़े पूजता हूँ, किसने कह दिया यह तुम से?"

सुदर्शन ने कहा – "कहेगा कौन ? मैने अपनी आँखो से देखा है ।"

"कब" ? विज्ञान ने फिर विस्मय भाव से पूछा ।

सुदर्शन ने दृढ़ता के साथ कहा – "कब क्या ? तू अपने दादाजी के फोटो पर नित्य नई-नई बहुमूल्य मालाये पहनाता है या नहीं ?"

विज्ञान ने कहा – "हाँ, डालता हूँ, पर इससे तुम्हें क्या लेना-देना है? तुम्हें पता नही, मेरे दादाजी के मेरे ऊपर कितने उपकार हैं ? वे मुझ से कितना प्यार करते थे ? मै आज जो भी है उनकी कृपा से हूँ । अतः उनकी मै जितनी भी कृतज्ञता ज्ञापित करूँ, कम ही है । पर तुम पूजा-पाठ की बातचीत के बीच मे मेरे दादाजी को क्यो घसीट लाये ?"

सुदर्शन ने कहा – "अरे विज्ञान ! तुम्हारे दादाजी ने तो केवल चार-पाँच वर्ष ही तुम से प्यार किया और तुम्हारी देख-भाल

शिक्षाप्रद पौराणिक कथायें सुना-सुना कर सु-संस्कार डाले । जब इतने मात्र से तुम्हारी उन पर ऐसी भक्ति और इतना प्रेम उमड़ता है कि तुम उनकी फोटो पर प्रतिदिन नियमित रूप से एक से बढ़कर एक चन्दन की मालायें पहनाते हो तो जिन तीर्थंकरों ने हमारे अनन्त काल के अनन्त दुःख दूर करने का सन्मार्ग दिखाया हो, हम यदि उनकी मूर्ति बनाकर पूजा-भक्ति करते हैं, तो तुम्हें हमारा यह कार्य ढोंग-सा क्यों लगता है ?

सुदर्शन के तर्क ने विज्ञान की बोलती तो बन्द कर दी, उसे निरुत्तर तो कर दिया, पर अभी विज्ञान के हृदय को ज्ञान का पूजा-पाठ करना स्वीकृत नहीं हुआ ।

अतः उसने कहा – "भाई ! तुम कुछ भी कहो, परन्तु फोटो पर माला पहनाना मुझे जैसा स्वाभाविक लगता है वैसी स्वाभाविकता पूजा-पाठ में नहीं लगती ।"

सुदर्शन ने पहले तो व्यंग में कहा – "हाँ, ठीक है तुम्हारा खून तो खून और हमारा खून पानी । खैर, कोई बात नहीं, यह तो मन माने की बात है । तुम अपने विचारों के लिए स्वतंत्र हो । विचार तो मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है ।"

सुदर्शन ने अब भी अपने मन से हार नहीं मानी, अतः उसने विज्ञान का समाधान करने की भावना से पुनः कहा – "अरे भाई ! जहाँ तक स्वाभाविक और अस्वाभाविक लगने की बात है सो उसका कारण तो यह है कि जैसा प्रत्यक्ष परिचय तुम्हारा पूर्वजों से है वैसा तीर्थंकरों से नहीं। जब तुम पूर्वजों की भाँति ही तीर्थंकरों से और उनकी वाणी से भी प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त कर लोगे तो तुम्हें उनकी पूजा-भक्ति में भी वैसी ही अनुभूति होने लगेगी ।"

सुदर्शन के तर्क और युक्तियों से विज्ञान कुछ हिल तो गया, पर अभी बदला बिल्कुल नहीं ।

•

५

चिन्ता हो या चिन्तन – नीद तो दोनो मे ही नहीं आती, पर चिन्ता से चिन्तन श्रेष्ठ है । चिन्ता एक मानसिक विकृति का नाम है और चिन्तन है विशुद्ध तत्त्वविचार । चिन्ता अशान्ति और आकुलता की जननी है और चिन्तन है निराकुलता और शान्ति का स्रोत । चिन्तायें चेतन को जलाती है और चिन्तन राग-द्वेष को, मन के विकारों को। चिन्ताओं के घेरे में आत्मा अनुपलब्ध रह जाता है और चिन्तन से होती है आत्मतत्व की उपलब्धि ।

अतः विवेकीजन चिन्ताओं की राह छोड़कर चिन्तन की राह ही पकड़ते है । तत्त्वचिन्तन ही सदैव आदरणीय है, अनुकरणीय है ।

× × ×

विज्ञान बिस्तर पर पड़े-पड़े बहुत देर तक सोने की चेष्टा करता रहा, पर वह चिन्ताओ के घेरे मे ऐसा उलझ गया था कि उसे रात्रि मे तृतीय प्रहर तक नीद नही आई । आती भी कैसे ? चिन्ता और निद्रा का तो परस्पर साँप और नेवले की तरह जन्मजात वैर-विरोध है ।

चिन्ताओ की परेशानी से बचने के लिए व्यक्ति अचेत हो जाना चाहता है, नीद की गोलियाँ खाकर भी सोना पड़े तो भी सो जाना चाहता है ।

पर, आज विज्ञान की चिन्ता का विषय और कुछ नही, उसके स्वय के अधकारमय भविष्य को ज्योतिर्मय बनाना था, क्योकि सुदर्शन ने और उसके फैम्ली डॉक्टर ने उसको उसकी यथार्थ स्थिति का बहुत अच्छी तरह आभास करा दिया था । इसकारण आज उसके मानस-पटल पर सुदर्शन और डॉक्टर के द्वारा दर्शाये गये उसके भावी जीवन के

दृश्य चलचित्र की भाँति एक के बाद एक उभर कर आ रहे थे और वह उनके सही समाधान की खोज में चिंतित था ।

वह सोच रहा था – "सुदर्शन जो भी कहता है वह सब ठीक ही तो कहता है, उसकी बातें बिना सोचे-समझे यों ही अनसुनी करने लायक नहीं हैं । उसकी एक-एक बात विचारणीय है, अनुकरणीय है।

एक तो वह दुर्व्यसन छोड़ने और दुराचारियों से दूर रहने की सलाह देता है और दूसरे, देवदर्शन करने और समय पर प्रवचनों में पहुँचने का आग्रह करता है, इसके सिवाय वह और कहता ही क्या है ?

उसे तो देखो, कितने व्यस्त कार्यक्रम में से वह इन कामों के लिए अपना समय निकाल लेता है । नया-नया वकील बना है, अतः काम जमाने के लिए जनसम्पर्क करना भी जरूरी है और कानून की किताबें पढ़ना भी अति आवश्यक है । प्रतिदिन सुबह-शाम कम से कम दो घण्टे बैठक में बैठकर फाइलें भी देखना और सम्बन्धित व्यक्तियों से बातचीत करना भी अनिवार्य है; फिर भी वह प्रतिदिन दर्शन-पूजन करने और प्रवचन सुनने से नहीं चूकता । इतना ही नहीं, मुझ जैसे मित्रों का मार्गदर्शन करने और सामाजिक समस्याओं को सुलझाने का समय भी वह निकाल ही लेता है ।

मैं ही एक ऐसा व्यक्ति हूँ जो अपना सारा समय यों ही बिना काम की बातों में बर्बाद करता रहता हूँ । 'मेरे पास समय नहीं, मुझे फुरसत नहीं' – यह तो केवल एक बहाना है । जिसकी जिस काम में रुचि होती है, उस काम के लिए तो उसके पास समय ही समय है । 'हाथ कंगन को आरसी क्या ?' सुदर्शन को ही देख लो न ! कितना व्यस्त है वह, फिर भी समय निकाल लेता है न इन कामों को ?

मेरे पास ऐसा काम ही क्या है ? धंधा व्यापार तो सब पहले से ही जमा-जमाया है और मेरे सौभाग्य से काम-काज की देखभाल करने वाले कर्मचारी अपने काम के प्रति पूर्ण ईमानदार, अनुभवी एवं

पूर्ण कुशल है । मै घर का काम-काज देखता भी कितना हूँ ? फिर भी मै कुछ नही कर पाता ।

वस्तुतः यह मेरी ही कमजोरी है, मै ही अपनी आदतों का दास हो रहा हूँ, इसमे किसी और को दोषी ठहराना ठीक नही है । मुझे स्वयं ही चेतना होगा । मेरे हित मे जो सुदर्शन सोचता है, ज्ञान सोचता है, विद्या भी वही सब चाहती है । मेरी इन्ही आदतो के कारण वह मुझसे रूठी-रूठी-सी भी रहती है । और अब तो डॉक्टर साहब भी यही सलाह देने लगे है ।

वे उस दिन कह ही रहे थे — "यदि आपने मदिरा पान करना और सिगरेट पीना नहीं छोड़ा तो अब आप इस दुनिया मे अधिक दिन नही रह पायेगे । बात कुछ कठोर है, मुझे डाक्टर के नाते तो ऐसी निराशाजनक बात नहीं कहना चाहिए, पर मै एक मित्र के नाते आपको साफ-साफ बता देना चाहता हूँ कि आपकी आँते और लीवर जैसे महत्त्वपूर्ण अग मदिरा के क्षारतत्त्व से अत्यधिक प्रभावित हो चुके हैं । और सिगरेट के धुएँ से आपके फेफड़े भी क्षीण हो चुके हैं । सोच लो । यदि जिन्दगी प्यारी हो तो अब यह सब छोड़ना ही पड़ेगा ।"

विज्ञान ने मन ही मन विचार किया — "ये सब मेरे कोई शत्रु तो हैं नही । लगता है मेरी बुद्धि पर ही पत्थर पड़ गये हैं जो मै किसी की कुछ सुनना ही नही चाहता — और अपनी ही मनमानी किए जा रहा हूँ ।"

डॉक्टर साहब यह भी तो कह रहे थे कि — "अभी भी ऐसा कुछ नही बिगड़ा, जिसका उपचार न हो सके, जो ठीक न हो सके। परन्तु यदि इसी तरह कुछ दिन और चलता रहा और 'पानी सिर पर से गुजर गया' तो फिर भगवान भी नहीं बचा पायेगे तुम्हें, इतना अवश्य समझ लेना । समझदार को तो सकेत ही काफी होता है ।"

डॉक्टर की बाते सुन-सुन कर उनके वयोवृद्ध कम्पोडर चाचा से चुपचाप बैठा नहीं रहा गया और उन्होने भर्राये हुए गले से गद्-

दृश्य चलचित्र की भाँति एक के बाद एक उभर कर आ रहे थे और वह उनके सही समाधान की खोज में चिंतित था ।

वह सोच रहा था – "सुदर्शन जो भी कहता है वह सब ठीक ही तो कहता है, उसकी बातें बिना सोचे-समझे यों ही अनसुनी करने लायक नहीं हैं । उसकी एक-एक बात विचारणीय है, अनुकरणीय है।

एक तो वह दुर्व्यसन छोड़ने और दुराचारियों से दूर रहने की सलाह देता है और दूसरे, देवदर्शन करने और समय पर प्रवचनों में पहुँचने का आग्रह करता है, इसके सिवाय वह और कहता ही क्या है ?

उसे तो देखो, कितने व्यस्त कार्यक्रम में से वह इन कामों के लिए अपना समय निकाल लेता है । नया-नया वकील बना है, अतः काम जमाने के लिए जनसम्पर्क करना भी जरूरी है और कानून की किताबें पढ़ना भी अति आवश्यक है । प्रतिदिन सुबह-शाम कम से कम दो घण्टे बैठक में बैठकर फाइलें भी देखना और सम्बन्धित व्यक्तियों से बातचीत करना भी अनिवार्य है; फिर भी वह प्रतिदिन दर्शन-पूजन करने और प्रवचन सुनने से नहीं चूकता । इतना ही नहीं, मुझ जैसे मित्रों का मार्गदर्शन करने और सामाजिक समस्याओं को सुलझाने का समय भी वह निकाल ही लेता है ।

मैं ही एक ऐसा व्यक्ति हूँ जो अपना सारा समय यों ही बिना काम की बातों में बर्बाद करता रहता हूँ । 'मेरे पास समय नहीं, मुझे फुरसत नहीं' – यह तो केवल एक बहाना है । जिसकी जिस काम में रुचि होती है, उस काम के लिए तो उसके पास समय ही समय है । 'हाथ कंगन को आरसी क्या ?' सुदर्शन को ही देख लो न ! कितना व्यस्त है वह, फिर भी समय निकाल लेता है न इन कामों को ?

मेरे पास ऐसा काम ही क्या है ? धंधा व्यापार तो सब पहले से ही जमा-जमाया है और मेरे सौभाग्य से काम-काज की देखभाल करने वाले कर्मचारी अपने काम के प्रति पूर्ण ईमानदार, अनुभवी एवं

पूर्ण कुशल हैं । मै घर का काम-काज देखता भी कितना हूँ ? फिर भी मै कुछ नही कर पाता ।

वस्तुतः यह मेरी ही कमजोरी है, मै ही अपनी आदतों का दास हो रहा हूँ, इसमे किसी और को दोषी ठहराना ठीक नही है । मुझे स्वयं ही चेतना होगा । मेरे हित मे जो सुदर्शन सोचता है, ज्ञान सोचता है, विद्या भी वही सब चाहती है । मेरी इन्हीं आदतो के कारण वह मुझसे रूठी-रूठी-सी भी रहती है । और अब तो डॉक्टर साहब भी यही सलाह देने लगे हैं ।

वे उस दिन कह ही रहे थे — "यदि आपने मदिरा पान करना और सिगरेट पीना नहीं छोड़ा तो अब आप इस दुनिया मे अधिक दिन नहीं रह पायेगे । बात कुछ कठोर है, मुझे डाक्टर के नाते तो ऐसी निराशाजनक बात नही कहना चाहिए, पर मै एक मित्र के नाते आपको साफ-साफ बता देना चाहता हूँ कि आपकी आँते और लीवर जैसे महत्त्वपूर्ण अग मदिरा के क्षारतत्त्व से अत्यधिक प्रभावित हो चुके हैं । और सिगरेट के धुएँ से आपके फेफड़े भी क्षीण हो चुके हैं । सोच लो ! यदि जिन्दगी प्यारी हो तो अब यह सब छोड़ना ही पड़ेगा ।"

विज्ञान ने मन ही मन विचार किया — "ये सब मेरे कोई शत्रु तो हैं नही । लगता है मेरी बुद्धि पर ही पत्थर पड़ गये हैं जो मै किसी की कुछ सुनना ही नही चाहता — और अपनी ही मनमानी किए जा रहा हूँ ।"

डॉक्टर साहब यह भी तो कह रहे थे कि — "अभी भी ऐसा कुछ नहीं बिगड़ा, जिसका उपचार न हो सके, जो ठीक न हो सके। परन्तु यदि इसी तरह कुछ दिन और चलता रहा और 'पानी सिर पर से गुजर गया' तो फिर भगवान भी नहीं बचा पायेगे तुम्हें, इतना अवश्य समझ लेना । समझदार को तो सकेत ही काफी होता है ।"

डॉक्टर की बाते सुन-सुन कर उनके वयोवृद्ध कम्पोडर चाचा से चुपचाप बैठा नहीं रहा गया और उन्होने भर्राये हुए गले से गद्-गद्

होकर ज्ञान और सुदर्शन के सुखी जीवन का उल्लेख करते हुए कहा – "देखो न विज्ञान ! आज ज्ञान और सुदर्शन की घर में, परिवार में और समाज में भी कितनी इज्जत है ? कितना आदर-सम्मान देते हैं लोग उन्हें ?

और एक तुम हो, जिससे कोई भला आदमी बात करना भी पसन्द नहीं करता । जबकि आज तुम्हारे पास भगवान का दिया सबकुछ है। क्या नहीं है तुम्हारे पास – कोठी, बंगला, मोटरगाड़ी, कल-कारखाने, नौकर-चाकर, मुनीम-गुमास्ते सभी कुछ तो है और तुम्हारी तुलना में उन लोगों के पास क्या है ? कुछ भी तो नहीं है । न बंगला, न गाड़ी; फिर भी लोग उनकी इज्जत करते हैं । सोचा कभी ? ऐसा क्यों हैं ?

इससे स्पष्ट है कि दुनिया में आज भी गुणों का ही आदर है, धन-वैभव का नहीं । भले ही तुम धनी हो, पर तुम्हारे धन से दुनिया को क्या लेना-देना है । घोड़े की पूँछ लम्बी होती है तो उससे वह अपनी ही मक्खी तो भगा सकता है, सवार को उसकी लम्बी पूँछ से क्या लाभ ?'

कम्पोडर चाचा ने आगे कहा – 'जो चन्द्रमा पर थूँकने की कोशिश करता है, सारा थूँक लौटकर उसके मुँह पर ही गिरता है न ? चन्द्रमा का उससे क्या बिगड़ता है ? कुछ भी नहीं ।

तुमने और तुम्हारे साथियों ने ज्ञान और सुदर्शन की हँसी भी उड़ाई, मजाक भी बनाया, अनादर और उपेक्षा भी की, तो भी वे तुमसे नाराज नहीं हुए, उससे उनका बिगड़ा भी क्या ? कुछ नहीं, उल्टे दुनिया की नजर में तुम ही हँसी के पात्र बन गये ।

कितने भले आदमी हैं वे । कभी किसी की बुराई करना और कभी किसी पर क्रोध करना तो वे जानते ही नहीं है, और एक तुम लोग हो जो चौवीसों घण्टे अपनी स्वार्थ साधना में ही लगे रहते हो । तुम्हें

तो अपने ऐशो-आराम और मौज-मस्ती से ही फुरसत नही है, तुम किसी का परोपकार क्या करोगे ?"

उस दिन उनकी बातो का विज्ञान के दिलो-दिमाग पर काफी असर हुआ ? वह चुपचाप घर चला गया ।

× × ×

उस रात्रि मे अपने शयन कक्ष मे पड़े-पड़े कम्पोडर चाचा की बातो पर विचार करते-करते ज्यो ही उसकी पलकें झपकी कि वह स्वप्नलोक मे विचरने लगा ।

स्वप्न मे उसने सुदर्शन को फिर सामने खड़े देखा, जो कह रहा था — "विज्ञान ! तू जिसे आधुनिक सभ्यता समझ बैठा है, वह सभ्यता नही, असभ्यता की पराकाष्ठा है । क्या सातो व्यसनो का सेवन करने का नाम ही सभ्यता है ? क्या माँस, मदिरा का सेवन करना ही सभ्यता है ? क्या 'कालगर्ल्स' के नाम से आहूत पराई बहिन-बेटियो की मजबूरी का ना-जायज फायदा उठाना और उन्हें सदा के लिए नरक के द्वार मे ढकेल देने का नाम ही सभ्यता है ?

अरे ! ये दूसरो के नही, वरन् अपने नरक के द्वार खोलना है।

मै पूछता हूँ कि यदि यही सब सभ्यता है तो फिर असभ्यता क्या है ?

यदि कोई हमारी बहिन-बेटियो से ऐसा दुर्व्यवहार करे तो हमे कैसा लगेगा ? — जरा इस आइने मे झाक कर तो देखो ! फिर तुम्हें जो ठीक लगे सो करो ।

अरे भाई ! किसी ने ठीक ही कहा है — "आत्मनः प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत् अर्थात् जो अपने को अच्छा न लगे — ऐसा व्यवहार दूसरो के साथ मत करो ।"

सुदर्शन कहे जा रहा था और विज्ञान नीची गर्दन किए सुने जा रहा था ।

सुदर्शन ने समझाते हुए आगे कहा – "जरा सोचो, समझो, मैं तुम्हारा बालसखा हूँ, कोई शत्रु नहीं । इधर तुम्हें इस हालत में देखकर और उधर तुम्हारी पत्नी को तुम्हारी दुर्दशा के कारण दुःखी देखकर मुझे भारी वेदना होती है । बस, इसीलिए मैंने तुमसे कठोर भाषा में इतना सब कुछ कह डाला है । इस कारण यदि तुम्हारा दिल दुःखा हो तो मेरे मित्र ! मुझे माफ कर देना ।"

सुदर्शन की अत्यन्त प्रेरणादायक बातें सुनकर विज्ञान पानी-पानी हो गया । उसकी आँखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी । पश्चाताप की अग्नि में तपकर उसका हृदय बहुत कुछ परिवर्तित हो गया था इस कारण अब उसका मानस सुदर्शन की हर बात मानने को तैयार था, पर उसके सामने पहाड़ जैसी परेशानियाँ खड़ी दिखाई दे रही थीं।

उसने साहस बटोर कर आँसू पोंछते हुए सुदर्शन से कहा – "भाई! तुम्हीं बताओ – मैं करूँ तो करूँ भी क्या ? मैं इस आधुनिक सभ्यता की दौड़ में इतना आगे बढ़ चुका हूँ कि जहाँ से वापिस लौटने की मुझे कोई संभावना दिखाई नहीं देती ।"

कहते-कहते वह फूट-फूटकर जोर-जोर से रोने लगा । उसकी रोने की आवाज सुनकर उसके बगल में सो रही उसकी पत्नी विद्या की नींद खुल गई । उसने विज्ञान को आज तक कभी रोते नहीं देखा था । इस कारण वह भी भावुक हो उठी और उसका भी गला भर आया । विज्ञान की पीठ पर प्रेम से हाथ फेरते हुए उसने धीरे से पूछा – "क्या बात है? अभी तक सोये नहीं ? कोई भयानक स्वप्न देखा है क्या ? आज आपको यह क्या हो गया है ? पहले तो मैंने आपको कभी ऐसा रोते नहीं देखा । ये आँखें लाल-लाल कैसे हो गई हैं ? आप तो महिलाओं की तरह फूट-फूट कर और सिसक-सिसक कर ऐसे रो रहे हो जैसे कोई महान अनर्थ हो गया हो; आखिर बात क्या है ? कुछ कहो भी तो !"

एकसाथ अनेक प्रश्न सुनकर आँसू पोंछते हुए और सिसकियाँ संभालते हुए विज्ञान ने कहा — "विद्या ! मैं क्या बताऊं मुझे क्या हो गया? बिचारे सुदर्शन और ज्ञान मेरी चिन्ता में कितने परेशान रहते हैं, मेरे भले के लिए न जाने क्या-क्या सोचा करते हैं, क्या-क्या योजनायें बनाया करते हैं । कल मेरी उनसे अनायास भेट हो गई, तो दोनों ने मुझे एक घण्टे तक समझाया और अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये । उनके कल के विचारो से मै बहुत ही प्रभावित हुआ हूँ ।

वहाँ से लौटते समय मैने सोचा — 'चलो, डॉक्टर साहब के यहाँ से एक्स-रे की रिपोर्ट ही लेता चलूँ — वहाँ गया तो डॉक्टर साहब ने जो कुछ कहा, उससे तो मेरी सारी हिम्मत ही टूट गई ।'

उन्हीं सब समस्याओ के विकल्प मे उलझ जाने से मै अनेक संभावित-असंभावित चिन्ताओ के घेरे मे घिरा रहा । बस इसी उधेड़बुन में रात के दो बज गये । जैसे-तैसे पलक झपके ही थे कि मैं स्वप्न-संसार में पहुँच गया और वहाँ फिर सुदर्शन से भेट हो गई । वह बहुत कुछ तो पहले प्रत्यक्ष मे समझा चुका था, रही-सही कसर उसने स्वप्न मे पूरी कर दी । उसे सुनकर मै इतना भावुक हो उठा कि वास्तव में ही फूट-फूट कर जोर-जोर से रोने लगा हूँ ।

विद्या ! सुदर्शन ने अभी-अभी स्वप्न में मुझे जो मार्गदर्शन दिया है, उसने मुझे ऐसा झकझोरा है कि मेरी नींद तो खुल ही गई, हृदय की बंद आँखे भी खुल गई । उससे मुझे एक नया दिव्य प्रकाश मिला है ।

वैसे भी इन दिनो उन दोनो की मेरे ऊपर बहुत ही स्नेह भरी दृष्टि है । उन्हें जब-जहाँ भी अवसर मिलता है, मेरा मार्गदर्शन अवश्य ही करते हैं, परन्तु खेद है कि मे अब तक उनकी बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं दे पाया हूँ ।"

धैर्य बधाते हुए विद्या बोली — "घबराओ मत ! यदि तुम चाहोगे तो सब रास्ते निकल आयेगे । अभी तक तो तुम्हारी ही समझ में नहीं



विद्या ने बात जारी रखते हुए आगे कहा — "हाँ, तुम्हारा यह सोचना सही है कि वे तुम्हें आसानी से नहीं छोड़ेंगे; क्योंकि सोने के अण्डे देनेवाली मुर्गी को कोई भी आसानी से नहीं छोड़ता । पर, यदि तुम चाहोगे तो उसका भी उपाय मेरे पास है ।

पर अभी उनके छोड़ने न छोड़ने की बात ही कहाँ है ? अभी तो समस्या यह है कि तुम ही उनका साथ नही छोड़ना चाहते हो। क्यो मै ठीक कहती हूँ न ?"

—"नहीं, नही, ऐसी बात नही है विद्या ! मै तुम्हारे माथे पर हाथ रखकर प्रतिज्ञा कर चुका हूँ न ? कि अब मै उनका साथ नही दूगा । कोई भी कीमत क्यो न चुकानी पड़े, पर अब मै उनके सग नहीं रहूँगा ।"

विज्ञान की भावुकता मे ली गई प्रतिज्ञा को पक्का कराने की नियत से विद्या ने कहा — "हे प्रियवर ! भावुकतावश ये भीष्म प्रतिज्ञाये कर लेना एक बात है और उन्हें आजीवन निभाला दूसरी बात; अतः पहले तुम अपने-आप को तो पक्का कर लो । तुम्हें पता है तुम्हारी ये भीष्मप्रतिज्ञाये पहले कितनी बार भग हो चुकी है ? वह तो मै ही हूँ, जो तुम्हारे साथ निभ रही हूँ । कोई और ऐसी-वैसी होती तो बेचारी कभी की बे-मौत मर गई होती ।"

"विद्या ! तुम ठीक कहती हो । मैने तुम्हें बहुत सताया । एक तुम्ही हो जो आशा की ज्योति जलाये चुपचाप सब सहती रही, हिम्मत नही हारी ।

अबतक जो हुआ उसके बारे मे तो क्या कहूँ — पर अब मै तुम्हें एक बार फिर विश्वास दिलाता हूँ कि अब मे ऐसी कोई भूल नहीं करूँगा, जिससे तुम्हें दुःख हो और मुझे पछताना पड़े ।"

कुछ हँसी के मूड मे आती हुई विद्या ने कहा — "विज्ञान ! तुम बाते तो बहुत अच्छी कर लेते हो । इन्हीं मीठी-मीठी बातो मे आकर तो मै तुम्हारे चक्कर मे आ गई थी और तुम्हें अपना दिल दे बैठी ।

करना है, काटे नहीं । कांटों से तो उल्टा बचना है; क्योंकि ऐसा गुलाब का कोई पौधा नहीं, जिसमें फूल ही फूल हों, कांटे न हों। अतः सबको फूलों और कांटों की पहचान अवश्य होनी चाहिए । यह तो हमारे-तुम्हारे विवेक पर ही निर्भर करता है कि हम क्या चुनते हैं ? केवल कांटों को कोसकर, उन्हें बुरा-भला कहकर हम उनके कष्टों से नहीं बच सकते । दूसरों को दोष देने वाले कभी अपनी उन्नति नहीं कर सकते । क्या तुम यह सब भूल गये ?"

अपना स्वयं का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए विद्या ने कहा – "देखो विज्ञान ! मै भी तो कान्वेन्ट स्कूल मे ही पढ़ी हूँ, होस्टल मे भी रही हूँ, वहीं तो हमारा-तुम्हारा प्रथम परिचय हुआ । याद है न ? पर मैने तो आज तक मदिरा छुई ही नहीं, कभी जुआ खेला ही नहीं। पुरुषो के साथ दोस्ती करने के लिए कभी हाथ आगे बढ़ाया ही नहीं। बताइये ! मेरे व्यक्तित्व के विकास मे क्या कमी रह गई ?"

"विद्या ! तुम ठीक कहती हो, पर तुम जैसे कितने हैं ? फिर लड़कियो की बात कुछ और ही है, वे चाहें तो बच सकती है, पर लड़को का अपने साथी-सगियो से बच पाना बहुत कठिन काम है । और फिर हम जैसे बिना पैंदे के मुरादाबादी लोटो की तो बात ही मत करो ! जो किसी का जरा-सा हाथ लगते ही लुढ़क जाते हैं ।"

"अरे विज्ञान ! ये सब तो बच निकलने के बहाने है बहाने ! यदि आदमी ठान ले, दृढ़ सकल्प कर ले तो उसे तो कोई हिला भी नही सकता ।

परेशानियाँ तो लड़को से अधिक लड़कियो को आती हैं । तुम क्या जानो नारियो की दुर्बलता ! यदि जानना हो तो राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त से पूछो, उन्होने साकेत मे खीचा है नारी की दुर्बलता का एक शब्दचित्र –

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी ।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी ॥

स्त्रियाँ कितनी पराधीन होती हैं, तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। हमें एक-एक कदम फूँक-फूँक कर रखना पड़ता है । कह नहीं सकते, हमारे साथ कब क्या घट जाय ? अतः हमें तो हिरणियों की भाँति चौबीसों घण्टे चौकन्ना रहना पड़ता है । कदम-कदम पर शंका-आशंकाओं के कांटों का जाल बिछा रहता है स्त्रियों की राह में । जिन नरपिशाचों के बीच में हमें चौबीसों घंटे रहना पड़ता है, उनसे हम कहाँ तक बचें ?

इन नरपिशाचों की मनोवृत्ति तो तुम जानते ही हो । जैसे मांस पर गिद्ध मंडराते हैं, वैसे ही महिलाओं पर चारों ओर ये कामांध नर-गिद्ध मंडराते ही रहते हैं । गिद्ध तो बेचारे मात्र मरे पशुओं का ही मांस नोचते-खाते हैं पर ये कामी कूकर तो जिन्दा नारियों का मांस नोचने को फिरते हैं ।

कदाचित् किसी महिला में कहीं कोई कमजोरी देखी नहीं कि उसे डरा-धमका कर – उसके साथ ब्लेकमेल कर उसे पथ भ्रष्ट करने से नहीं चूकते । क्या-क्या बतायें महिलाओं की कमजोरियाँ, फिर भी जो दृढ़ संकल्प और विवेक के बल पर उन सब बुराइयों से बचीं रहतीं हैं मैं उन्हें धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकती ।

यदि शेष जीवन को सुखी बनाना है और संतान को भी सदाचारी और सुखी व समृद्ध देखना चाहते हो तो तुम्हें अपने बल पर ही अपने साथियों से संघर्ष करना होगा ।"

विद्या कहे जा रही थी और आज विज्ञान उसकी सब बातें शान्ति से सुन रहा था ।

इस बात से आज विद्या मन ही मन बहुत प्रसन्न थी । बहुत प्रतीक्षा के बाद उसे विज्ञान का मानस कुछ पलटता-सा दिखाई दे रहा था । उचित अवसर पाकर उसने विज्ञान को ज्ञान और सुदर्शन के सम्पर्क बढ़ाने के लिए भी प्रेरित किया ।

वह विज्ञान की कमजोरी को पहचानती थी, वह अच्छी तरह जानती थी कि यह विज्ञान का क्षणिक श्मसानिया वैराग्य है । ये कल वातावरण वदलते ही फिर उसी चक्कर मे आ जायेगे । ऐसा तो पहले भी अनेक वार हो चुका है । –. अतः उसने अपने मन मे दृढ़ निश्चय कर लिया था कि "इन्हें इनकी प्रतीज्ञा के खूँटे से वाँधे रखने के लिए मुझे शतत प्रयत्नशील रहना होगा ।"

•

रागी वन में जाएगा तो कुटिया बनायेगा, वहाँ भी घर बसायेगा, ग्राम और नगर बसायेगा; भले ही उसका नाम कुछ भी हो, है तो वह घर ही । रागी वन मे भी मदिर के नाम पर महल बसायेगा, महलो मे भी उपवन बसाएगा । वह वन मे रहकर भी महलों को छोड़ेगा नहीं, महल मे रहकर भी वन को छोड़ेगा नहीं । -------

------ मित्र रागियों के होते है और शत्रु द्वेपियों के — वीतरागियों का कौन मित्र और कौन शत्रु ? कोई उनसे शत्रुता करो तो करो, मित्रता करो तो करो, उन पर उनकी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है। शत्रु-मित्र के प्रति समभाव का अर्थ ही शत्रु-मित्र का अभाव है ।

— तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, पृष्ठ 67

६

'पानी पीजे छानकर, मित्र कीजे जानकर', — यह लोकोक्ति बताती है कि यदि बीमारियों से बचना चाहते हो तो पानी सदैव छानकर ही पीओ और यदि विपत्तियों से बचना चाहते हो तो मित्र बनाने के पहले मनुष्य को अच्छी तरह से परख लो; क्योंकि दुनिया में ऐसे मतलबी मित्रों की कमी नहीं है, जो केवल स्वार्थ के ही साथी होते हैं, सम्पत्ति के ही संगाती होते हैं, विपत्ति पड़ने पर साथ छोड़कर भाग जाते हैं, अपने मतलब के लिए मित्रों को मुसीबत में डालने से भी नहीं झिझकते और समय-समय पर मित्र की कमजोरियों का अनुचित लाभ उठाने से भी नहीं चूकते ।

संजू और राजू विज्ञान के ऐसे ही मतलबी मित्र थे, जिनकी गिद्ध दृष्टि सदैव विज्ञान के केवल कंचन और कामनी पर ही जमी रहती थी । विज्ञान को इस बात का पता नहीं था कि वे वस्तुतः उसके मित्र नहीं, मित्र के रूप में आस्तीन के साँप हैं । वह तो उन्हें असली मित्र माने बैठा था ।

यद्यपि उसकी पत्नी विद्या संजू और राजू के दुराचरण से शादी के पहले से ही परिचित थी, पर वह व्यर्थ में ही गड़े मुर्दे नहीं उखाड़ना चाहती थी । परन्तु संजू और राजू को हद से आगे बढ़ते देख उसने निश्चय कर लिया था कि यदि विज्ञान को उनके चंगुल से छुड़ाने के लिए आवश्यक हुआ तो वह सबकुछ साफ-साफ बता देगी, जो उसके साथ घटा था ।

विज्ञान वस्तुतः स्वभाव से अत्यन्त सरल और सज्जन व्यक्ति था, अतः वह संजू और राजू से मित्रता बढ़ाते समय यह कल्पना भी नहीं कर सका था कि कोई व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए मित्रता करके उसके

साथ इस स्तर की धोखाधड़ी भी कर सकता है । तभी तो वह इनकी मीठी-मीठी बातो मे आ गया था ।

जो स्वयं सरल, सज्जन और ईमानदार होता है, वह सबको अपने समान ही समझता है; पर जब ज्ञान, सुदर्शन और विद्या के प्रयासों से धीरे-धीरे यह विश्वास हो चला था कि संजू और राजू आदि चारों साथी उसके असली मित्र नहीं है, वे केवल स्वार्थ के ही साथी है, तो उसको उनसे अरुचि हो गई । अब वह एक क्षण भी उनके साथ नही रहना चाहता था ।

× × ×

पर जबतक वह इस निर्णय पर पहुँचा था, तबतक बात बहुत आगे बढ़ चुकी थी । सजू और राजू ने धीरे-धीरे अपनापन दिखा-दिखाकर उसे ऐसे चक्रव्यूह मे फसा लिया था कि अब वह चाहने पर भी उनके चगुल से छूटने की स्थिति मे नहीं था । उन्होने उसे अपने विश्वास मे लेकर उसके व्यापार-धधे सम्बन्धी गुप्त बाते तो जान ही ली थीं, उसे व्यक्तिगत रूप से भी ऐसे दुराचरण का शिकार बना लिया था कि जिनका रहस्य खुलने पर उसका व्यापारिक और पारिवारिक भविष्य अधकारमय बन सकता था । अतः अब वह उनके विरुद्ध अपना मुँह नहीं खोल सकता था और उनका साथ भी नहीं छोड़ सकता था । बस, उसकी इसी कमजोरी का अनुचित लाभ सजू और उसके साथी उठा रहे थे ।

संजू व राजू मान रहे थे कि उन्हें विज्ञान की कमजोरी में एक ऐसा हथियार हाथ लग गया है, जिसके बल पर वे विद्या और विज्ञान को जैसा चाहें वैसा नचाये और जीवन भर मनमाना रुपया भी वसूलते रहें ।

इसी के बल पर सजू ने अपने साथियों पर भी अपना रोब जमा रखा था । कभी-कभी अभिमान मे आकर वह अपने साथियों के कहा भी करता था — "वह विद्या की बच्ची अपने आपको समझ

क्या है ? विज्ञान से शादी क्या हो गई, अपने आपको महारानी ही समझने लगी है । बहुत देखे ऐसे करोड़पति ! बात-बात में व्यंग्य वाण छोड़ती रहती है, सीधे मुँह बात ही नहीं करती । देखो, उस दिन विज्ञान ने कैसा आदर सत्कार किया, पर उसने घास तक भी नहीं डाली । उल्टी चुंगटी ही भरती रही । यदि एक दिन मैंने उसे भी अपने साथ नचाकर नीचा नहीं दिखाया तो मेरा नाम संजू नहीं ।"

राजू को संजू का इसप्रकार बार-बार कहना अच्छा नहीं लगता था । अतः उसका मुँह बन्द करने के लिए उसने व्यंग्य करते आगे कहा – "बेटा ! अधिक शेखी न मारा करो, नाना के आगे ननिहाल की बातें शोभा नहीं देतीं । यदि अपना भला चाहते हो तो उससे जरा बचकर ही रहना । पहले भी तो तुम चोट खा चुके हो ? अन्नू और अज्जू की बीबियों की बात और है, कहीं चनों के धोखे में कंकड़ नहीं चबा बैठना, वर्ना अभी तो सिर के बाल ही उड़े हैं, अब की बार बत्तीसों दाँत गायब हो जायेंगे । इतने जल्दी भूल गये गर्ल्स होस्टल की घटना ?"

झेंप मिटाते हुए संजू बोला – "अरे ! जाने भी दे यार उन सब बातों को । जब की बात जुदी थी, पर अब तो वह मेरे चंगुल में ऐसी फंसी है कि उसे भी नानी याद आ जावेगी । देखता हूँ अब वह मुझसे बचकर कहाँ जायगी ? यदि उसने कुछ भी गड़बड़ की तो विज्ञान सीधा जेल के सीखचों में होगा ।"

× × ×

जब कई दिन तक विज्ञान नहीं पहुँचा तो उसके उन चारों साथियों को चिन्ता हो गई; क्योंकि वही तो एकमात्र उनके बीच पैसे खर्च करने वाला व्यक्ति था ।

सम्भावनाओं पर विचार करते हुए एक ने कहा – "सम्भव है वह इन दिनों कहीं बाहर गया हो ? पर यदि उसका बाहर जाने का कार्यक्रम होता तो या तो वह स्वयं कहकर जाता या अपने अचानक बने कार्यक्रम

की खबर जरूर भिजवा देता । बीमार तो नहीं पड़ गया कहीं ? पर बीमारी की खबर भी तो नहीं दी ?"

दूसरा बोला — "बीमारी की खबर कौन भेजता ? विद्या तो हमारे पास खबर भेजने से रही । उसकी दृष्टि मे हमारी औकात ही क्या है ?"

तीसरा बोला — "अरे भाई ! वह भावुक भी बहुत है, जल्दी ही लोगो के बहकावे-फुसलावे मे आ जाता है । कहीं किसी और ने तो नही बहका लिया ? यदि वह किसी और के चक्कर में आ गया तो फिर अपना तो मजा ही किरकिरा हो जायगा ।"

चौथे ने सलाह दी — "यहाँ बैठे धूल मे लट्ठ मारने से क्या होगा? कुशलक्षेम पूछने के बहाने एक दिन उसके घर पर ही चलकर उसे सम्भाल लेना चाहिए; पर ध्यान रहे उसकी बीबी बड़ी तेज-तर्राट है, कही अपमान न कर दे ?"

अन्नू की बात सुनकर सजू की आँखो के सामने एक क्षण को वह होस्टल वाला दृश्य फिर घूम गया, जिसमे विद्या और उसकी सहेलियो द्वारा उसकी अच्छी मरम्मत हुई थी तथा धक्का मारकर निकाल दिया गया था । स्मृतिपटल पर वह दृश्य आते ही पहले तो वह प्रतिशोध की भावना से भर गया, परन्तु अपने आपको सम्भालते हुए वह बोला — "अरे ! तुम भी कहाँ छोटी-मोटी बातो मे पड़ गये हो, इतना तो सब चलता ही रहता है, यदि ऐसे मान-अपमान से डरने लगे तब तो तुम दुनिया मे कुछ भी नही कर सकते । अरे उन बहादुरो की ओर भी तो देखो, जो, सौ-सौ जूते खाय तमासा घुस के देखे ।"

ऐसा कहकर सजू ने मन में सोचा — "ऐसे मान-अपमान के भय से दूर-दूर भागने से थोड़े ही काम चलेगा । ये लोग तो यो ही बकते है, विज्ञान से मित्रता बनाकर रखनी है तो विद्या को भी पटाकर रखना ही पड़ेगा । अन्यथा यदि विद्या ने विज्ञान को अपने विरुद्ध भड़का दिया तो अपना रोज-रोज का इतना खर्चा कैसे चलेगा ? तालाब मे रहकर

मगर से वैर थोड़े ही रखा जाता है । और फिर विद्या जैसी विश्व सुन्दरी को पाने के लिए भी तो विज्ञान से प्रेम सम्बन्ध बढ़ाना ही होगा। अन्यथा वह भी चंगुल में कैसे आयेगी ? डराना-धमकाना तो अन्तिम उपाय है, प्रेम प्रदर्शन से ही काम बन जाय तो इससे अच्छा और क्या है ?"

यह विचार कर उसने अपने साथियों से कहा – "कभी क्यों ? अभी चले चलते हैं, विज्ञान की कुशलक्षेम पूछने । जब जाना ही है तो 'काल करे सो आज कर' कहते हुए चारों ही साथी विज्ञान के घर को चल दिए ।"

× × ×

घंटी की संकेत ध्वनि सुनकर जैसे ही विज्ञान ने दरवाजा खोला तो चारों साथियों को द्वार पर खड़ा देखर एकक्षण को तो वह असमंजस में पड़ गया । "अरे ! ये तो यहाँ भी आ गये 'रस में विष घोलने'! इन्हें तो डाँट-डपट कर ही भगाना पड़ेगा, पर घर आये अतिथि का अपमान ? यह भी तो ठीक नहीं है । किसी मनीषी ने ठीक ही तो कहा है – 'द्वार पर आये अतिथि का अनादर नहीं करना चाहिए, चाहे वह शत्रु ही क्यों न हो?"

अतः उसने कहा – "आओ मित्र आओ ! सवेरे-सवेरे अचानक यहाँ आने का कष्ट कैसे किया ?

"इसमें कष्ट की वात ही क्या है ? तुम वहुत दिनों से क्लव नहीं आये तो हमारी चिन्ता स्वभाविक ही थी, वहाँ वैठे-वैठे चिन्ता करने के वजाय सोचा – चलो ! घर चलकर ही कुशलक्षेम पूछ आते हैं ।"

संजू कहे जा रहा था – "हमें चिन्ता हुई कि तुम कहीं वीमार तो नहीं पड़ गये, दुर्घटनायें भी आजकल आम वात हो गई है; पर तुम्हें विलकुल ठीक हालत में देखकर मन को संतोष हो गया ।"

विद्या ने हल्की-सी चुटकी लेते हुए कहा — "हाँ, सो तो है ही, आप लोगो का चिंतित होना स्वाभाविक ही है, मित्र जो ठहरे ! एक बार बीवी को भले भूल जाएँ, पर मित्र को थोड़े ही भूलाया जा सकता है । फिर आप लोगो के तो कहने ही क्या हैं ? विज्ञान जैसे भोलानाथ और लक्ष्मीकान्त मित्र मिलते ही कहाँ हैं इतनी आसानी से ? है न सजू !"

सजू ने अपमान का घूंट पीते हुए और हाँ मे हाँ मिलाकर खुश करने की चेष्टा करते हुए कहा — "हाँ सो तो है ही, हम बड़े भाग्यशाली हैं, जो हमे विज्ञान जैसा मित्र मिला है । और आप जैसी भाभी पाकर तो हमारे भाग्य ही खुल गये हैं ।"

संजू की चाटुकारिता रूपी गेंद को वापस उसी के पाले में फेंकते हुए विद्या ने कहा — "रहने भी दो, अधिक मक्खन मत लगाओ । अच्छा बोलो ! क्या चलेगा ? ठंडा या गर्म ?"

साथ ही विज्ञान ने कहा — "कहिए, और नास्ते मे क्या मगाया जाय ?"

सजू ने झेपते हुए कहा — "नहीं, नही, अभी चाय नास्ते की जरूरत नहीं है ।"

"क्यो सजू भाई ! क्या आप सभी काम जरूरत के हिसाब से ही करते हो ?" — विद्या ने फिर हल्की-सी चुटकी ली ।

विज्ञान और विद्या के इस अप्रत्याशित आदर भाव एवं व्यग्य विनोद से सजू यह निर्णय नही कर पाया कि वास्तविकता क्या है ? इस कारण वह सशकित बना रहा । उसे किसी मनीषी की यह उक्ति स्मरण हो आई कि 'स्त्री के चरित्र को और पुरुष के भाग्य को जब देवता ही नहीं जान पाते, तब पुरुषों की तो बात ही क्या है' ।

उसने सोचा — "इस विद्या से तो सदैव सावधान ही रहना होगा। राजू भी बार-बार यही कहता है ।

इसकी बातों में कितना तीखापन है, व्यंग के सिवाय सीधे मुँह बात ही नहीं करती । ठीक है, सब देख लूँगा ।" – सोचते-सोचते वह कुछ देर विचारों में उलझा रहा ।

चाय प्रस्तुत करते हुए जब विज्ञान के नौकर रामू ने उसका ध्यान भंग किया तो पास में खड़ी विद्या से वह बोला – "भाभी आप ठीक-ठाक तो हैं न ?"

विद्या ने उत्तर में कहा – "हाँ, वैसे तो सब ठीक ही है, पर----।"

पर क्या ? देखो, कोई बहाना नहीं चलेगा, तुम्हें और विज्ञान को हमारे कल के कार्यक्रम में तो आना ही पड़ेगा । समझे !"

विज्ञान की नस दबाने के उद्देश्य से विद्या को सुनाते हुए संजू पुनः बोला – "विज्ञान ! तुम इतने दिनों से नहीं आये, इसके पीछे कुछ 'दाल मे काला' दिखता है । किसी और के चक्कर में तो नहीं आ गये ?"

अपनी सफाई देते हुए निःशंकता और निर्भयता के साथ विज्ञान ने कहा – "नहीं ऐसी तो कोई बात नहीं है मित्र ! पर इन दिनों कहीं जाने-आने का और किसी से मिलने-जुलने का मन ही नहीं हुआ।"

व्यग विनोद करते हुए अज्जू बोला – "क्या भाभीजी के ...-मोहब्बत में ऐसे फंस गये कि हम सबको बिल्कुल ही भूल गये ? कभी-कभी तो दर्शन दे ही दिया करो । तुम्हारे बिना तो महफिल में बहुत ही सूनापन लगता है ।"

राजू ने आदेश की भाषा में कहा – "ऐसा नहीं चलेगा विज्ञान! तुम्हारे बिना तो हमारी महफिल का रंग ही फीका हो जाता है, सारा मजा ही किरकिरा हो जाता है । और हाँ सुनो ! कल तो तुम्हें आना ही है, हर हालत में आना है । कल का कार्यक्रम तो तुम्हारी ही पसन्द का, केवल तुम्हारे लिए ही किया जा रहा है । जिसका नृत्य-गान देखकर तुम झूम पड़े थे, उसे ही कल क्लब में आमंत्रित किया है । उसका नाच-गान तो अच्छा है ही, रूप-रंग में भी वह किसी 'विश्व-सुन्दरी' से कम नहीं है ।

तुम्हें तो आना ही है, भाभीजी को भी साथ मे लाना नही भूलना। हमे भी तो नाचने के लिए कोई साथ चाहिए न ? क्यो सजू ठीक है न ?"

"हाँ, भाई ! राजू ठीक ही तो कहता है । अकेले-अकेले क्या मजा आयेगा ?" सजू ने हाँ मे हाँ भरते हुए कहा ।

× × ×

विद्या को उनके हाव-भाव और भाषा से यह समझते देर नहीं लगी कि 'इन्हें विज्ञान की किसी खास कमजोरी का पता है और ये उस कमजोरी को उजागर करने का भय दिखाकर उसे दबाकर उसका अनुचित लाभ तो उठा ही रहे है, उसी चालाकी भरी चाल से मुझे भी दबाकर मेरा भी अनुचित लाभ उठाना चाहते है ।'

साथ ही वह यह भी भाँप गई कि "सभवतः सजू मे मेरे प्रति प्रतिशोध की भावना भी है । अतः ये सब मिलकर एकबार फिर मेरी इज्जत पर धावा बोलकर मुझसे बदला भी लेना चाहते है । अन्यथा ये मेरे ही सामने यह खुला चेलेज कैसे दे सकते थे कि हमे भी तो कोई साथी चाहिए न ?

इसका तो साफ-साफ यही अर्थ है कि विज्ञान मेरे ही सामने उस नाचने वाली आमन्त्रित मेहमान महिला के साथ नाचे और मै इन भेड़ियो के साथ ----। पर मै ऐसा कभी नही होने दूँगी ।

इसके लिए पहले मुझे विज्ञान को इनके बारे मे सब कुछ सही-सही बताकर अपने विश्वास मे लेना होगा, ताकि ये मेरे सुखमय जीवन के रस मे विष न घोल सकें । और विज्ञान को भी विश्वास दिलाना होगा कि तुम्हारे बारे मे कोई कुछ भी कहे, उसका मुझ पर कोई विपरीत प्रभाव नही पड़ेगा । अतः तुम मेरी ओर से निश्चिन्त हो जाओ । तभी विज्ञान इनके दबाव से मुक्त हो सकेगा और ये लोग भी .... अनुचित लाभ नही उठा सकेंगे ।

उधर विज्ञान सोच रहा था कि — "और सारे से निपट लो जो कुछ भी कहना हो कह लेने दो — सिवा ऐसी कोई बात नहीं है जो मेरी असलियत को न समझे और इनके बहकावे में आ जावे । अतः एकबार सब तिया-पाँचा हो लेने दो, ताकि बार-बार की झंझट ही न रहे । यदि मैं स्वयं ही विद्या को अपनी वे सब कमजोरियाँ बता दूँ, जिनका भय दिखाकर ये मुझे दबाते हैं, तो ऐसा कोई कारण नहीं, जो वह मुझे माफ न करे । रही बात व्यापार सम्बन्धी कमजोरियों की, सो उन्हें भी किसी तरह ठीक-ठाक करा लेते हैं । अतः, फिर न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी ।"

विज्ञान वैसे तो बहुत ही प्रतिभाशाली व्यक्ति था, [illegible] पर भी गहराई से विचार करना तो उसके [illegible] था, पर कुछ दिनों से सजू और राजू जैसे मित्रों के [illegible] सुरा और सुन्दरी की ऐसी चाट लग गयी थी कि [illegible] ही सब गुड़ गोबर हो जाता था ।

सुरा और सुन्दरी के व्यसन [illegible] एकबार चाट लग जाने पर [illegible] ।

जब उसे सजू का [illegible] ही मनपसन्द [illegible] को [illegible] नहीं कर सका, उसका मन [illegible] बाध्य होकर उसके [illegible] ही [illegible] ।

७

किसी समस्या विशेष मे उलझे विज्ञान को चिन्तन मुद्रा मे बैठा देख उसकी पत्नी विद्या ने हँसी के मूड मे कहा – "अब क्या सोच रहे हो प्राणनाथ ! इतनी बड़ी समस्या सुलझने के बाद अब और किस उलझन मे उलझ गये हो ? जरा घड़ी तो देखो, क्या बज रहा है ? क्या आज नहाने से लेकर खाने तक – सभी कामो की छुट्टी कर दी है? और हाँ, एक दिन आप यह भी तो कह रहे थे कि अब मै प्रतिदिन जिनमदिर मे पूजन करने और प्रवचन सुनने जाया करूँगा ? क्या हुआ उस सकल्प का ?"

"विद्या ! आज वर्षो बाद तुम्हारी प्रसन्न मुखमुद्रा पर झलकते रूप लावण्य को देखकर मै सोच रहा था – 'क्या उदासीनता सचमुच सौन्दर्य की शत्रु है ? जिसने मेरी प्रिया के सौन्दर्य को मुझ से छीन लिया था' – ऐसी उदासीनता और चिन्ता जीवन में कभी किसी को न हो । पर तुम्हारी उदासीनता और चिन्ता का कारण और कोई नहीं, मै स्वय ही था ।

भला कोई पत्नी अपने पति को सुरा और सुन्दरी के हाथ की कठपुतली बना देखते हुए प्रसन्न और निश्चिन्त कैसे रह सकती है ?"

विज्ञान के सन्मार्ग पर आ जाने से विद्या सर्वाधिक प्रसन्न थी । जब उसकी प्रसन्नता हृदय मे नहीं समाई तो उसके मुखमडल पर बिखरने लगी थी। वह सुन्दर तो थी ही, उसकी प्रसन्नता ने उसकी सुन्दरता पर और भी चार चाँद लगा दिये थे । इससे उसका सौन्दर्य सौ गुना हो गुलाब की तरह खिल उठा था ।

विद्या की प्रसन्नता से बढ़े हुए सौन्दर्य को देखकर विज्ञान इस निष्कर्ष पर पहुँच चुका था कि 'मुख का सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य-प्रसाधन प्रसन्नता ही है ।'

"काश ! संजू और उसके साथी भी अपनी बुरी आदत छोड़ दें, दुर्व्यसनों के दल-दल से निकल कर सन्मार्ग पर आ जावें तो उनके परिवार की भी ढेरों खुशियाँ लौट सकती हैं और वे भी हम जैसे ही प्रसन्न और सुखी हो सकते हैं ।"

ऐसा कहते हुए उसने आगे कहा – "क्यों न इस दिशा में कुछ प्रयत्न किया जाय ?"

विद्या ने कहा – "विज्ञान ! तुम्हारा विचार तो सर्वोत्तम है, परन्तु........"

बीच में ही विद्या के मुँह की बात छीनते हुए विज्ञान बोला – "देखो विद्या ! तुम्हारी किन्तु .... परन्तु .... अभी नहीं चलेगी ! तुम्हारी अपेक्षा उनका दुःख-दर्द मैं अधिक महसूस कर रहा हूँ । वे अभी सब तरफ से असहाय हैं । एक तो दुर्व्यसनों के कारण दिन-प्रतिदिन उनकी घटती कार्यक्षमता; दूसरे, कुपोषण के कारण आये दिन बीमारियों का प्रकोप; तीसरे' अर्थाभाव के कारण परस्पर पारिवारिक कलह और मानसिक अशान्ति – इन सबके कारण उनका जीवन नरक बन रहा है नरक!

यदि ऐसी स्थिति में भी उन्हें नहीं सम्हाला गया तो उनकी तो जो दुर्गति हो रही है सो हो ही रही है, वे अपन लोगों को भी पुनः किसी धर्मसंकट में डाल सकते हैं । 'मरता क्या नहीं करता ।' अतः उनको संभालना भी तो उतना ही जरूरी है, जितना जरूरी पूजन-पाठ करना है । भले ही इसके लिए अपने को कुछ भी त्याग – समर्पण क्यों न करना पड़े ? उन्हें तो उस संकट से उबारना ही होगा ।"

विज्ञान का संजू और उनके साथियों के प्रति ऐसा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार देखकर विद्या फिर सशंकित हो उठी । उसे ऐसा विचार आया कि – "मेरे द्वारा संजू और राजू के बारे में इतना सबकुछ स्पष्ट बता देने पर भी विज्ञान को क्रोध आने के बजाय उल्टी उनके प्रति इतनी गहरी सहानुभूति है, इतनी हमदर्दी है; इससे तो ऐसा लगता है कि अभी भी कुछ दाल में काला है, अभी भी विज्ञान के मन का झुकाव

उधर को ही है, वहाँ से उनका मन पलटा नहीं है । अन्यथा इतना सब सुनने के बाद तो उसे आग-बबूला हो जाना चाहिए था । खैर!"

एक ठंडी सास लेते हुए उसने फिर सोचा — "चलो कोई बात नही, अभी उनके प्रति सहानुभूति ही तो दिखाई है, पुनः पूर्ववत उनके साथ उठने-बैठने और राग-रंग मे सम्मिलित होने की बात तो नहीं कही । सभव है केवल सहानुभूति और करुणा की भावना ही हो; ये सज्जन और भावुक तो हैं ही । अतः थोड़ा धैर्य से काम लेना चाहिए। शकाये-आशकाये प्रगट करने मे व्यर्थ ही बनी-बनाई बात बिगड़ सकती है ।"

ऐसा विचार कर विद्या ने कहा — "यह अपने लिए कौनसी बड़ी समस्या है ? जिसके लिए आप इतने चिंतित हैं । यदि आपके मन में उनके प्रति ऐसी ही सहानुभूति है, करुणा है और आप उनकी सहायता करना चाहते हैं तो अवश्य करिये, मेरी भी इसमें सहमति है । सौभाग्य से इसके लिए अपने पास कोई कमी भी नहीं है; पर इसके लिए आपको स्वय वहाँ जाने की जरूरत नहीं है । मैं आपको अभी वहाँ जाने भी नही दूगी । पराये मन की कोई क्या जाने ? क्रोधवेश मे यदि वे लोग अनर्थ कर बैठे तो ?

"नहीं, नहीं .... विद्या ! वहाँ मुझे स्वय ही जाना पड़ेगा, मेरे जाये बिना काम नहीं चलेगा । मुझे केवल आर्थिक सहयोग ही नहीं करना है और भी बहुत कुछ करना है । तुम नहीं समझ सकोगी अभी; क्योकि तुम्हारे मन मे उनके प्रति अभी आक्रोश है, घृणा है, क्षोभ है और है अविश्वास की भावना। होना भी चाहिए; क्योंकि किसी असहाय, अबला के साथ यदि कोई ऐसा अन्याय करता है, उसकी मजबूरी का अनुचित लाभ उठाने जैसा कुत्सित कार्य करने की कुचेष्टा करता है तो उसके प्रति प्रतिशोध की भावना होना स्वाभाविक ही है । पर किसी को सुधारने या सन्मार्ग पर लाने का उपाय घृणा नहीं है । सन्मार्ग के लिए तो उन्हें अपनाना पड़ेगा, अपना बनाना पड़ेगा ।"

विद्या सोचती है – "विज्ञान बुद्धिमान है, प्रतिभाशाली है, भाषणकला में भी निपुण है; अतः बातों की तो उसके पास क्या कमी ? पर मैं उसकी इन बातों में आकर उसे पुनः उसी दल-दल में जाने को 'हाँ' कैसे कह सकती हूँ ? पर मेरे ना करने से भी क्या होगा ? वह जिद्दी भी तो कम नहीं है । जो ठान लेगा, वही करके छोड़ेगा, क्या करूँ ?"

विज्ञान ने विद्या के चेहरे से ही उसके अन्तर्मन में हुए अन्तर्द्वन्द्व को पहचान लिया । अतः विद्या कुछ कहे, इसके पूर्व ही उसने अपनी सफाई देते हुए कहा – "विद्या ! मैं वहाँ जाने के पहले तुम्हें यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि तुम मेरी ओर से पूर्ण निश्चिंत हो जाओ। अब मैं काजल की कोठरी में जाकर भी काजल के धब्बों से बचकर रहूँगा; पर मैं जाऊँगा अवश्य ।"

विद्या ने उसके उत्तर में विनम्रभाव से कहा – "प्राणनाथ ! मुझे आप पर पूर्ण विश्वास है, मैं आपके हृदय की सरलता से भलीभाँति परिचित हो गई हूँ; पर....।"

मुँह की बात छीनते हुए विज्ञान ने कहा – "पर क्या ? वे मेरी सरलता का फिर दुरुपयोग करेंगे, मुझे किसी चाल में फंसा लेंगे ? यही न, भूलें किससे नहीं होती, पर...." "नहीं विद्या ऐसा कुछ न सोचो। वे भी इतने बुरे नहीं हैं ।"

विद्या ने अपना स्पष्टीकरण देते हुए कहा – "मेरा कहना यह नहीं है और न मैं अभी उन पर कोई अविश्वास ही कर रही हूँ । मेरा कहना तो यह है कि यह इतनी बड़ी समस्या नहीं है, ऐसा कोई बहुत बड़ा काम भी नहीं है, जिसके लिए आप इतने उत्सुक हो रहे हैं, धीरे-धीरे शान्ति से सब हो जायगा । ये दुर्व्यसनों की तो आदतें ही ऐसी होती हैं, जो धीरे-धीरे ही जाती हैं । अतः इस काम के लिए आपको व्यर्थ ही अपना समय और शक्ति खराब करने की जरूरत नहीं है ।"

"विद्या ! तुम मुझसे यह जो कुछ भी कह रही हो, उसके बारे मे एकबार पुनः इस दृष्टि से विचार करो कि मानो मै आज भी उनका वैसा ही दुर्व्यसनी साथी हूँ । क्या उस परिस्थिति मे भी तुम्हारे चिन्तन की यही मनःस्थिति रहती ? यदि नही, तो मुझे इस कार्य को एक महत्त्वपूर्ण कार्य मानकर करने दो । 'धीरे-धीरे सब हो जायगा' — यह कहकर उपेक्षा मत करो ।"

एक महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत करते हुए विज्ञान ने कहा — "देखो, विद्या! कोई भी काम अपने-आप में छोटा या बड़ा नहीं होता । काम तो केवल काम होता है । काम को छोटा या बड़ा मानते ही उसकी सफलता की संभावना ही क्षीण हो जाती है ।

यदि काम को छोटा समझ लिया गया तो उस काम को करने का मन ही नही होता और यदि मन मारकर किया भी तो स्वभावतः न उसमें रुचि होगी, न उत्साह और न उस पर उतना ध्यान भी दिया जा सकेगा, जितना उसकी सफलता के लिए अपेक्षित होता है।

यदि काम को बड़ा समझ लिया गया तो 'इतना बड़ा काम मेरे वश की बात नहीं' है इस विचार से उस काम को करने की या उसकी जिम्मेदारी अपने हाथ में लेने की हिम्मत ही नहीं होती ।

जबकि किसी भी काम में सफलता प्राप्त करने के लिए श्रम, साहस, समय और ध्यान का पूरा केन्द्रीकरण आवश्यक होता है ।

विद्या ! इसी से सबंधित आज दूसरी समस्या है उन नन्हे-मुन्ने बालको की, जो भारत के भावी भाग्यविधाता है और हैं समाज के भावी कर्णधार।

आज बालको को न तो कोई नैतिक शिक्षा मिल रही है और न कोई धार्मिक सस्कार ! इसके बदले उन्हें आज मिल रही है विशुद्ध अर्थकारी शिक्षा और पश्चिमी भोग प्रधान भौतिक सस्कार ।

यदि यही स्थिति रही तो सोच लो — कैसे होगे ये भारत के भाग्यविधाता और समाज के भावी कर्णधार ?

यही भूल तो मेरी शिक्षा और संस्कारों के सम्बन्ध में हुई थी । क्या तुम्हें ज्ञात नहीं कि मुझको राह पर लाने के लिए तुम्हारे साथ ज्ञान और सुदर्शन को भी कितने पापड़ बेलने पड़े ? जरा कल्पना तो करो, यदि वे इस दिशा में प्रयत्न नहीं करते तो आज मेरी स्थिति क्या होती ?

विद्या ! बालकों के शिक्षा और संस्कारों के क्षेत्र में पुरुषों की तुलना में महिलाएँ अधिक काम कर सकती हैं । माँ को बालक की प्रथम पाठशाला कहा जाता है । अतः महिलाओं में जागृति लाने से यह काम तुम्हारे द्वारा अच्छी तरह हो सकता है ।"

अपने मित्र संजू और उसके साथियों को सन्मार्ग पर लाने तथा उनका जीवन सुखी बनाने के विज्ञान के दृढ़ संकल्प और पवित्र भाव को देखकर विद्या ने भी विज्ञान का हर तरह से सहयोग करने का मानस बना लिया था ।

अतः विज्ञान के विचारों में अपनी सहमति प्रगट करके वह अपने घरेलु काम में लग गई । ●



यद्यपि अब विज्ञान का हृदय पूरी तरह परिवर्तित हो गया था, पर उधर सजू और उसके साथियो को इसका क्या पता ? अतः वे तो अभी भी उसके आने की आशा लगाये बैठे थे ।

सजू ने आशा बँधाते हुए साथियों से कहा — "देखो, 'जब तक श्वासा तब तक आशा', अपनी वाछित वस्तु को पाने के लिए जीवन की अन्तिम श्वास तक भी लोग आशान्वित रहते हैं; अतः हताश होकर हिम्मत न हारो । जो भी मैने तुम्हें गुरुमत्र बताये हैं, तदनुसार अपने प्रयत्न चालू रखो।

भाई ! आशा से आसमान लगा है, अतः इतने जल्दी निराश होने की जरूरत नही है । मुझे तो पूरी-पूरी आशा है कि विज्ञान एक न एक दिन अवश्य आयेगा ।"

यद्यपि सजू साथियो को दिलाशा दे रहा था, ढाढस बधा रहा था, पर स्वय अन्दर से टूट चुका था । वह सोचता था कि — "एक तो विद्या सुन्दर भी बहुत है और चतुर भी कम नही है । वह विज्ञान को इस तरह मोह लेगी कि उसका मन यहाँ-वहाँ कहीं भटकेगा ही नही । जो मनोरजन के साधन होटलो और क्लबो मे मिलते हैं, वह उनसे भी कहीं अच्छे साधन घर मे ही जुटा लेगी । उसे क्या नही आता ? नाचना-गाना-बजाना सभी मे तो निपुण है वह; इसलिए यद्यपि अब उसकी आशा करना तो पागलपन ही है; पर यदि मेरे साथ भी निराश हो गये, हिम्मत हार गये तो अपना तो जीना ही दूभर हो जायगा। अपन कहीं के न रहेंगे, 'न घर के न घाट के' अतः किसी तरह इन्हें बहला कर तो रखना ही होगा ।" यह विचार आते ही वह

हुआ साथियों से बोला – "आयेगा कैसे नहीं; यदि नहीं आयेगा तो मैं जाकर ले आऊँगा, तुम लोग निश्चिंत रहो ।

संजू और राजू को तो ऐसा लगा जैसे कोई खोई हुई निधि मिल गई हो; क्योंकि विज्ञान के न आने से वे ही अधिक प्रभावित हुए थे। आदतें तो वैसी ही थीं और अर्थाभाव के कारण उनकी पूर्ति शतांश भी संभव नहीं हो पाती थी । होती भी कहाँ से ? जिनको दो टाइम की रोटियाँ नसीब न हों, वे सुरा-सुन्दरियों का शौक कहाँ से पूरा करेंगे ?

संजू की बात का समर्थन करते हुए अज्जू ने कहा – "वह आयेगा कैसे नहीं ? जिसे एक बार भी सुरा और सुन्दरी का रस लग जाता है, चाट लग जाती है, उसे फिर उसके बिना चैन नहीं पड़ती ? उसे तो उसकी हर पल याद आती रहती है । उसे कोई रस्सी से भी बाँधे तो भी वह नहीं रुक सकता । यह तो व्यसन ही ऐसा है । अतः वह आयेगा, जरूर आयेगा ।"

बीच में ही राजू बोल पड़ा – "कोई कुछ भी कहे, कैसी भी कसमें दिलाये, रुकेगा तो नहीं; पर उसकी भी अपनी समस्याएँ हैं, वह उनसे जूझ रहा होगा ?"

हाँ में हाँ मिलाते हुए अन्नू ने कहा – "हाँ भाई ! विज्ञान तो विचारा स्वयं भी आना ही चाहता होगा, पर वह अपनी बीबी विद्या से निगाह बचाकर निकल पाये तब न ?"

× × ×

बहुत दिनों बाद एक दिन जब विज्ञान अनायास ही संजू और उनके साथियों की महफिल में पहुँच गया तो उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा ।

संजू ने कहा – "देखो, मैंने कहा था न ? कि वह एक न एक दिन अवश्य आयेगा । यहाँ नहीं आयेगा तो कहाँ जायेगा ?"

अज्जू ने भी छाप लगाई — "अरे भाई ! इस महफिल का तो आनन्द ही कुछ ऐसा है कि जो एक बार यहाँ आ जाता है, उसका अन्य जगह कहीं मन ही नहीं लगता ।"

सभी ने विज्ञान के शुभागमन पर हर्ष प्रगट किया । विज्ञान ने भी उनके प्रति अपनापन दिखाते हुए उनसे कुशल क्षेम पूछी । सामान्य औपचारिकता के बाद विज्ञान ने कहा -- "इन दिनो आप लोगो को किसी प्रकार की कोई खास परेशानी तो नही रही ? यदि किसी को कोई तकलीफ हो तो निःसकोच बताये । मै आपका अपना साथी हूँ। साथी कहते ही उसे है, जो सुख-दुःख में समान रूप से साथ दे। यदि आप मुझे अपने कष्ट नही बतायेगे तो फिर किसे बतायेगे?"

इतना सहानुभूतिपूर्ण प्रेम का व्यवहार पाते ही उन्हें सुख-दुःख सुनाने का भाव जागृत हो गया और एक-एक ने अपने दिल का दर्द प्रगट कर दिया।

सजू ने कहा — "और तो सब ठीक ही है, पर सबको तुम्हारी याद बराबर सताती रही । पारिवारिक परेशानियाँ भी इन दिनो कुछ अधिक ही रहीं । अन्नू और अज्जू की पत्नियाँ सरला और सुनीता यदि अपने कुल की आन लिए घर मे ही दुल्हन बनी बैठी रहती तो उनके तो बच्चे ही भूखो मर जाते; क्योंकि ये दोनो तो इन दिनो बीमार रहने से काम पर ही नही जा पाये ।

डॉक्टर कहते हैं कि मदिरा पीना बद किए बिना अन्नू के पेट की बीमारी ठीक नही हो सकती, इसके लीवर पर सूजन आ गई है और अज्जू के फेफड़े खराब हो रहे है, सिगरेट छोड़े बिना इसकी खासी ठीक नहीं हो सकती । तथा इनका कहना यह है कि यदि हम एक दिन भी नही पीते तो हमारे हाथ-पाँव ही नही चलते, हम कोई काम ही नही कर सकते । इस कारण ये दोनो सबसे अधिक परेशान है। वह तो इनकी पत्नियाँ ही अपने दिल पर पत्थर रखकर, अपना मन मारकर जैसे-तैसे इनके परिवार का पेट पाल रही है ।"

अपनी बात चालू रखते हुए संजू ने आगे कहा – "मेरा और राजू का तो कहना ही क्या ? घर में न किसी को हमारी चिन्ता है और न हमें किसी की चिन्ता ? जब जो जहाँ से मिल गया, खाया-पिया और जमीन के बिछौना पर आसमान का चादर ओढ़कर आराम से कहीं भी सो गये । बस, इन दिनों भगवान की इतनी कृपा अवश्य है कि सुबह से शाम तक कोई न कोई आँख का अंधा और गाँठ का पूरा मिल ही जाता है, जिससे हमारा भी काम चल जाता है और जो कुछ बचता है सो हम सरला और सुनीता की भेंट चढ़ा देते हैं । सो अन्नू और अज्जू का भी काम चल जाता है । इस प्रकार सब भगवान के भरोसे चल रहा है ।"

विज्ञान को अपने चारों साथियों की यह दुर्दशा देखकर हृदय में भारी वेदना हुई । उसने एक-एक को अलग-अलग बुलाकर भी उनकी सभी परेशानियों को खूब ध्यान से सुना और उन्हें उस संकट से उबारने के लिए हर प्रकार का पूरा-पूरा सहयोग करने का आश्वासन दिया ।

उसने सोचा – "संजू और राजू के माता-पिता और भाइयों ने अभी तक केवल इन्हें आदेश, उपदेश और डरा-धमका कर ही सन्मार्ग पर लाने की कोशिश की है, इन्हें सदा दुतकारा ही है कभी अपनाने की कोशिश नहीं की ।

वस्तुतः बात यह है कि केवल आदेशों और उपदेशों की भाषा से कभी कोई सुधर नहीं सकता । किसी भी व्यक्ति को सन्मार्ग पर लाने के लिए पहले उसको अपने विश्वास में लेना और अपना विश्वास उसे देना आवश्यक होता है । उसे अपनाना पड़ता है, अपना बनाना पड़ता है । जब उसे यह विश्वास हो जाये कि यह व्यक्ति मेरा हृदय से हितैषी है और मात्र मेरे हित के लिए ही अपना सर्वस्व समर्पण कर रहा है, तब फिर वह स्वतः उसके सामने आत्मसमर्पण कर देता है और उसकी प्रत्येक बात मानने को तैयार हो जाता है ।

अतः इन दोनो के लिए तो इनके माता-पिता और भाई-बन्धुओ से मिलना होगा और उन्हें यह सब बताना होगा । तथा अन्नू और अज्जू को आर्थिक योगदान देकर उनका हृदय परिवर्तन करने का प्रयत्न करना होगा।"

यह विचार आने पर विज्ञान ने अन्नू और अज्जू को तो आवश्यकतानुसार दवाईयो का और बच्चो की पढ़ाई का तथा आवश्यक आवश्यकताओ की पूर्ति की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली तथा सजू और राजू को भी उनकी पारिवारिक समस्याओ को सुलझाने का आश्वासन दिया।

उसके इस प्रेम भरे व्यवहार से और निःस्वार्थभाव से किये गये आर्थिक सहयोग से वे सभी गद्‌गद्‌ थे । विज्ञान के प्रति उत्पन्न हुआ उन सबका असतोष एव नाराजगी एक ही दिन मे श्रद्धा मे पलट गये।

●

जो जिह्वा के लोलुपी पुरुष रात्रि में भोजन करते है, वे लोग न तो भूत, राक्षस, पिशाच और शाकनी-डाकनियों के दुष्प्रभाव से बच सकते और न नानाप्रकार की व्याधियों-बीमारियों से ही बच सकते है, क्योकि रात्रि मे भूत-पिशाचों का भी सचार होता है और जीव-जंतुओं का भी, जिनके कारण बीमारियाँ पनपती है ।

— सामान्य श्रा[illegible] 53



अपनी बात चालू रखते हुए संजू ने आगे कहा – "मेरा और राजू का तो कहना ही क्या ? घर में न किसी को हमारी चिन्ता है और न हमें किसी की चिन्ता ? जब जो जहाँ से मिल गया, खाया-पिया और जमीन के बिछौना पर आसमान का चादर ओढ़कर आराम से कहीं भी सो गये । वस, इन दिनों भगवान की इतनी कृपा अवश्य है कि सुवह से शाम तक कोई न कोई आँख का अंधा और गाँठ का पूरा मिल ही जाता है, जिससे हमारा भी काम चल जाता है और जो कुछ वचता है सो हम सरला और सुनीता की भेंट चढ़ा देते हैं । सो अन्नू और अज्जू का भी काम चल जाता है । इस प्रकार सब भगवान के भरोसे चल रहा है ।"

विज्ञान को अपने चारों साथियों की यह दुर्दशा देखकर हृदय में भारी वेदना हुई । उसने एक-एक को अलग-अलग बुलाकर भी उनकी सभी परेशानियों को खूब ध्यान से सुना और उन्हें उस संकट से उबारने के लिए हर प्रकार का पूरा-पूरा सहयोग करने का आश्वासन दिया ।

उसने सोचा – "संजू और राजू के माता-पिता और भाइयों ने अभी तक केवल इन्हें आदेश, उपदेश और डरा-धमका कर ही सन्मार्ग पर लाने की कोशिश की है, इन्हें सदा दुतकारा ही है कभी अपनाने की कोशिश नहीं की ।

वस्तुतः बात यह है कि केवल आदेशों और उपदेशों की भाषा से कभी कोई सुधर नहीं सकता । किसी भी व्यक्ति को सन्मार्ग पर लाने के लिए पहले उसको अपने विश्वास में लेना और अपना विश्वास उसे देना आवश्यक होता है । उसे अपनाना पड़ता है, अपना बनाना पड़ता है । जव उसे यह विश्वास हो जाये कि यह व्यक्ति मेरा हृदय से हितैपी है और मात्र मेरे हित के लिए ही अपना सर्वस्व समर्पण कर रहा है, तव फिर वह स्वतः उसके सामने आत्मसमर्पण कर देता है और उसकी प्रत्येक वात मानने को तैयार हो जाता है ।

अतः इन दोनो के लिए तो इनके माता-पिता और भाई-बन्धुओ से मिलना होगा और उन्हें यह सब बताना होगा । तथा अन्नू और अज्जू को आर्थिक योगदान देकर उनका हृदय परिवर्तन करने का प्रयत्न करना होगा।"

यह विचार आने पर विज्ञान ने अन्नू और अज्जू को तो आवश्यकतानुसार दवाईयो का और बच्चो की पढ़ाई का तथा आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली तथा सजू और राजू को भी उनकी पारिवारिक समस्याओ को सुलझाने का आश्वासन दिया।

उसके इस प्रेम भरे व्यवहार से और निःस्वार्थभाव से किये गये आर्थिक सहयोग से वे सभी गद्‌गद् थे । विज्ञान के प्रति उत्पन्न हुआ उन सबका असतोष एव नाराजगी एक ही दिन मे श्रद्धा मे पलट गये।

●

जो जिह्वा के लोलुपी पुरुष रात्रि में भोजन करते है, वे लोग न तो भूत, राक्षस, पिशाच और शाकनी-डाकनियों के दुष्प्रभाव से बच सकते और न नानाप्रकार की व्याधियों-बीमारियों से ही बच सकते है, क्योंकि रात्रि मे भूत-पिशाचो का भी सचार होता है और जीव-जंतुओं का भी, जिनके कारण बीमारियाँ पनपती है ।

— सामान्य श्रा[illegible]चा[illegible] 53



"हाँ भाई सुदर्शन ! बात तो आश्चर्य की ही है, ऐसा कौन परिचित व्यक्ति होगा, जिसे विज्ञान को इस रूप में देखकर आश्चर्य नही होगा ? आपने देखा नहीं, कलतक यह अपने सामने किसी को कुछ गिनता ही नही था, किसी की कुछ सुनता ही नहीं था, धार्मिक प्रवृत्तियाँ तो इसे सपने मे भी नही सुहाती थीं । खान-पान में न भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार, न दिन-रात का विवेक । जब जो जी में आया, खाया-पिया और मस्त । मदिरा तक से तो इसे परहेज नहीं था । अतः आश्चर्य की बात तो है ही।"

ज्ञान की बातो को सुन सुदर्शन ने कहा — "भाई ! यह सब ठीक है, पर इसमे ऐसे आश्चर्य की कोई बात नहीं है । जिसकी होनहार भली हो और काललब्धि आ गई हो, उसे पलटते देर नही लगती। भगवान महावीर स्वामी के पूर्वभवों को ही देखो न ! मारीचि की होनहार भली नही थी तो तद्भव मोक्षगामी भरत चक्रवर्ती का पुत्र और आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का पौत्र होकर भी अपने मिथ्या मार्ग से नहीं पलटा। और जब भली होनहार का समय आ गया तो शेर की क्रूर पर्याय मे भी सुधर गया, सन्मार्ग पा गया । यह तो [illegible] की बात है । क्या तुमने उस दिन आचार्यश्री के प्रवचन में [illegible] का सिद्धान्त नहीं सुना था; जिसमें उन्होंने चार [illegible] की व्यवस्था समझाई थी ?"

"ठीक है भाई ! मै सुनाऊँगा, अवश्य सुनाऊँगा, तुम्हें नहीं सुनूँगा तो और किसे सुनाऊँगा; पर अभी नही, फिर कभी फुरसत मे सुनाऊँगा। अभी तो पूजन का समय हो रहा है । सभी लोग मदिर मे मेरी प्रतिक्षा कर रहे होगे । आज सामूहिक पूजन करने का कार्यक्रम है न ।" — ऐसा कहकर विज्ञान मदिर चला गया और ज्ञान अपने घर ।

× × ×

ज्ञान के मन मे विज्ञान मे हुये इस जादुई परिवर्तन के बारे में जानने की उत्सुकता बराबर बढ़ती जा रही थी । वह जानना चाहता था कि आखिर यह हथेली पर आम जम कैसे गया ? उसे विचार आया कि — "कहीं हम लोगो को खुश करने के लिये इसकी यह कोई नाटकीय चाल तो नहीं है । अथवा किसी भय की आशका से यह किसी मन्त्र-तन्त्रवादी के चक्कर मे तो नही आ गया ? कभी-कभी कुछ लोग लौकिक प्रयोजन की पूर्ति की अभिलाषा से अथवा किसी लोभ-लालच मे पड़कर भी पूजा-पाठ करने लगते है — इसके साथ मे भी ऐसा कोई चक्कर तो नही है ?

नही, नही; वह इतना नादान तो नहीं है, जो ऐसी बातो मे आ जाए । और ऐसा कायर व लोभी भी नहीं है, जो किसी तरह के भय, आशा, स्नेह व लोभ-लालच मे पड़कर यह सब आडम्बर करे ।"

ज्ञान किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पा रहा था । उसे पुनः विचार आया — "कुछ नही कह सकते । कभी-कभी अच्छे-अच्छे समझदार लोग भी इन मन्त्र-तन्त्रवादियो के चक्कर मे आ जाते हैं ।"

विज्ञान के हृदय परिवर्तन की बात अब भी ज्ञान को रहस्यमयी बनी हुई थी ।

यद्यपि वह विज्ञान की पैनी बुद्धि, सरल हृदय और सज्जन स्वभाव से भलीभाँति परिचित था । पर महत्त्वाकाक्षाये और मानव स्वभाव की कमजोरियाँ क्या-क्या असभावित परिकल्पनाएँ नहीं करा लेतीं । इससे भी वह अपरिचित नही था ।

"ठीक है भाई ! मै सुनाऊँगा, अवश्य सुनाऊँगा, तुम्हें नहीं सुनाँगा तो और किसे सुनाऊँगा; पर अभी नहीं, फिर कभी फुरसत मे सुनाऊँगा। अभी तो पूजन का समय हो रहा है । सभी लोग मंदिर मे मेरी प्रतिक्षा कर रहे होंगे । आज सामूहिक पूजन करने का कार्यक्रम है न ।" — ऐसा कहकर विज्ञान मंदिर चला गया और ज्ञान अपने घर ।

× × ×

ज्ञान के मन मे विज्ञान मे हुये इस जादुई परिवर्तन के बारे मे जानने की उत्सुकता बराबर बढ़ती जा रही थी । वह जानना चाहता था कि आखिर यह हथेली पर आम जम कैसे गया ? उसे विचार आया कि — "कहीं हम लोगों को खुश करने के लिये इसकी यह कोई नाटकीय चाल तो नहीं है । अथवा किसी भय की आशका से यह किसी मन्त्र-तन्त्रवादी के चक्कर मे तो नही आ गया ? कभी-कभी कुछ लोग लौकिक प्रयोजन की पूर्ति की अभिलाषा से अथवा किसी लोभ-लालच मे पड़कर भी पूजा-पाठ करने लगते हैं — इसके साथ मे भी ऐसा कोई चक्कर तो नही है ?

नही, नही; वह इतना नादान तो नही है, जो ऐसी बातो मे आ जाए । और ऐसा कायर व लोभी भी नही है, जो किसी तरह के भय, आशा, स्नेह व लोभ-लालच मे पड़कर यह सब आडम्बर करे ।"

ज्ञान किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पा रहा था । उसे पुनः विचार आया — "कुछ नही कह सकते । कभी-कभी अच्छे-अच्छे समझदार लोग भी इन मन्त्र-तन्त्रवादियो के चक्कर मे आ जाते है ।"

विज्ञान के हृदय परिवर्तन की बात अब भी ज्ञान को रहस्यमयी बनी हुई थी ।

यद्यपि वह विज्ञान की पैनी बुद्धि, सरल हृदय और सज्जन स्वभाव से भलीभाँति परिचित था । पर महत्त्वाकाक्षाये और मानव स्वभाव की कमजोरियाँ क्या-क्या असभावित परिकल्पनाएँ नही करा लेतीं । इससे भी वह अपरिचित नही था ।

"भाई ? आज तो तुम्हें अपने इस परिवर्तन की कहानी मुझे सुनानी ही होगी ।"

अपने जीवन परिवर्तन की कहानी सुनाते हुए विज्ञान ने कहा – "मित्र? नगर निगम के नियमानुसार हमारा कारखाना तो शाम आठ बजे ही बन्द हो जाता था । रात मे अन्य व्यापारिक काम कुछ रहता नही था। अतः घण्टे-दो घण्टे को दोस्तो से मिलने और मनोरंजन के लिए मै क्लब चला जाता था, परन्तु मेरा क्लब जाना परिवार मे किसी को भी पसन्द नही था; क्योकि वहाँ दोस्त लोग मिल-जुलकर मुझे यदा-कदा थोड़ी-बहुत मदिरा पिला दिया करते थे और कभी-कभी रमी (जुआ) खेलते-खेलते घर आने मे देर भी हो जाती थी । इस कारण मेरी वाइफ (पत्नी) विद्या मुझसे रूठी-रूठीसी रहने लगी थी ।

मेरा मित्र सुदर्शन भी नहीं चाहता था कि मै सजू, राजू, अन्नू और अज्जू जैसे लोगो के साथ उठूँ-बैठूँ ।

मेरे निजी डॉक्टर की भी यही सलाह थी कि मुझे अब हर हालत मे अपने सभी शौको को तिलाजलि देकर शान्ति से घर मे ही अधिक से अधिक समय रहकर विश्राम करना चाहिए, अन्यथा मेरा शेष जीवन खतरे से खाली नही है ।

सर्वप्रथम तो मेरे परम सद्भाग्य से ही मानो ये सब कारण कलाप मिल गये और उनके कारण मेरा उस क्लब मे जाना सदा के लिए बन्द हो गया, जहाँ जाने से में दुर्व्यसन मे फँस गया था ।

दूसरे, उन दिनो आज की तरह घर-घर मे ना तो टेलीविजन सेट थे और ना वी. सी. आर. एव वीडीओ फिल्मे, जिनके कारण जीवन के अमूल्य क्षण यो ही चले जाते है । दुर्भाग्य से यदि उन दिनो ये साधन होते तो कम से कम मेरे जैसे व्यक्ति के जीवन के ये शेष महत्त्वपूर्ण क्षण भी निश्चित ही बर्बाद हो जाते ।

तीसरे, डॉक्टर की सलाह के अनुसार अब मुझे आये दिन रोज-रो सिनेमा जाना भी सभव नहीं था, इसकारण उस दोष से भी बच

प्रारंभ में तो कुछ अटपटा लगा, क्योंकि उसकी शैली ही कुछ पुरानी और अपरिचित थी, परन्तु पढ़ना तो था ही, सो पढ़ता ही मनोयोगपूर्वक पढ़ता रहा । जब गहराई में उतरने की कोशिश की, तो बीच-बीच में आये आचार्यों के उपदेशों ने, नीति वाक्यों ने और पूनर्जन्म के विचित्र कथानकों ने मुझे इस दिशा में सोचने के लिए बाध्य तो किया ही, साथ ही चित्त को भी अपनी ओर आकर्षित किया।

तब से मेरा मन अधिकांश इसी तरह के साहित्य पढ़ने में रमने लगा । इसप्रकार मेरे जीवन में आये इस परिवर्तन के पीछे मूलतः तो पौराणिक कथायें ही हैं, जिनमें पुण्य-पाप के फलों की विशेषता का विस्तृत वर्णन था। पूर्वकृत पापोदय में बड़े-बड़े राजा-महाराजा और धर्मात्मा साधु-सन्तों को भी कैसी-कैसी यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं तथा वर्तमान पाप-भावों में लिप्त प्राणियों को नरकों में कैसे-कैसे कष्ट उठाने पड़ते है ।

उन दारुण दु:ख भोगनेवाले जीवों के करुणाजनक दृश्यों का चित्रण पढ़कर मैं पापाचरण से विरक्त तो हुआ, पर मेरे मन में अनेक उतार-चढ़ाव भी कम नहीं आये । मैं उनके फलाफल के चिन्तन करने में कई रात तो सो भी नहीं सका था । अन्ततः मैं इस निष्कर्ष पर तो पहुँच ही गया कि – "अपने किये पापों का फल तो सभी को भोगना ही पड़ता है और मैंने भी अपने जीवन में कोई कम पाप नहीं किये है । क्या मुझे भी यह सब नहीं भोगना पड़ेगा?"

धीरे-धीरे मेरी धारणायें व मान्यतायें बदलीं । मैं अब तक धर्म को ढोंग व पूजा-पाठ को पाखण्ड समझ रहा था, अब मेरी समझ में आया कि – "किसी पुजारी विशेष के पाखण्डी होने से पूजा पाठ को ही पाखण्ड मान लेना कोई समझदारी का काम नहीं है । इसी तरह धर्मात्मा के भेष में कोई साधु ढोंगी भले हो, पर धर्म की साधना या साधुपना ढोंग नहीं है । धर्म तो आत्मा व परमात्मा का स्व

है । अहिंसा, क्षमा, शान्ति व वीतरागता धर्म है और हिंसा, काम, क्रोध, राग-द्वेष आदि अधर्म हैं । इसमें ढोंग का क्या काम है ?

जिसतरह अग्नि का धर्म उष्णता है, पानी का धर्म शीतलता है, उसी तरह आत्मा का धर्म ज्ञाता-दृष्टा रहना है । ज्ञान आत्मा का धर्म है और अज्ञान अधर्म । वीतरागता आत्मा का धर्म है और राग-द्वेष करना अधर्म । क्षमा आत्मा का धर्म है और क्रोध अधर्म । इस धर्म में कहाँ आडम्बर है और कहाँ पाखण्ड ?"

यही सोचते-विचारते धीरे-धीरे पता नहीं, मेरी रुचि कब-कैसे अनायास ऐसी बदली कि अब तो जब देखो तभी उन्हीं कथानकों की चर्चा-वार्ता करने का मन होने लगा है । चाहे घर हो या दुकान, मंदिर हो या अन्य कोई स्थान, जब और जहाँ भी मौका मिलता है, घूम-फिर कर वही प्रसंग छिड़ जाता है । अब तो धार्मिक चर्चा-वार्ता करने में ही अधिक आनन्द आता है ।"

जिसकी जिसमें लगन लग जाती है, फिर उसे सर्वत्र वही-वही दिखाई देता है । लगन का तो स्वरूप ही कुछ ऐसा है, देखो न, जब लड़का-लड़की की परस्पर लगन (सगाई) हो जाती है, तब से एक-दो दिन तो बहुत दूर, एक-दो घड़ियाँ भी ऐसी नहीं जातीं, जब एक को दूसरे की याद न आती हो ।' बस, यही स्थिति विज्ञान की उन पौराणिक-धार्मिक कथानकों चर्चा-वार्ताओं के बारे में हो गई थी ।

बैठे-बैठे वह बोल उठता – "अहा ! पुराणों का भी अपना अलग आकर्षण होता है । भले ही वे आज की आधुनिक शैली में नहीं हैं, तथापि अपनी ओर आकर्षित करने की अद्‌भुत क्षमता उनमें हैं । पुराणों में मुख्यरूप से तो महापुरुषों के आदर्श चरित्र एवं उनके पूर्वभवों का ही वर्णन होता है, परन्तु बीच-बीच में नीतिवाक्यामृत, ऋषियों के प्रेरणादायक उपदेश एवं धर्ममार्ग में लगाने और पापाचरण से हटाने के प्रयोजन से लिखे गये अनेक उपकथानक भी होते हैं ।"

इसप्रकार पुराणो का परिचय देते हुए विज्ञान ने कहा – "भाई वे मुझे इतने रुचिकर लगे कि मै कुछ ही दिनो मे एक के बाद एक अनेक पुराण पढ़ गया । उनके पढ़ने से मनोरंजन तो जो हुआ सो हुआ ही, साथ ही अनेक नये तथ्य भी ध्यान मे आये । अतीत को जानने की जिज्ञासा भी जागृत हुई और परलोक, नरक-स्वर्ग तथा जीवो के भव-भवान्तरो को जानने के बारे मे भी जिज्ञासा जगी ।"

अभीतक मै जिन स्वर्गो व नरको को कल्पनालोक की वस्तुये मान रहा था, अब वे यथार्थ की भावभूमि पर उतर आये ।

सारा जिनागम सर्वज्ञ व वीतराग की वाणी तो है ही, वैज्ञानिक व मनोवैज्ञानिक तथ्यो पर भी आधारित है और युक्ति व स्वानुभव से भी सभी बाते सिद्ध हैं ।

"स्वाध्याय किये बिना किसी को कैसे पता चले कि वास्तविकता क्या है?"

अभी तक मै स्वर्गो व नरको को किसी सनकी मस्तिष्क की उपज व कल्पनालोक की वस्तुएँ मात्र मानता था, परन्तु पुराणो के अध्ययन करते समय नरको की सिद्धि के पक्ष मे एक तर्क मुझे यह भी ध्यान मे आया कि – वस्तुतः इस मनुष्यलोक में तो ऐसी कोई व्यवस्था है नहीं जिससे हम जगत को सही न्याय दे सके, अतः कोई एक स्थान ऐसा अवश्य होना चाहिए, जहाँ पूरा न्याय दिया जाता हो ।

कल्पना कीजिए, किसी व्यक्ति ने यहाँ एक निरपराध प्राणी की निर्दयतापूर्वक हत्या की तो भी न्यायालय उसे फासी की सजा देगा और यदि उसने उन्मादवश इसीप्रकार की निर्दयतापूर्वक हजारो हत्याये कर डाली तो भी न्यायालय के पास उसे एकबार फांसी का दण्ड देने के सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है । जब यहाँ हजार हत्याओ के अपराध का कोई अन्य विशेष दण्ड-विधान ही सभव नही है तो प्रकृति मे कही न कही तो ऐसी व्यवस्था होनी ही चाहिए न ? जहाँ एक से हत्याये करनेवालो को तदनुरूप दण्ड व्यवस्था दी जा सके । बस,

साथी भी सन्मार्ग पर आ जावे । एतदर्थ भी कुछ प्रयास करना चाहिए। भले ही इसमें मुझे सर्वस्व समर्पण ही क्यो न करना पड़े ।"

— यह सोचते-सोचते विज्ञान विचारो मे खो गया और निद्रा देवी ने उसे अपनी गोद मे समेट लिया और वह सो गया । •

रात्रि भोजन का अन्य अनेक छोटे-बड़े दोषो के साथ सबसे बड़ा एक दोष यह भी है कि इस काम मे ही महिलाओं को रात के बारह-बारह बजे तक उलझा रहना पड़ता है । इससे खानेवालो के साथ बनानेवाली माता-बहिनो का धर्मध्यान, शास्त्रो का पठन-पाठन, तत्वार्थ चर्चा, सामायिक, जाप्य आदि सबकुछ छूट जाता है । इसकारण जैनधर्म के धारक रात्रि मे भोजन नहीं करते — ऐसी ही सनातन रीति अबतक चली आई है ।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि लोक मे करोड़ो लोगो मे यह बात प्रसिद्ध है कि जैनी रात मे नहीं खाते । इसकारण जैनधर्म की प्रभावना भी बहुत है, फिर भी जो लोग रात मे खाते हैं व जिनधर्म की उज्ज्वल कीर्ति को मलिन करते है, ऐसा अनर्थकारक लोकनिंद्य व आगम विरुद्ध कार्य राग की तीव्रता के बिना संभव नहीं है । अतः जो रात मे खाता है, वह निःसन्देह तीव्ररागी होने से महापापी है ।

— सामान्य श्रावकाचार, पृष्ठ-55

काम की, जो आँखो मे न डरे ? बच्चो की तो बड़ो से आँख मे आँख मिलते ही आँख नीची हो जानी चाहिए । उसे सब बाते आँख के इशारे मे ही समझना चाहिए । पिता के पैरो की आहट आते ही घर मे सन्नाटा न छाया तो वह काहे का अनुशासन ?"

× × ×

हृदय तो आखिर हृदय ही है । चाहे पिता का हो या माँ का! वह पुत्र से प्यार किए बिना कैसे रह सकता है ? सेठ सिद्धोमल का हृदय भी सजू से प्यार करने के लिए मचल रहा था फिर भी वे हृदय पर पत्थर रखकर अपने बेटे के हित के लिये इन सभी सिद्धान्तो का कठोरता से पालन कर रहे थे । यद्यपि इन सिद्धान्तो पर चलना उनके लिए तलवार की धार पर चलने के समान कठिन था; इसके लिये उन्हें अपने अन्दर बैठे पिता के हृदय को कुचलना पड़ा था । उनका मन बार-बार अपने प्रिय पुत्र सजू पर ढेरो प्यार उड़ेल देने का होता था, हँसने-हँसाने का होता था, उसके साथ खेलने और उसे खिलाने का होता था, उसे चटकारे ले-ले कर किस्से-कहानियाँ सुनाने का होता था, अपनी ही थाली मे एक साथ खाना खिलाने का होता था; पर वे अपने ही बनाये सिद्धान्तो का गला अपने हाथो से कैसे घोट दे ? अतः मन मारकर पीछे हट जाते थे और मुख पर गभीर भाव ले आते थे ।

अनेक बार तो ऐसा भी हुआ कि जब सजू सो रहा होता तो चुपचाप दबे पाँवो से उसके कमरे मे जाते और प्यार भरा चुम्बन लेने के लिए अपना मुँह बेटे के मुँह के पास ले जाते, फिर जाग जाने की आशका से तुरन्त पीछे हट जाते । सोते मे प्यार से उसके माथे पर हाथ फेरते, घटो खड़े-खड़े उसके मुखमडल को निहारते रहते और मन ही मन प्रसन्न होते रहते । पर उसके समक्ष उनका रुख वैसा ही कड़ा रहता ।

उस विचारे को क्या पता कि उसके पापा का उस पर कितना प्यार है? उसने तो सदा उनका विकराल रुख ही देखा था, अतः वह तो

से कोई भी काम कराने मे उन्हें कोई खतरा नहीं रहा था । पिता का परमिट जो मिल गया था ।

परिणाम यह हुआ कि सजू स्कूल जाने से ही जी चुराने लगा । आखिर वह कब तक चमड़ी उधड़वाता और वह भी पढ़ाई के कारण नही; बल्कि मास्टरजी के घरेलू कामो के कारण । या तो मास्टरजी के घर का काम करो, नही तो बन जाओ बेटा मुर्गा ! चाहे काम उसके वश का हो या न हो, करना तो पड़ेगा ही, वर्ना-----।

× × ×

बच्चो को यदि कोई मारे-पीटे, परेशान करे तो उसके लिए पिता ही सबसे बड़ी अदालत होती है, जहाँ वह अपनी फरियाद करता है; पर सजू के लिए उस अदालत के दरवाजे तो पहले से ही बद हो चुके थे, उसके पिता तो उसकी बात सुनते ही नहीं थे । आखिर सुने भी क्यो ? उसके प्रति उनकी यह धारणा जो बन गई थी कि "बच्चो को मुँह लगाना ठीक नही । शिकवा-शिकायतो के सिवाय बच्चे कहेगे भी क्या ? बस खेलने, खाने और पानी की तरह पैसा बहाने के अलावा बच्चो को काम ही क्या है ? -----"

इन कारणो से उसके लिए तो अब केवल माँ ही उसकी सुप्रिम-कोर्ट थी । सो जब पानी सिर के ऊपर से जाता दिखता था तो माँ के सामने केवल उदास हो मुँह लटका कर बैठ जाता, बस इसी मे माँ सब-कुछ समझ जाती और आम महिलाओ की भाँति बड़-बड़ाकर अपने गुबार निकाल लिया करती । पति के सामने इससे अधिक तो वह भी क्या कर सकती थी ?

एक दिन सजू की माँ सुधा ने अपने बीस वर्षीय बेटे सजू को उदास बैठा देखकर छोटे बच्चे की तरह अपनी गोद मे उसका सिर रखकर माथे पर हाथ फेरते हुए कहा – "बेटा ! क्या बात है ? आज तू ऐसा उदास क्यों हो रहा है ? क्या पिताजी ने कुछ कहा है, डाटा-डपटा है ?"

"हाँ, हाँ सुधा ! देखो न ! कितना अच्छा कहा इस सस्कृत के कवि ने !" — सिद्धोमल ने उत्साहित होते हुए कहा ।

"क्या खाक अच्छा कहा — यदि अच्छा कहा होता तो तुम यह क्यो भूल गये कि अब आपका बेटा भी बीस बरस का हो गया है।" मै पूछती हूँ — "और कबतक डाँटते-डपटते रहोगे इस तरह" ? सुधा ने अधिकार भाव से अपनी बात चालू रखते हुए आगे कहा — "देखते नहीं अब आपके बेटे की डाढ़ी-मूँछें निकल आई हैं । क्या अब भी दस-बारह वर्ष के बच्चों की तरह डाँटते-फटकारते रहोगे ?

नम्र होते हुए सिद्धोमल बोले — "डाढ़ी-मूँछो की कुछ न कहो, उनसे क्या फर्क पड़ता है । डाढ़ी-मूँछे तो बकरे के भी निकल आती है, क्या उनसे वह बकरा समझदार हो जाता है ? अस्तु ! पर, यह तो बताओ महाभाग ! कि मैने आज इससे कहा ही क्या है ? किसी की बिना सुने जो मन आये कहे ही जा रही हो ! अरे ! मैंने सदू से आज तो कुछ कहा ही नहीं, पिछले एक सप्ताह से भी मेरा सदू से आमना-सामना नही हुआ । पता नहीं वह एक सप्ताह से क्यो मुझसे आँखे चुरा रहा है; मै इधर तो वह उधर, मै उधर तो वह इधर — दूर-दूर रह रहा है । फिर यह डाँटने-डपटने की बात आई कहाँ से ?

मै उससे कुछ पूछना अवश्य चाहता था, पर उसका यह रुख देखकर मैंने जान-बूझकर बात नही की; क्योंकि मुझे अपने काम से ही फुरसत नही थी, अतः मैंने कोई भी बात छेड़ना ठीक नही समझा । आज तो मैंने इस मनहूस की सवेरे से सूरत भी नही देखी, फिर यह बात आई तो आई कहाँ से ? मै तुमसे यह पूछना चाहता हूँ ।" — जरा ! तेज स्वर मे सिद्धोमल ने कहा ।

झुझलाते हुए सुधा ने कहा — "फिर मनहूस कहा, क्या यह डाँटना नहीं है ?"

"अरे ! श्रीमतीजी ! पर, यह तो मैंने अभी कहा, इसके पहले क्या कहा ? जरा वह भी तो सुनूँ ।"

"मैं कुछ नहीं जानती, यदि तुमने कुछ नहीं कहा तो फिर यह आज सवेरे से उदास क्यों है ? आज तो इसने खाना भी ढंग से नहीं खाया" — रुँधे गले से भर्राई हुई आवाज में सुधा ने कहा ।

"मैं क्या जानूँ ? इसकी इससे पूछो ! मैंने तो इससे अब कुछ कहना ही छोड़ दिया है, मुझे इस पर कितना गर्व था, इस कलयुग में मुझे तो केवल यही एक सतयुगी बालक नजर आता था । पर जब से इसने स्कूल छोड़ा, तब से दिन-प्रतिदिन आवारा होता जा रहा है। आये दिन अड़ौसियों-पड़ौसियों की शिकायतें सुनते-सुनते मेरे तो कान ही पक गये हैं । मेरी तो इसने नाक ही कटा दी है । अब तो इससे कुछ कहने को मेरा मन ही नहीं होता ।" — कहते-कहते सेठ सिद्धोमल भावुक हो उठे । हताश हुए दुःखी मन से वे कहे जा रहे थे और सुधा विस्मयभाव से सुने जा रही थी — "अरे संजू की अम्मा ! क्या करें इस मूरख का ? इतना बड़ा हो गया और आवारा बना फिरता है । अरे ! बनिये का बच्चा है, न पढ़ पाया तो न सही, कौनसी नौकरी करनी थी, अपना धन्धा-व्यापार ही देखता । मैं कब तक देखूँगा ? इतना बड़ा व्यापार और अकेली मेरी जान ! क्या-क्या देखूँ ? तुम्हारे लाडले द्वारा घर का काम-काज देखना, मेरे काम में हाथ बंटाना, मेरा सहयोग करना तो एक तरफ रहा; मैं तो रोज-रोज उसके उलाहने सुनते-सुनते ही परेशान हो गया हूँ ।

जहाँ देखो, वहाँ से उधार ले रखा है, जिसका लिया उसे वापिस देने का नाम नहीं, बाप जो बैठा है चुकानेवाला । झूठ अलग बोलता है, धोखा-धड़ी ही धन्धा बना रखा है । घर की कितनी चोरी की है, यव तो तुम सोच भी नहीं सकतीं । जब आये दिन होती हुई चोरी से मैं परेशान हो गया तो मुझे एक-एक करके सभी नौकरों की छुट्टी करनी पड़ी है । अन्यथा चोरी के कलंक का टीका उन बेचारों के माथे पर मुफ्त में ही लग रहा था ।"

यद्यपि सेठ सिद्धोमल जान रहे थे कि चोरी नौकर नहीं करते, उनका वेटा ही करता है, पर नौकरो पर आँच न आये एतदर्थ उन्हें हटाना आवश्यक हो गया था । नौकरो के हटाने के वाद भी जव घर मे चोरी होना वन्द नहीं हुआ, तव तो हथेली पर रखे आवले की तरह स्पष्ट हो ही गया कि चोरी और कोई नही करता, सजू ही करता है, पर पुत्रमोह मे सजू की माँ ने कभी यह स्वीकार नहीं किया ।

× × ×

सजू की माँ की शह, मित्रो के दवाव और व्यसनो की वढ़ती हुई मार से वह धीरे-धीरे इतना मुँहफट और उद्दण्ड हो गया था कि पिता के पूछने पर उसने स्पष्ट कह दिया — "हाँ रुपये मैने उठाये है, बोलो ! आपको इसमे कुछ कहना है ? जो कुछ कहना हो, कहो, दिल खोलकर कहो !"

सजू की इसप्रकार दुःसाहसपूर्ण वाते सुनकर सेठ सिद्धोमल आग-ववूला हो गये । उन्होने कहा — "अच्छा तो तू ही चोर है !"

"चोर ! कैसा चोर ? मैने किस की चोरी की है ? जो मै चोर हूँ । मेरा माल है, मैने अपने काम मे लिया है, इसमे आपके पेट मे दर्द क्यो होता है ? वाप का पैसा बेटा खर्च नही करेगा तो और कौन करेगा ? लाओ तिजोरी की चावियाँ भी मुझे दे दो, वर्ना...।"

सजू का इसप्रकार उद्दण्डता भरा व्यवहार देखकर सिद्धोमल ने माथा ठोक लिया और अचनाक सीने मे दर्द हो जाने से सीने को जोर से दवाते हुए वही बैठ गये ?

उनकी समझ मे नहीं आ रहा था कि यह कैसे हुआ ? और अव उन्हें क्या करना चाहिए ? सवसे पहले तो उन्होने उसको सर्व अधिकारो से वचित करने की कार्यवाही करते हुए दैनिक पेपर मे यह सूचना निकलवा दी कि — "आज से सजू का मेरी सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं है । अतः जो भी इसको आर्थिक सहयोग करेगा, उसकी [illegible] मेरी नही होगी" और पत्नी के लाख समझाने पर भी माँ की ममता की परवाह न करते हुए सजू से हमेशा के लिए सम्वन्ध विच्[illegible]

राष्ट्र का कोढ़ (कलंक) बनकर रह गया ।" तब से संजू आवारा बना दर-दर की ठोकरें खाते हुए समाज

यही सब रोना रोते हुए सिद्धोमल ने पत्नी से कहा — "सुना है अन्नू-अज्जू की गरीब पत्नियाँ अलग घाट-घाट पर इसके नाम को रोया करती हैं । अन्नू-अज्जू सीधे-सादे गरीब आदमी हैं, दैनिक मजदूरी करके अपना एवं अपने परिवार का भरण-पोषण कर रहे थे, इसने उन्हें भी मदिरा पिला-पिला कर बर्बाद कर दिया है । एक बात होवे तो बताऊँ, क्या-क्या कहूँ इसकी करतूतें ?"

बात पूरी ही नहीं हो पायी थी कि बीच में ही पुत्र व्यामोह में पड़ी सुधा ने कहा — "संजू के पापा ! तुम्हें तो केवल एक संजू की ही सब गलतियाँ दिखती हैं । बेचारा वह अभी क्या जाने इन बातों में ? ये औरतें छिनारें ही ऐसी होती हैं, जो खुद तो दूसरों पर डोरे डालतीं हैं और बदनाम करती हैं बेचारे बच्चों को ! तुम क्या जानो तिरिया-चरित्तर ? खैर, और तो सब ठीक; पर तुम उस पर कभी हाथ मत उठाना ।"

"अरे सुधा ! मैं क्या पागल हूँ, तू ने कभी देखा है उस पर हा[थ] उठाते ? हाँ, डाँटता-फटकारता तो मैं अवश्य हूँ, पर पीटना तो [मैंने] पिछले पाँच बरस से छोड़ दिया है । इतना तो मै अच्छी तरह स[मझ] गया हूँ कि जब बाप का जूता बेटे के पैर मे आने लगे तब से पर हाथ नही उठाना चाहिए ।

देखो ! तुम्हारे सामने कैसा भोला बना नीची गर्दन किये बै[ठा है] तुम्हें मालूम है यह तुम्हारे पास आज क्यो आया है और ऐसा रू[आँसा] उदास-सा क्यो बैठा है ?"

सुधा ने अत्यन्त दुःख के साथ कहा — "प्राणनाथ ! [मुझे] कुछ मालूम नही था, मै व्यर्थ ही तुम पर इतनी झल्ला र[ही थी]

"तो सुनो, मैंने अब इसके सब तरफ से पंख काट [दिये हैं ।] बाजार में सबसे साफ-साफ कह दिया, इसे कोई उधार [दे तो] मै जिम्मेदार नही हूँ ।"

बस, अब जब इसे तुम्हारे सिवाय और कही शरण नही दिखी, तब यह तुम्हारे पास आया है ।

× × ×

माँ की तो कुछ ममता ही ऐसी होती है कि वह सबकुछ जानकर भी अनजान बन जाती है । पापा के चले जाने पर सजू ने अपनी मजबूरी का बयान करते हुए कहा — "माँ ! इसमें मेरा क्या अपराध है ? स्कूल मे मास्टरो ने मुझे पढ़ने ही नही दिया, दिन भर अपने घर का काम कराते, बच्चो को खिलवाते, काम नहीं बनता तो कामचोर कहकर मारते-पीटते और पापा से शिकायत करने की धमकी देते । इधर पापा उनके विरुद्ध कुछ सुनने को तैयार नही थे, अतः मुझे मजबूर होकर स्कूल छोड़ना पड़ा ।

तुम जानती ही हो कि पापा मुझे जेब खर्च को कितना-सा पैसा देते ? सारे दोस्त मेरी मजाक उड़ाते । इस कारण मुझे उधार लेना पड़ा । वह डॉ. साहब का लड़का राजू है न ? वह मेरा दोस्त है और उसके पापा उसे मन चाहा खूब पैसा देते, उसके साथ रहते-रहते उसने पहले मुझे सिगरेट पीना सिखा दिया और बाद मे उसके साथ रहने से धीरे-धीरे मुझे भी मदिरा पीने की आदत पड़ गई ।

एक दिन जब कही से मुझे रुपये नहीं मिले तो मैंने पापा की जेब से हजार रुपये उठा लिये । पापा कहते है — "मै चोर हूँ, भला अपने पापा के पैसे लेना भी चोरी है । वह तो मेरे ही है न ? चाहे आज लूँ या कल ?"

सजू की माँ सजू की बाते सुनकर किंकर्तव्यविमूढ़-सी होकर हतप्रभ रह गई, क्योकि पहली बार सजू को इतना बोलते सुना था । अतः उसने पूछा — "बेटा ! यह सब बोलना तुझे किसने सिखाया ?"

सजू ने कहा — "राजू अपने पापा से खूब बोलता है । माँ ! उसके पिता उसे जेब खर्च को मनमाना रुपया देते है, वे राजू से कुछ नहीं कहते ।"

यदि गेंद को जरूरत से ज्यादा दबाया जाय तो या तो हाथ से छूटकर एवं उचट कर दूर चली जाती है या फिर फूट जाती है। यही स्थिति संजू की हुई थी । अब वह माता-पिता से उचट कर दूर, बहुत दूर जा गिरा था ।

विश्वसनीयता

"जिस आदमी के बारे में आप यह कह सकते हैं कि वह विश्वसनीय नहीं है । उसके विरुद्ध और कुछ मत कहिए ।"

— कार्लाइल

यही एक इतना बड़ा दुर्गुण है, दोष है, जो उसकी सम्पूर्ण कमजोरियों को दर्शा देता है ।

हमारे भीतर लाख गुण हों, पर यदि विश्वसनीयता नहीं है तो वे लाख गुण राख हैं ।

× × ×

अविश्वसनीयता से बढ़कर और कोई धब्बा हो ही नहीं सकता, क्योंकि हमारी अविश्वसनीयता केवल हमारी ही अविश्वसनीयता नहीं है, वह हमारे परिवार, समाज व राष्ट्र की भी अविश्वसनीयता है ।

विश्वसनीयता हमारे जीवन का कोई आवरण नहीं, आचरण है, हमें दुःख हो या सुख, हम बढ़ें या मिट जाएँ, पर हमारे प्रति जो विश्वास है, हम उसे खण्डित नहीं होने देंगे — हमारा यह निर्णय ही हमारी विश्वसनीयता का प्राण है ।

वादा पूरा करना हमारी विश्वसनीयता की सबसे बड़ी कसौटी है ।

— लेखक

११

छोटा परिवार सुखी परिवार का नारा देनेवाले डॉ. धर्मचन्द और उनकी पत्नी डॉ. कनकलता जब दैवयोग से बड़े परिवार के चक्रव्यूह मे फस गये तो उनकी दशा भी दयनीय हो गई थी ।

पुत्र की चाह मे न चाहते हुए भी उनके एक के बाद एक — तीन लड़कियाँ हो गई । राजू उनकी चौथी संतान था । तीनों बहनें राजू से बड़ी थी । माता-पिता मिलाकर पूरे परिवार मे आठ सदस्य हो गये थे ।

यद्यपि आर्थिक दृष्टि से उनके पास कोई कमी नही थी, पिता रिटायर्ड जज थे, अतः उन्हें भी भरपूर पेशन मिलती थी । लाखो रुपये अनिवार्य जमा योजना, जीवन बीमा आदि के उन्हें मिल चुके थे । डॉ. दम्पति शासकीय सेवा मे सर्वोच्च पदो पर तो थे ही, अच्छी प्रतिष्ठा होने से उनके घर पर भी मरीजो की भारी भीड़ रहा करती थी ।

पर, संतान के जीवन को सुखमय बनाने के लिए पैसा ही सब कुछ नहीं होता, संतान पर व्यक्तिगत ध्यान देना भी अति आवश्यक होता है । थोड़ा-सा भी ध्यान हटा नहीं कि संतान पतन के किसी भी गहरे गड्ढे में गिर सकती है ।

डॉ. धर्मचद और उनकी पत्नी डॉ. कनकलता का स्वयं का कहना था कि "संतान पैदा करने से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण उनका सही ढंग से लालन-पालन, देख-भाल और पढ़ाने-लिखाने के साथ उनके सम्पूर्ण भविष्य को उज्ज्वल बनाना होता है और आज के इस महगाई के युग मे तथा अत्यन्त व्यस्त जीवन मे कोई कितना भी साधन स...
क्यो न हो, दो सतानो से अधिक का दायित्व वहन नहीं कर स...

पुत्रों के प्रति माता-पिता का जितना दायित्व है, उससे भी कहीं वहुत अधिक दायित्व पुत्रियों के प्रति होता है; क्योंकि यदि योग्य घर-वर की कमी के कारण उनका जीवन सुखी नहीं रह सका तो उनके माता-पिता न केवल उत्तरदायी ही होते हैं, बल्कि पुत्रियों को दुःखी देखकर स्वयं भी दुःखी होते हैं । और यह पीड़ा जीवनभर सहनी पड़ती है । यदि दैवयोग से रूप-रंग या गुणों में हीन हुई, तब तो लाखों रुपये खर्च करने पर भी योग्य घर-वर मिलना दुर्लभ हो जाता है ।

अतः सन्तानोत्पत्ति के समय यह विवेक जरूरी है कि जितना उत्तरदायित्व निभा सके, उतनी ही संतान हो ।

यह सब जानते हुए भी पुत्र-लालसा ने डॉ. धर्मचन्द और उनकी पत्नी डॉ. कनकलता को अंधा बना दिया था । दूसरों को मार्गदर्शन देने वाले स्वयं ही मार्ग से भटक गये थे । परिणाम यह हुआ कि उनके कुल का दीपक एकमात्र पुत्र राजू पारिवारिक तूफानी थपेड़ों में 'दिया और तूफान' की कहानी बनकर रह गया ।

× × ×

दादी माँ ने आवाज लगाई – "बेटा राजू ! तू तैयार हो गया है न ? मुझे मन्दिर जाने को देर हो रही है, प्रवचन आरम्भ हो गया होगा ? चल बेटा चल, मुझे जल्दी छोड़ आ !"

"दादी माँ ! मुझे तो आज स्कूल से ढेर सारा होमवर्क (गृहकार्य) मिला है, मै वह कब करूँगा ?" – राजू ने कहा ।

"वस, छोड़कर आ जा, वहाँ से तो मैं किसी तरह उठते-बैठते किसी के साथ आ भी जाऊँगी । पर यहाँ से एक तो अकेली जाऊँ कैसे ? और किसी तरह धीरे-धीरे चली भी गई तो जब तक पहुँचूँगी, तबतक प्रवचन ही पूरा हो जायगा । बेटा ! तुझे वहाँ रोकूँगी नहीं, चल जल्दी चल, देर मत कर !"

किताबें-कापियाँ समेटकर वस्ते में रखता हुआ राजू वड़वड़ाया – "प्रतिदिन यही समय तुम्हारे मन्दिर जाने का होता है और यही समय

मुझे होमवर्क करने को मिलता है । तुम ही बताओ दादी माँ । ऐसा कैसे चलेगा ? कब तक चलेगा ?"

"अरे बेटा ! तू ही बता न ? तेरे सिवाय मेरे बुढ़ापे का सहारा और है ही कौन ? मुझे रास्ते मे कुछ दिखाई तो देता नही है । सड़क पार करने मे यदि किसी की टक्कर लग गई तो मेरी तो हड्डी-पसली ही टूट जायगी न ?" — बड़े ही दीनभाव से दादी माँ ने कहा ।

"दादी माँ ! यदि मन्दिर न जाओ तो नही चलेगा ?"

"बेटा ! इसमे जाये बिना चलने न चलने की बात ही क्या है? भगवान थोड़े ही कहते है कि तुम हमारे दर्शन करने आओ । दर्शन-पूजन करने और प्रवचन सुनने से अपना ही लाभ है, इसलिए जाते हैं ।"

"क्या लाभ होता है इससे ?" — राजू ने पूछा ।

"बेटा अभी ही सब कुछ पूछ लेगा, अभी तो तू मुझे वहाँ पहुँचा दे, वहाँ जाने की जल्दी है न ? फिर जब भी तुझे समय मिले — मेरे पास आ जाना, मै तुझे सब समझा दूँगी । हाँ, जब तूने पूछ ही लिया है तो इतना तो तू भी समझ ही ले कि जो प्रतिदिन भगवान के दर्शन-पूजन करता है, वह एक न एक दिन स्वय भगवान बन जाता है । बाकी विस्तार से फिर कभी बताऊँगी । अब जल्दी चल! बाते रास्ते मे कर लेना ।"

रास्ते मे चलते-चलते दादी माँ ने कहा — "बेटा, मैने तो जिन्दगी मे कभी भी बिना मन्दिर का खाया-पिया नही है और बिना प्रवचन सुने भी कभी रही नही — इसलिए मै सोचती हूँ कि अब थोडी-सी जिन्दगी और है, बुढ़ापे मे धरम-करम न छूटे तो अच्छा है । एकमात्र यही तो जीवन की सच्ची कमाई है, इसके सिवाय और तो साथ जाता ही क्या है ? बेटा ! यह तो मेरा सौभाग्य है जो तुझ जैसा पोता मिल गया, अन्यथा मुझे इस बुढ़ापे में यह सहारा औ[illegible] देता ?

हाँ, और सुन ! मैं तुझे प्रतिदिन दो रुपये दूँगी, पर तू यह किसी से कहना नहीं कि मैं तुझे रुपये देती हूँ। जो भी जी में आये खा-पी लिया करना, समझे.......।"

दादी माँ ने मन में सोचा – "मुझे कौन-सा यह सब सिर पर बाँधकर ले जाना है । बच्चा है, खायेगा-पीयेगा और इस लालच में मेरा काम कर दिया करेगा ।"

"अच्छा दादी माँ ! तुम कितनी अच्छी हो । जब तुम तैयार हो जाया करो तो मुझे आवाज दे दिया करना, मैं कम से कम तुम्हारा काम तो करूँगा ही, तुम्हें दिखता नहीं है न ?"

× × ×

राजू स्कूल से लौटा ही था कि दादाजी ने आवाज लगाई – "बेटा राजू ! तुम आ गये ? जरा सुनो तो बेटा ! मैं तुम्हें यह पर्चा दे रहा हूँ, सो तुम दौड़कर बाजार से दवा तो ले आओ ।"

"अरे ! दादाजी, स्कूल से आया नहीं कि फिर....." ?

"अरे बेटा ! ऐसी बातें नहीं करते । देख बेटा ! यदि मेरा काम तू ही नहीं करेगा तो और कौन करेगा ? मैं तो तेरी कब से प्रतीक्षा कर रहा हूँ ? कितना अच्छा है मेरा बेटा ! देख बेटा ! तेरी बहिनें तो अकेली बाजार जाने से रहीं, फिर उन्हें पढ़ाई के कारण समय ही कहाँ मिलता है? ले ये पच्चीस रुपये, इनमें से दो-ढाई रुपये बचेंगे सो तुझे जो कुछ पसद हो खा-पी लेना । ठीक है न ?"

"अच्छा दादाजी ! आज तो ले आता हूँ, पर....।"

"पर क्या बेटा ! अब तो जबतक जीना है तबतक यही सब चलना है और यदि तू ही आना-कानी करेगा तो बोल और मैं किससे कहने जाऊँगा ? हाँ, तुझे जेब खर्चे को जितने पैसे चाहिए हों, मुझसे ले जाया कर; पर ध्यान रखना, काम को कभी मना मत करना, समझे।"

राजू ने सोचा – "चलो ठीक है, दादा और दादी – दोनों से मन चाहे रुपया मिलेंगे सो खूब मजा आयेगा । इनका काम ही कितना-सा

है और फिर इनका काम करने से पापा भी तो खुश रहेंगे सो इनके सिवाय उनसे अलग पैसे से लिया करूँगा । गुड ! वेरी गुड !! इतने पैसे मेरे दोस्तों मे किसी को भी नही मिलते होगे, जितने मुझे मिलेगे ।"

एक दिन राजू के पापा ने पूछा — "क्यो बेटा ! तुम दादाजी और दादी माँ का काम तो बराबर करते हो न ?"

राजू ने एक क्षण सोचकर जवाब दिया — "पापा ! करता तो हूँ, पर उनके कामो मे मेरा बहुत समय खराब हो जाता है, पापा आप ऐसा करो न? किसी लड़के को इस काम के लिए नौकरी पर रख लो तो कैसा रहे?"

"अरे बेटा ! अच्छे लड़के मिलते ही कहाँ है ?"

"अच्छा पापा ! यदि अच्छा लड़का मिल जाय तो आप उसे क्या वेतन दे सकते हो ?"

यदि अच्छा लड़का हुआ तो यही पाँच-सात रुपया रोज दे देगे ।

"हँसते हुए राजू बोला — "अच्छा पापा ! बताओ मै कैसा लड़का हूँ — अच्छा या बुरा ?"

पापा ने हँसी का जवाब हँसी मे देते हुए कहा — "अच्छा अब समझा मै ! तू तो मुझसे भी ज्यादा होशियार हो गया है । अच्छा चलो ठीक है, तुम्हें पाँच रुपये रोज मिलेगा, पर दादाजी की कभी शिकायत नही आनी चाहिए ।

और हाँ, राजू सुनो ! कल तुम्हारे मास्टरजी मिले थे, वे कह रहे थे कि आजकल राजू स्कूल समय पर नहीं पहुँच रहा है, क्या बात है ?"

"बात क्या है पापा......।"

राजू कुछ कहना ही चाहता था कि "चलो कोई बात नहीं, आगे ध्यान रखना " — यह कहकर उसके पापा अस्पताल चले गये ।

× ×

बड़ी बहिन बेबी ने कहा – "राजू ! राजू !! ओ राजू !!! क्यों राजू ! तू सुनता क्यों नहीं है ? बहरा हो गया है क्या ?"

"क्या है दीदी ?वहीं बैठे-बैठे राजू ने कहा ।"

"वहीं बैठे-बैठे दीदी-दीदी करता रहेगा या यहाँ आयेगा भी ?"

राजू ने झुंझलाकर अपना बस्ता एक ओर फेंकते हुए कहा – "फरमाओ ! क्या आज्ञा है ?"

"जरा बाजार तो चला जा, सब्जी लेकर लौटते समय प्रोफ़ेसर सिन्हा के यहाँ से एक बुक लेते आना ।"

"मै अभी डॉ. सिन्हा के यहाँ नहीं जा सकूँगा, अभी मुझे स्कूल का कुछ जरूरी काम करना है । अभी-अभी बबली दीदी ने भेजा था, तभी तुम अपना काम बता देतीं । अब तो मैं जब शाम को अपने काम से जाऊँगा तभी आपकी बुक भी ले आऊँगा ।" सब्जी तो अभी ढेरों पड़ी है, देखो न जरा फ्रिज में ।"

"मुझे क्या पता था कि तू कब/कहाँ जाता है ? मुझे तो अभी बुक चाहिए । तू अभी जाकर ला ! यदि मेरा कहना नहीं मानेगा तो समझ लेना, मै तुझसे कभी भी बात नहीं करूँगी और कभी कोई चीज लाकर तुझे नहीं दूँगी । ठीक है मत जा ! आने दे पापा को....।"

× × ×

राजू सोच रहा था – "एक बिचारा राजू और ढेर सारे काम ! किस-किस के काम करे ? और कब करे ? सभी के सब काम अर्जेन्ट, न कोई काम कल पर छोड़ा जा सकता है और न दो-चार काम कभी एक साथ ही किये जा सकते हैं ? जब जिसके मुख से जो निकले वह काम उसी समय होना चाहिए । सबको अपना-अपना काम ही महत्त्वपूर्ण लगता है, दूसरे के काम की तो किसी को कोई परवाह ही नहीं ।"

मम्मी-पापा के आते ही बेबी ने कहा – "पापा ! न तो राजू पढ़ता ही है और न कोई काम ही करता है, मैं तो इससे तंग आ गई हूँ ।"

बबली ने भी छाप लगा दी, "हाँ, पापा ! दस बार कहो तब एक बार सुनता है ।"

जब मम्मी-पापा राजू की शिकायतें सुनते-सुनते परेशान हो गये तो एक दिन उन्होंने भी लड़कियों से कुछ कहने के बजाय राजू को ही उसके कर्त्तव्य का बोध कराया ।

उन्होंने प्रेम से कहा – "देखो बेटा ! हमें तो समय मिलता नहीं है, घर पर भी दिन-रात मरीज घेरे रहते हैं और अस्पताल भी जाना ही पड़ता है । दादी-माँ और दादाजी से तो अपना ही काम नहीं हो पाता । वे तो बिचारे कुछ कर ही नहीं सकते, उल्टा उन्हीं की सेवा अपने को करनी है । घर में तुम्हीं तो सबसे छोटे हो । और छोटों का कर्त्तव्य है कि वे बड़ों की बात मानें । तुम्हारी बहिनों का काम तुम नहीं करोगे तो और कौन करेगा ? तुम्हीं तो एकमात्र उनके भाई हो । कल शादी होकर सब अपनी-अपनी ससुराल चली जावेंगी, फिर कौन कहेगा तुमसे काम करने को? और उनकी डॉक्टरी की पढ़ाई भी तो कठिन है न ? तुम्हारा कितना-सा होमवर्क है....?

और हाँ स्कूल से भी कोई शिकायत नहीं आनी चाहिए । ठीक है न !"

मम्मी ने भी पापा की हाँ में हाँ मिलाते हुए राजू को उसके कर्त्तव्य का पाठ पढ़ाया ।

वह माता-पिता को मना भी नहीं कर सका और सब के सभी काम भी करे तो कैसे करे ? इस कारण वह विचार में पड़ गया, किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया ।

सोचने लगा – "करूँ तो करूँ क्या ? यह सब कैसे संभव है? काम का कोई ओर-छोर तो है नहीं ? जिसके सामने दिखता हूँ, वही छोटा समझकर आदेश दे देता है । कुछ नहीं तो जितने बार भी कालबेल – घंटी बजे – दरवाजा ही खोलते-लगाते रहो । कोई मेहमान आये तो पानी ले आओ, चाय बनालो, पान ले आओ; कुछ नहीं तो वह शीशी उठाना, वह रख देना, स्केल कहाँ है ?

जब बच्चा सामने बैठा हो तो किसी को भी हिलने-डुलने की क्या जरूरत है ?"

राजू ने सोचा – "अच्छा तो यह होगा कि अपन किसी के सामने ही न रहें, तो फिर न कोई देखेगा और न भौंकेगा । न होगा बांस न बजेगी बांसुरी ।"

यह गुरुमंत्र बुद्धि में आते ही वह खुशी के मारे उछल पड़ा । बस, अब क्या था ? अब तो वह अधिकांश समय घर से बाहर ही रहने लगा ।

जब पापा पूछते – "कहाँ गये थे राजू ? तो राजू का उत्तर होता – दादाजी के काम से ।"

और जब दादाजी पूछते – "राजू बहुत देर से दिखे नहीं कहाँ चले गये थे ?"

राजू का उत्तर होता – "पापाजी के काम से ।"

इस तरह कोई भी क्यों न पूछे – तुरन्त एक को दूसरे का नाम व काम बता कर छुट्टी पा लेता ।

धीरे-धीरे स्कूल जाने से भी बचने लगा, क्योंकि जब स्कूल का होमवर्क पूरा नहीं होता तो वहाँ से भी शिकायतों पर शिकायतें आतीं। और जब घर मे ठहरेगा ही नहीं तो होमवर्क करे कब ?

बाहर रहने के लिए भी तो कोई न कोई सहारा और साथी चाहिए। सो 'खुरपी को टेढ़ा बेट' तो मिल ही जाता है; उसे भी संजू का साथ मिल गया । सजू भी इसी से मिलती-जुलती समस्या का शिकार था।

सजू घर से और होस्टल से निष्कासित था और राजू घर के कामों से परेशान । यद्यपि राजू घर से पूरी तरह नहीं भागा था, पर जो स्थिति भगोड़ों की होती है, लगभग वही स्थिति उसकी थी । •

(१२)

वर्षाऋतु का समय, कभी घनघोर घटाये, कभी रिमझिम-रिमझिम बरसात, कभी ओले तो कभी तूफान, कीट-पतगो, मक्खी-मच्छरो का सचार, कीड़े-मकोड़ो, चींटी-चींटियो, लट-केंचुओ आदि सूक्ष्म जीवों की भरमार, जगल में जहाँ देखो वहाँ चारो ओर हरियाली ही हरियाली, पाँव रखने को भी ऐसी कोई जगह खाली नहीं थी जहाँ हरियाली न हो । पगडडियो में भी हरियाली उग आई थी । कच्चे रास्तों में जहाँ देखो वही पानी और कीचड़ ही कीचड़ भरा था ।

ऐसी स्थिति मे अहिसा महाव्रत के धारी बनवासी साधुसघ का केवल आहार के निमित सुदूरवर्ती वन से नगर मे आना-जाना सभव नहीं था और नगर मे साधु रहते नहीं हैं; क्योंकि गृहस्थो का सान्निध्य, नगर का कोलाहल तथा गृहस्थो के आवास उनकी आत्मसाधना के अनुकूल नही होते ।

नगरो मे तो वे केवल आहार के लिए ही आते हैं, सो उस समय भी बैठना ठीक नही मानते । अतः खड़े-खड़े ही आहार लेकर तुरन्त वापिस चले जाते । इस कारण मुनि सघ को एक क्षण भी गृहस्थो के पास बैठना-उठना इष्ट नहीं था । यद्यपि उन्हें गृहस्थो से कोई द्वेष नही था; किन्तु वे जिन राग-द्वेष के उत्पादक प्रसगो का त्याग कर चुके हैं, गृहस्थो के पास तो प्रायः उन्हीं प्रसगो की चर्चा-वार्ता होती है । अतः आचार्यों का भी यही आदेश होता है कि गृहस्थो के सम्पर्क मे साधु अधिक न रहे । इस कारण दिगम्बर साधुओं के सघ वर्षायोग के लिए ऐसा एकात स्थान वन प्रदेश चुनते हैं जो न नगर के नं निकट हो और न अति दूर ।

दिगम्बर साधुसंघ अपना चातुर्मास स्थापित करने के लिए किसी वन प्रदेश की तलाश में था, जो न नगर के अति निकट हो अति दूर; निर्जन और निर्बाध भी हो । जंगल के जानवरों कोई बाधा नहीं थी; क्योंकि वे उनसे राग-द्वेष की बातें करके, समय व उपयोग खराब नहीं करते, कोलाहल नहीं करते, आपस ड़ते-झगड़ते नहीं हैं, किसी से धोखा-धड़ी नहीं करते । शाम को र चुपचाप बैठ जाते हैं, सवेरे उठकर चुपचाप ही चले जाते हैं। रात मे खाते-पीते, न रोते-गाते, बस जो दिन भर खाया-पीया, रात चुपचाप बैठकर उसी की जुगाली किया करते हैं ।

सयोग से उस साधुसंघ को उसी नगर के निकट एक उपयुक्त स्थान मिल गया; जहाँ ज्ञान, सुदर्शन और विज्ञान वगैरह रहते थे । साधु सघ वहाँ ठहर गया और वहीं चातुर्मास - वर्षा योग स्थापित करने का निश्चय कर लिया ।

उस निर्जन-निर्बाध वन प्रदेश में बड़े-बड़े घने छायादार वृक्ष थे, वही एक बरामदानुमा खण्डहर-सा बहुत बड़ा मकान था । उस मकान में न किवाड़ लगे थे, न किवाड़ लगने जैसी कोई व्यवस्था ही बनी । केवल चारो ओर दीवालें थीं और थे बीच-बीच में छत के आधारभूत खंभे, न कोई कमरा न कोई पार्टीशन दीवालें ।

साधुओं के वर्षा योग के अलावा तो वहाँ केवल जंगली जानवर ही सुस्ताया करते थे, पर हर वर्षाकाल में आस-पास विहार कर रहा कोई न कोई साधु सघ वहाँ आ ही जाता था । साधुसंघ से उन जानवरों को भी कोई बाधा नहीं थी, बल्कि लाभ ही था । दिगम्बर साधुओं की वीतराग भाववाही परम शांत मुद्रा देखकर वे जानवर भी अप[illegible] जन्मजात वैर-भाव भूल जाते थे । वहाँ किसी के आने-जाने की रुका[illegible] तो थी नहीं, पर गृहस्थ वहाँ स्वभावतः कम ही ठहरते थे; क्यो[illegible] वहाँ उन्हें अपने अनुकूल आरामदायक बैठने-उठने एवं सुख से [illegible] बिताने के साधन जो नहीं थे । साधुओं के हित में भी यही था

उस जगल मे पूरा जनतत्र था । जब जिसे आना हो आये, जाना हो जाये, रोक-टोक का कोई काम नही ।

उस वन और भवन की बनावट से ऐसा लगता था कि सभवतः वह किसी धर्मवत्सल राजा या राजपुरुष द्वारा साधु-सतो की साधनास्थली के रूप मे ही निर्मित और विकसित किया गया हो । उसे छोटा वन या बड़ा उपवन कह सकते हैं ।

पुराने जमाने मे ऐसे स्थानो को वसतिका कहा जाता था और उनमे साधु-सत आत्मसाधना किया करते थे ।

× × ×

यह नगर निवासियो का परम सौभाग्य ही समझना चाहिए कि कभी किसी उदारमना धर्मात्मा पुरुष ने वह साधुओ के धर्म साधन का साधना स्थल बना दिया था, जिससे वहाँ के नागरिकों को सहज मे ही पीढियो से धर्म लाभ मिलता आ रहा है । धर्मायतन बनाने का यही तो महत्त्व है । जिसके भी धन से वह साधन बना होगा, उसके उस द्रव्य का सबको कितना बड़ा लाभ है ? प्रतिवर्ष साधु तो लाभ लेते ही है, समाज भी उससे लाभान्वित होता है । वैसे तो किसी को पता ही नही था कि साधुसघ कब आकर ठहर गया है; पर जब साधुगण आहार के लिए नगर मे आये तो सर्वप्रथम वे दर्शनार्थ जिन मन्दिर गये ।

यद्यपि नग्न दिगम्बर साधुओं को जिन दर्शन पूजन एव प्रक्षाल आदि करना अनिवार्य नहीं है; क्योकि जो स्वय पूज्य और दर्शन देने योग्य बन गये है, उन्हे अब पूजन से कोई प्रयोजन नहीं रहा; पर जहाँ जिन मन्दिर होता है, वहाँ दर्शन करने वे जाते अवश्य हैं।

जहाँ जिन दर्शन का सहज लाभ मिल रहा हो, उसे भला कौन छोड़ना चाहेगा । जिनालय में सुदर्शन और ज्ञान दोनो उस समय मौजूद थे; क्योकि अभी-अभी प्रवचन समाप्त हुआ ही था । दोनो ने भक्ति-भाव से साधुओ की वदना की और अपने भाग्य को सराहा । वर्षाऋतु मे मुनिराजो के दर्शन होने से उन्हे निश्चय हो गया था कि साधुसघ ने

है ? मधुमक्खियों को फूलो का रस एकत्रित कर मधु बनाने और सुरक्षित रहने के लिए मोमयुक्त वातानुकूलित छत्ता बनाने का प्रशिक्षण कौन देता है ? चीटियो को सामूहिक रूप से सगठित होकर अन्नकण इकट्ठा करने की शिक्षा कहाँ से मिलती है ? पशुओं को जन्मते ही पानी मे तैरना किसने सिखाया ? और जाने ऐसे कितने विचारणीय प्रश्न है जो हमारे पुनर्जन्म और पूर्व के सस्कारो को सिद्ध करते है।

ये सब उनके जन्म-जन्मान्तर और वश परम्परागत सस्कारो के ही सुपरिणाम हो सकते है जो उन्हें अपनी पूर्व की पीढ़ी-दर-पीढ़ी से मिलते आ रहे है ।

सस्कार दो तरह से प्राप्त होते हैं — एक वश परम्परागत पूर्व पीढ़ियो से और दूसरे जीव के पूर्व भवो से । अर्थात् एक देह की पीढ़ी से और दूसरे आत्मा की पीढ़ी से ।"

वश परम्परागत सस्कारो को स्पष्ट करते हुए आचार्यदेव ने अपने प्रवचन मे एक किवदन्ती का उल्लेख करते हुए कहा — "कुसस्कारों का कुप्रभाव भी कहाँ तक हो सकता है, इसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता ।

एक थी जेबकतरी, जो जेब काटने मे बहुत कुशल थी । उसे इस बात का गर्व था कि उसे कोई जेब काटते हुए पकड़ नहीं सकता ।

मान तो रावण का भी नही रहा, सो चोरो की तो बात ही क्या है? एक दिन जब वह जेब काटते हुए रंगे हाथो पकड़ी गई तो उसे तो पकड़ने वाले की होशियारी पर आश्चर्य हुआ ही, साथ ही जिसकी जेब काटी गई थी, उसे भी भारी आश्चर्य हुआ; क्योंकि वह भी अपने को अब तक एक अद्वितीय जेबकट माने बैठा था । उस दिन उसका भी गर्व गल गया, जब उसने जेबकतरी के हाथ की सफाई को अपनी आँखो से प्रत्यक्ष देखा ।

दोनो एक-दूसरे से प्रभावित तो हुए ही, आँखों ही आँखो में दोनो का व्यवहार भी प्रेमालाप में बदल गया । जेबकतरे ने जेबकतरी का

हाथ तो पकड़ ही रखा था और गुणों का मिलान भी बिना ब्राह्मण के मिलाये ही मिल गया । दोनों एक नम्बर के जेबकट जो थे, अतः उनका वह हाथ का पकड़ना ही 'हथलेवा' हो गया, पाणिग्रहण-संस्कार में बदल गया । दोनों मिलकर वही अपना पुस्तैनी धंधा करने लगे ।

वैसे तो सभी बालक जन्म से मुट्ठियाँ बाँधे ही आते हैं, परन्तु उनसे जो बालक हुआ, उसकी दायें हाथ की मुट्ठी कुछ इस तरह बन्द थी कि खुलती ही नहीं थी । जब भी खोलने का प्रयत्न किया जाता तो वह जोर-जोर से रोने लगता था । अन्ततोगत्वा उन्होंने उसके हाथ का ऑपरेशन कराने का निश्चय किया । जाँच-पड़ताल के बाद डॉक्टर ने ऑपरेशन से इन्कार करते हुए मनोचिकित्सक को दिखाने की सलाह दी ।

मनोचिकित्सक ने बालक के भयाक्रान्त चेहरे और रोने की आवाज से बन्द मुट्ठी के रहस्य का बहुत कुछ अनुमान तो कर ही लिया था। शेष रही-सही शंका को दूर करने के लिए उस बालक के माता-पिता से मनोरंजन के मूड में कुछ अकड़कर पूछा – 'तुम्हारा धंधा क्या है ?'

सकपकाते हुए दबे स्वर मे बालक का पिता बोला – 'आप ...... आपकी जो फीस हो, हम देने को तैयार हैं । आप हमारा धंधा जानकर क्या करेंगे ?

अभयदान देते हुए गभीर स्वर मे डॉक्टर ने कहा – 'चिन्ता मत करो, हम पुलिस वाले नही हैं, हमे बताने मे तुम्हें कोई खतरा नहीं है ।'

वशपरम्परागत सस्कारो से अवगत हो डॉक्टर ने बालक की मनोवृत्ति पहचानकर अपने गले की सोने की चैन उतारकर ज्यो ही बालक को दिखाई कि बालक ने अपने पैतृक सस्कारवश सोने की चैन को देखते ही मुट्ठी की अँगूठी फेक दी और चैन पकड़ ली ।

यह वही अगूठी थी, जिसे प्रसूति के काल मे दाई की उगली से गिरते ही बालक ने मुट्ठी मे दबा ली थी । क्यो नहीं दबा लेता ?

चुहिया का बच्चा भी तो जन्मजात जमीन खोदना व बिल बनाना जानता है ।"

इस प्रकार सरस और हृदयस्पर्शी प्रवचन करते हुए आचार्यश्री ने आगे कहा — "यदि हम अपनी सतान को दुराचारी नहीं देखना चाहते हैं, तो हमे अपने दुराचारो को तिलाजलि देनी होगी और अपने बच्चो को सदाचार के सस्कार देने होगे ।"

अपने प्रवचन को जारी रखते हुए आचार्यश्री ने कहा —

"दूसरे कुछ सस्कार ऐसे भी होते है, जो हमारे पूर्व भव-भवान्तरो से हमारे साथ आते हैं । राजुल-नेमीकुमार की विगत नौ भवो की पुरानी प्रीति, कमठ और पार्श्वकुमार का पुराना इकतरफा वैर-विरोध तो आगम सिद्ध व लोक प्रसिद्ध है ही; और भी ऐसे अनेक पौराणिक उदाहरण हैं जो पूर्वभवो से चले आ रहे सस्कारों को सिद्ध करते हैं ।

देखो न ! वह ब्राह्मणकन्या, जिसे दैवयोग से उन्हीं दिगम्बर जैन साधु के दर्शन का सौभाग्य मिल गया जो उसके पूर्वभव (वायुभूत) के मामा थे । साधु को भी उसे देखते ही पूर्व सस्कारवश धर्मस्नेह उमड़ आया था । अतः उन्होने उसे पात्र जानकर उसके कल्याण की भावना से पाच अणुव्रत दे दिये थे ।

जब यह बात उस बालिका के पिता को पता चली तो वह पुत्री से नाराज हुआ । नाराजगी का कारण व्रत ग्रहण करना नही, बल्कि जैन साधु से व्रत ग्रहण करना था; क्योकि उसमे जैनत्व के सस्कार नही थे, इस कारण उसके अन्तरात्मा को जैन साधु के द्वारा दिये गये व्रत स्वीकृत नही हो सके । उसने बेटी से आदेश की मुद्रा मे कहा — "बेटी ! तू ये व्रत छोड़ दे ।"

× × ×

बेटी की हार्दिक भावना उन व्रतों को छोड़ने की नहीं होते हुए भी वह पिता की आज्ञा की अवहेलना नही कर सकी । अतः वह

से विनयपूर्वक बोली – "पिताजी ! साधु महाराज ने कहा
यदि तेरे पिता को ये व्रत पसंद न आवें तो वहीं घर बैठे मत
देना, मेरे व्रत मुझे वापिस कर जाना । अतः यदि आप इन्हें
वाना ही चाहते हैं, तो उन्हीं मुनिराज के पास चलकर मैं ये व्रत
हें वापिस करूँगी; क्योंकि मैं उन्हें वापस करने का वचन देकर आई
।"

बेटी के अनुरोध पर पिता पुत्री को लेकर मुनिराज के दिये व्रतों को उन्हें वापिस लौटाने के लिए जा रहा था कि रास्ते में उन पिता-पुत्री ने एक के बाद एक चार ऐसी घटनाएँ देखीं, जिनमें क्रमशः एक को हत्या के अपराध में फांसी, दूसरे को असत्य भाषण के अपराध में जिह्वाछेद, तीसरे को चोरी के अपराध में आजीवन कारावास और चौथे को बलात्कार के अपराध में लोहे की गर्म शलाकाओं से दागने का दण्ड दिया जा रहा था ।

बेटी ने कहा – "पिताजी ! मैंने तो इन्हीं सब पापों के त्याग के व्रत लिये हैं । इसमें मैंने क्या बुरा किया है ? क्या इन पापो
करके मुझे भी ये दुःख नहीं भोगने पड़ेंगे ? अतः आप मुझे इ
व्रतों को छोड़ने के लिए बाध्य न करें ।"

"अच्छा ! ठीक है, व्रत मत छोड़ना, परन्तु वहाँ तक चल
सही, उस साधु को इतना उलाहना तो दे ही आवें कि मेरी बेटी
ये व्रत दिए सो दिए, परन्तु अब तुम आगे भविष्य में किसी क
तरह व्रत वगैरह देकर बहकाने की कोशिश नहीं करना ।"

ज्योंही उस कन्या के पिता ने जैन मुनि से उलाहना देते ह
– "महाराज ! आपने मेरी बेटी को मेरी अनुमति के बिन
देकर अच्छा नहीं किया । यह तो कोई बात नहीं, पर...

"पर क्या ?" कहते हुए करुणासागर मुनिराज बोले – "
तुम्हारा कहना सत्य है कि माँ-बाप को सूचित किए बिना

देना योग्य नहीं है । परन्तु मैने तो अपने भानजे को व्रत दिये हैं, तेरी बेटी को नहीं ।"

यह सुनकर यज्ञदत्त आश्चर्यचकित होकर बोला – "महाराज ! हमने तो सुना था कि जैन साधु सत्य महाव्रत के धारी होते हैं । ये आप क्या कह रहे हैं ? क्या यह मेरी बेटी नहीं है ?"

यज्ञदत्त के ऐसा कहने पर मुनिराज ने बेटी के माथे की ओर हाथ पसार कर कहा – "हे वायुभूत ! मैने तुझे तेरे पूर्वभव मे जो-जो पढ़ाया था, उसे यथावत् सुना ।"

इतना सुनते ही उस कन्या को 'जातिस्मरणज्ञान' हो गया, जिसमे उसे अपने पूर्वभव वायुभूत की पर्याय मे मामा के पास पढ़ा हुआ सम्पूर्ण जिनागम का सार स्मृतिपटल पर प्रत्यक्षवत् प्रतिभासित होने लगा ।

ज्योंही उसने अपने पूर्वभव मे पढ़े हुए सस्कृत-प्राकृत भाषा मे आध्यात्मिक छंद गा-गाकर सुनाना प्रारम्भ किया, जिन्हें कभी न उस लड़की ने सुने-पढ़े थे और न उसके पिता ने । अतः उन्हें सुनकर उसका पिता आश्चर्यचकित तो हुआ ही, गद्‌गद् भी हो गया ।

जब अनन्तमती का पिता पानी-पानी हो गया तो मुनिराजश्री ने उसे उसकी पुत्री के पूर्वभव का सारा वृतान्त बता दिया, जिसे सुनकर यज्ञदत्त बहुत प्रभावित हुआ और मुनिश्री का नानाप्रकार से बहुमान प्रगट करता हुआ कृतज्ञता प्रगट करने लगा ।

आचार्यश्री ने अपने प्रवचन का उपसहार करते हुए कहा – "यदि हम भी अपनी संतान को सुखी, समुन्नत, सदाचारी और सब तरह से समृद्ध देखना चाहते हैं तो हमारा कर्तव्य है कि हम भी उनमें ऐसे ही धार्मिक व नैतिक संस्कार डालें जैसे वायुभूत के मामा ने अपने भानजे में डाले थे ।

देखो, अपने किसी कुटिल परिणाम के फलस्वरूप वायुभूति स्त्री पर्याय मे चला गया, तथापि उसके पुराने सस्कारो के कारण उसे पुनः सन्मार्ग मिल गया ।

प्रातः-शाम घर पर ही णमोकार मत्र की माला फेर लेता था । सो वह भी पिताजी की दी हुई विरासत समझकर । मात्र उन्हें सम्मान देने के लिए, अन्यथा उसे तो मानो धरम-करम से कुछ सरोकार ही नही था ।"

यह सोचते-सोचते ज्ञान ने सकल्प किया कि — "अब मै इसी धार्मिक सस्कारो के प्रचार-प्रसार के काम को सर्वाधिक महत्व दूँगा । इससे बढ़कर दुनिया मे और कोई काम नहीं हो सकता ।" ●

१३

'संतोषी सदा सुखी, बहुधंधी बहु दुखी' का सिद्धान्त अब धीरे-धीरे डॉ. धर्मचन्द की समझ में आने लगा था; क्योंकि बहुधंधी होने के कारण वे राजू पर उतना ध्यान नहीं दे पाये, जितना उसके जीवन के विकास के लिए आवश्यक था । उनके एकमात्र पुत्र राजू के आवारा होने में उनका धनोपार्जन में अतिव्यस्त रहना भी एक कारण था । पुत्र के लोभ में उन्होंने परिवार तो बढ़ा लिया था, पर अब उसके भरण-पोषण के लिए धनोपार्जन करने में उन्हें दिन-रात एक करने पड़ रहे थे ।

जिसके लिए डॉ. धर्मचन्द यह सबकुछ कर रहे थे, वही उनका इकलौता बेटा यथोचित मार्गदर्शन व देख-रेख की कमी के कारण किसी भी कक्षा में अच्छे अंकों से सफल नहीं हुआ । यद्यपि उसकी बुद्धि अच्छी थी, यदि उसे यथोचित मार्गदर्शन और पढ़ने का पर्याप्त मौका मिलता तो वह प्रथम श्रेणी में ही हमेशा उत्तीर्ण होता । पर, दादा-दादी और बहिनों के काम के दबाव में वह कभी ढंग से पढ़ ही नहीं पाया था ।

डॉ. दम्पति की भी अपनी एक समस्या थी, वे बेचारे मजबूर थे, उनका धनार्जन में उलझने का सबसे बड़ा कारण उनकी तीन-तीन जवान कन्यायें थीं । वैसे वे स्वभावतः संतोषी प्राणी थे, पर परिस्थिति ही कुछ ऐसी निर्मित हो गई थी कि उन्हें धनार्जन के सिवाय दूसरा कोई रास्ता ही दिखाई नहीं देता था ।

तीनों ही लड़कियाँ उच्च शिक्षा ले रही थीं, तीनों की शादी की समस्या सामने अलग मुँह बाये खड़ी थी, दुर्भाग्य से लड़कियाँ भी रूप-रंग और कद-काठी में इतनी सुन्दर और आकर्षक नहीं थीं कि कोई भी उन्हें ललककर ब्याह कर ले जाये । अतः दहेज के लिए उन्हें अधिक से अधिक धनार्जन करना उनकी आवश्यक आवश्यकता बन गई थी ।

दहेज न लेने का सकल्प करना तो उन्हें आसान था,· पर दहेज न देने की बात तो सोचना भी उन्हें पागलपन-सा लगता था; क्योंकि वह अपने हाथ की बात ही नही है ।

ये सोचते थे, "आदर्श की बाते कोई कितनी भी करले, पर जिसके घर मे एक के बाद एक — तीन-तीन कन्याये ब्याह के योग्य हो गई हो, उसके दिल पर क्या बीतती है ? यह तो उसी के दिल मे झाँककर देखना पड़ेगा।

जो स्थिति घूस के लेन-देन पर घटित होती है, वही स्थिति आज दहेज की है । घूस न लेने की प्रतिज्ञा तो हम-तुम कोई भी कर सकता है, पर घूस न देने की कसम कैसे खाई जा सकती है ? खासकर वहाँ, जहाँ घर से बाहर कदम रखा नही कि हर कदम पर घूस के टुकड़े डालने ही पड़ते हो भूखे भेड़ियो को । इस पर तुर्रा यह कि वह भी सलीके से दी जाए । घूस देना भी एक आर्ट है, कला है, जो हरएक के बलबूते की बात नहीं है । इस कारण सीधे-सादे सज्जनों का, ईमानदार आदमियो का तो घर से बाहर निकलना ही कठिन हो गया है ।

यदि हम ट्रेन मे बैठने के लिए टी.टी.आई. को पचास का नोट नहीं चढाये तो वह भी हमे ट्रेन मे नहीं चढ़ने देता है । बोलो ! कोई क्या करे ऐसी स्थिति में ? यात्राये तो करनी ही हैं, कभी-कभी तो आरक्षण के बावजूद भी टी.टी. का टैक्स चुकाना आवश्यक हो जाता है, वरना क्या प्रमाण कि यही तुम्हारा नाम है ? और वर्मा का शर्मा तथा शर्मा का वर्मा लिखा जाना जितनी सामान्य भूल है । उस सामान्य-सी भूल को बिना घूस दिए सुधारना व यात्रा सुलभ कराना उतना ही दुर्लभ है ।

ये तो अब विश्वव्यापी समस्याये बन गई है ? इनके बारे मे अधिक सोचना ही पहाड़ से माथा मारने जैसा लगता है । हाँ, और घूस लेने वालो को ही थोड़ा-बहुत नैतिकता का पाठ

इतनी जल्दी धधे मे लगाकर भी क्या करेगे ? कमाई की तो कोई समस्या है नहीं । न भी कमाये तो भी इसके खर्च लायक दस-बारह हजार रुपये मासिक आय तो मकान किराया और ब्याज वगैरह से ही हो जायेगी ।

पर खाली दिमाग शैतान का घर होता है, अतः धधे में उलझाना भी जरूरी है । पर अभी नहीं, अभी तो कम से कम तीन बरस के लिए इसे कहीं बाहर ऐसी जगह भेजना ही चाहिए ।

इतने लबे सोच-विचार के बाद भी उन्हें यह समझ मे नहीं आ रहा था कि आखिर भेजे तो भेजे कहाँ ? कोई छात्रावास ? कोई होस्टल ? कोई रिश्तेदारी ? उन्हें कही कोई उपयुक्त जगह नजर नही आ रही थी । सोचते-सोचते सयोग से बैठक की सेंटर टेबल पर नजर चली गई, उस पर एक मासिक पत्रिका पड़ी थी, जिसके चौथे कवर पृष्ठ पर ही बड़े-बड़े अक्षरों मे लिखा था, 'आत्मार्थी छात्रों को अपूर्व अवसर' । डॉक्टर ने कौतूहलवश यो ही उठाकर देखा, दो-चार लाइने पढ़ी तो उन्हे ऐसा लगा कि यह तो राजू के हिसाब से बहुत ही अच्छी जगह है । क्यो न इस 'जैन सिद्धान्त महाविद्यालय' से सम्पर्क किया जाये ?

डॉक्टर जिसकी खोज मे था, घर बैठे ही उसका समाधान उसे मिल गया था, इसलिए वह बहुत प्रसन्न था ।

डॉक्टर तो कभी उस पत्रिका का ग्राहक बना नहीं था । आज तक उस पत्रिका को कभी उठाकर पढ़ा भी नहीं था । डॉक्टर के पिताजी जरूर जैन पत्र-पत्रिकाओ के पढ़ने के शौकीन थे और इनके आजीवन सदस्य भी थे । वे स्वय भी पढ़ा करते थे और मरीजो को पढाने के लिए डिस्पेसरी के वेटिंग रूम मे भी रख दिया करते थे ।

दादाजी की भावनाओ के अनुसार वह सिलसिला अब और अधि व्यवस्थित कर दिया गया था । क्योंकि मरने के बाद माता-पितृ प्रति भक्ति-भावना कुछ अधिक ही हो जाती है । उनके

पता नहीं क्या-क्या नहीं खाते ? अच्छी तरह सोच लो, समझ लो ! हमारी दिल्ली से एक लड़का गया था । वह वहाँ ऐसा बिगड़ा कि वहाँ से आकर अपने माँ-बाप को ही उपदेश देने बैठ गया । उन बेचारो को केवल उसके कारण दिन में ही खाना बनाना पड़ता, आजकल आलू-बैंगन के सिवाय और साग-सब्जियाँ आती ही क्या है बाजार मे ? पर उन हजरत को यह कुछ चलता ही नहीं है । इस कारण उसकी माँ बहुत परेशान रहती है । कहती है — 'रोज-रोज क्या बनाकर रख दे, अपनी तो कुछ समझ मे नहीं आता । अच्छा आ गया पण्डित बनके ।'

जब भी उसकी पत्नी पिक्चर का प्रोग्राम बनाती, तभी उन्हें प्रवचन मे जाना होता है, जब वह गर्मियो की छुट्टी बिताने के लिए शिमला का प्रोग्राम बनाती तो वही टाइम उनके शिक्षण शिविर मे जाने का होता । एक बात हो तो अलग । उसकी माँ अलग अपने दुःख रोती फिरती, पत्नी अलग । न बाबा ! अपने को तो यह सब पसद नहीं है । फिर आपकी मर्जी ।"

मँझली लड़की ने छाप लगाते हुए कहा — "पापा ! दीदी ठीक ही कह रही हैं । हमारे बम्बई का भी एक लड़का वहाँ पढ़ने गया था । वह तो और भी दो कदम आगे निकल गया । कहता है — 'मै तो शादी ही नही करूँगा, क्या धरा है इस असार ससार में ? मनुष्य भव ऐसे बार-बार थोड़े ही मिलता है । वह आत्मा आत्मा ! भगवान आत्मा ही करता रहता है । वैसे प्रवचन बहुत अच्छे करता है, हजारो लोग उसकी सभा मे आते हैं और बिलकुल शात बैठे-बैठे उसी के मुँह की ओर टकटकी लगाये देखा करते हैं, पर क्या बताये, मानो उसे तो भगवान आत्मा की बीमारी-सी हो गई । खाने-पीने के मामले मे भी वही हाल जो दीदी के दिल्ली वाले का है ।

इसलिए मेरा तो ऐसा विचार है कि आप तो किसी अच्छे होस्टल मे प्रवेश दिला दो, वहाँ इस बेचारे को पढ़ाई का और होमवर्क का

को खूब समय भी मिल जायेगा । जब हम पढ़ते थे तो इस बेचारे को होमवर्क को ही टाइम नहीं मिलता था । जब किसी भी काम को बोलो तो बोलता – दीदी मेरा होमवर्क कौन करेगा ? हूँह ...।"

सब अपनी-अपनी कहे जा रहे थे और डॉक्टर सब की बातों को शांति से सुन रहा था । अंत में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि एक बार स्वयं वहाँ जाकर सब अपनी निजी आँखों से देखना-समझना चाहिए। सुनी-सुनायी सब सच नहीं होती । वास्तविकता क्या है ? वहाँ जाने से ही पता चलेगा ।

होस्टल वगैरह तो व्यर्थ की बकवास है, उसकी दुर्दशा तो मैंने स्वयं भी देखी है ।

डॉ. धर्मचन्द ने सबकी बातें सुनकर अपनी राय कायम करते हुए कहा – "देखो ! होस्टल में तो मैं भूलकर भी नहीं भेजूँगा । वहाँ तो अच्छे-अच्छे लड़के बिगड़ जाते हैं, तुम राजू की बात करती हो। देखा नहीं तुमने विज्ञान को ? कितना सीधा-सादा-सज्जन लड़का था वह, फिर उसे तो उसके दादाश्री द्वारा बचपन में चार-पाँच वर्ष तक कुछ सदाचार के संस्कार भी मिल गये थे, फिर भी वह होस्टल में जाकर पथभ्रष्ट हो गया था ।

वहाँ बिगड़ने में लड़कों के बजाय वहाँ के वातावरण का ही अधिक हाथ होता है । जिस तरह ऊँट पर बैठने वाले को मलकना ही पड़ता है। यदि सवार ऊँट की मलक में मलक न मिलाये तो उसकी कमर ही टूट जाए । यही स्थिति वहाँ के आवासी छात्रों की होती है । उन्हें भी बाध्य होकर उन परिस्थितियों से समझौता करना ही पड़ता है । अन्यथा उन्हें उन होस्टलों में रहना कठिन हो जाता है ।

और तो और अधिकारियों को भी छात्रों से मिलजुल कर ही अपना निर्वाह करना पड़ता है, अन्यथा उनकी हूटिंग करने में भी उन्हें क्या देर लगती है ? और अधिकारियों की भी ऐसी क्या अटक रही है, जो व्यर्थ ही झंझट मोल लें ।

शराब और सिगरेट तो मानो वहाँ की सभ्यता में शामिल हो गये हैं । आये दिन सिनेमा, सगीत-नृत्य और नौटंकियाँ देखना भी उनकी चर्या के अभिन्न अग बन जाते है । जो शामिल न होना चाहे तो भी उसे शामिल होना पड़ता है, अन्यथा नाना यातनायें सहनी पड़ती है सो अलग । और पढ़ तो सकते ही नही, लाइट गुम कर दी जायेगी; पुस्तकें गायब कर दी जायेगी, और भी जो सम्भव होगा, कुछ भी करने से नहीं चूकेंगे ।

अतः होस्टल का तो तुम नाम ही मत लो, वहाँ भेजने का तो प्रश्न ही नहीं है । रही बात सिद्धान्त महाविद्यालय मे भेजने की, सो उसके बारे मे भी पूरी छानबीन और तलाश करके और पूर्ण सतोष होने पर ही निर्णय करेंगे । अतः तुम निश्चित रहो । •

जो हो गया सो तो हो ही गया, उसमे सुधार करने के लिए केवल पश्चाताप के आँसू बहाना ही काफी नहीं है । जो भी सभव हो वह उपाय करना भी आवश्यक है ।"

डॉक्टर धर्मचन्द बैठे-बैठे इन्ही विचारों मे डूबे हुए थे । उनकी पत्नी कनकलता ने उनका ध्यान भग करते हुए कहा — "चाय-नाश्ता तो समय पर ले लो । अभी थोड़ी देर मे मरीजो की भीड़ जमा हो जायेगी, फिर सास लेने को भी समय नहीं मिलेगा ।"

डॉक्टर ने कहा — "कनक ! मै सोचता हूँ, यदि हम दोनो ही घर की प्रेक्टिस—घर पर मरीजो को देखना, उनका उपचार करना बन्द कर दे तो कैसा रहे ?"

डॉ. कनकलता ने गभीर होते हुए कहा — "आपका सोचना सही है, पर यह डॉक्टर का पेशा ही ऐसा है कि जो एक बार इसे पकड़ लेता है, फिर यह व्यवसाय उसे ऐसा जकड़ता है कि इससे पिण्ड छुड़ाना कठिन हो जाता है । हम छोड़ना भी चाहे तो मरीज हमे नहीं छोड़ेगे। सवाल अपनी कमाई का ही अकेला नहीं है, पर उन मरीजो का क्या होगा, जो अपने ऊपर विश्वास किये बैठे है ? वे कहाँ जायेगे क्या करेगे ? और फिर यह एक तरह से समाज सेवा भी तो है।"

डॉक्टर ने मुस्कराते हुए कहा — "कनक ! यह सब तुम्हारा भ्रम है । यह कोई समस्या भी नही है और समाज सेवा भी नही । यह तो केवल हमारा पैसा कमाने का तरीका है, तरीका ! अन्यथा सेवा तो हम इससे भी बहुत अच्छी हॉस्पिटल मे भी कर सकते थे । तुम स्वय डॉक्टर हो, एक ईमानदार डॉक्टर की क्या ड्यूटी है ? यह भी तुम अच्छी तरह जानती हो और अपनी कार्यक्षमता क्या है ? यह भी अच्छी तरह पहचानती हो । जरा, तुम मुझे यह हॉस्पिटल मे तुम कितने घटे मे कितने मरीज देखती हो ? से कितने देख सकती है ?

घर की डिस्पेंसरी में जो तुम्हारी सजगता, सक्रियता और उत्साह रहता है; क्या हॉस्पिटल में भी वैसी ही सजगता, सक्रियता और उत्साह रहता है।

मैं यह मानने को कतई तैयार नहीं हूँ कि हमें हॉस्पिटल में समय नहीं मिलता, इसलिए हम वहाँ का काम यहाँ डिस्पेंसरी में करते हैं। सत्य तो यह है कि हम वहाँ से मरीजों को यहाँ इसलिए बुलाते हैं, ताकि हमें फीस मिले और कमाई हो । हम चाहें तो यहाँ का और वहाँ का काम सब आराम से वहीं कर सकते हैं ।

बोलो इस विषय में क्या विचार है तुम्हारा ?"

कनकलता ने कहा – "आप ठीक कहते हैं, इसमें जरा भी संदेह नहीं है, ऐसा ही है । पर..."

डॉ. धर्मचन्द ने कहा – "पर क्या...? आज मरीजों की आम धारणा भी ऐसी ही बन गई है कि एक बार डॉक्टर के घर पर फीस देकर दिखाए बिना वह अस्पताल में ध्यान नहीं देगा; अतः घर पर दिखाने के बहाने सौ-पचास रुपया जो उसकी फीस हो देना जरूरी है । यदि घर पर फीस दे दें तो वह फीस का रुपया तो कहीं से भी वसूल हो जाएगा । अन्यथा डॉक्टर एक-एक गोली और एक-एक इन्जेक्शन बाजार से लिखेगा, जिसमें सैकड़ों रुपये तो यों ही लग जायेंगे । डॉक्टर लाइन में घंटों खड़ा रखेगा सो अलग ।"

पर, अब डॉ. धर्मचन्द और कनकलता के साथ यह बात नहीं रही थी। उन्होंने मरीजों की इस धारणा को तोड़ दिया था । अब मरीजों को भी विश्वास हो गया था कि इन डॉक्टर दम्पति द्वारा अब उनका इलाज अस्पताल में ही भली प्रकार से हो जायेगा ।

डॉक्टर ने अपनी पत्नी डॉ. कनकलता से कहा – "देखो अब हमें अधिक पैसों की आवश्यकता नहीं है । हम कितना भी जोड़ कर रख जायें यदि राजू के यही हाल रहे तो सारा धन बर्बाद करने में दस-बीस वर्ष तो क्या दस-बीस महीने भी नहीं लगेंगे और यदि राजू सही राह

पर आ गया तो वह और उसके पुत्रो की तो बात क्या, उसके पोतो-पड़पोतो तक को भी धन की कमी नही पड़ेगी । उसके भाग्य से आय के सहज मे ही ऐसे साधन जुट गये है ।

इसलिए मैने तो अब निश्चय कर लिया है कि अस्पताल की ड्यूटी के सिवाय पूरा समय राजू के चरित्र-निर्माण और अपने आत्म-कल्याण मे ही लगाऊँगा । इसके अतिरिक्त जो समय मिलेगा उसमे समाज के निर्धन और असहाय रोगियो की निःस्वार्थ सेवा करूँगा ।

पर अभी कम से कम एक वर्ष तो सब कामो को गौण करके एकमात्र राजू को सन्मार्ग पर लाने मे ही लगाना होगा । हमारी लापरवाही से उसके जीवन के साथ जो अन्याय हो गया है, उसके प्रायश्चित स्वरूप जो भी समर्पण करना पड़ेगा, करूँगा । ऐसा किए बिना उसका जीवन तो बर्बाद हो ही जायगा, मेरा शेष जीवन भी सुख शान्ति से नहीं बीत सकेगा ।"

माँ तो आखिर माँ ही होती है । पेशे से कनक भले ही डॉक्टर थी, पर पुत्र के प्रति उसका हृदय भी समर्पित था, अतः उसने भी अपने पति का लम्बा भाषण सुनने के पहले ही अपने बेटे राजू के हित मे अपनी प्राइवेट प्रेक्टिस छोड़ने का निश्चय कर लिया था और दोनो पति-पत्नी राजू के भविष्य को उज्ज्वल बनाने के प्रयास मे जुट गये थे ।

× × ×

राजू अब बच्चा नही रहा था, उसमे अब काफी प्रौढता आ चुकी थी । यद्यपि उम्र मे वह अपने मित्र विज्ञान और सजू से काफी छोटा था पर सजू के साथ ही वह अधिक रहा करता था । इस कारण सजू के व्यक्तित्व का प्रभाव उस पर होना स्वाभाविक ही था । पर सजू अपने पिता के काम-काज मे हाथ बटाने लगा था और विज्ञान [illegible]ने व्यापार मे व्यस्त था ही । इस कारण अब राजू का कोई दोस्त नहीं रहा था, जिसके साथ वह अपना

है छात्रावास मे रहने से पढ़ाई को भी पूरा समय मिल जायगा और अच्छे मित्र भी मिल जायेगे । इधर मम्मी-पापा को मेरी आदतो से जो परेशानी है, यदि वे बदल गईं तो वे भी प्रसन्न हो जायेंगे । मै अपनी दीदियो को भी बता दूँगा कि — मैं गन्दा हूँ या एक अच्छा इंसान ?" अतः उसने हाँ भर ली ।

डॉ. धर्मचन्द ने सोचा — "अब राजू इक्कीस वर्ष का हो गया है। अतः अब तीन-चार वर्ष से अधिक नही पढ़ाया जा सकता, क्योकि चौबीस-पच्चीस वर्ष की उम्र ही शादी के लिए सर्वोत्तम है ।

जिस तरह बाईस वर्ष से कम उम्र मे शादी करना हानिकारक है, उसी तरह पच्चीस-छब्बीस वर्ष के बाद अधिक उम्र में शादी करना भी शरीर विज्ञान व मनोविज्ञान की दृष्टि से हानिकारक है ।

अभी भी अपने पास राजू की एजूकेशन के लिए तीन-चार वर्ष तो हैं ही । क्यो न इन तीन-चार वर्षो मे उसे जैनदर्शन मे ग्रेजुएशन करा लिया जाये ? जैसाकि उस दिन 'वीतराग विज्ञान' मासिक पत्रिका मे पढा था । उसमे स्पष्ट लिखा था कि 'राजस्थान विश्वविद्यालय मे न केवल जैनदर्शन का बल्कि सभी भारतीय दर्शनो के एव संस्कृत साहित्य व संस्कृत व्याकरण आदि विषयो के पाठ्यक्रम हैं । और हजारो की सख्या मे सभी विद्यार्थी इन विषयो की परीक्षाओ मे सम्मिलित होते हैं।

और हाँ, वहाँ के स्नातक चाहे तो आई.ए.एस., आर.ए.एस. आदि किसी भी प्रतियोगिता परीक्षा मे सम्मिलित हो सकते हैं ।

जब यह बात राजू को बताई जायेगी तो वह जरूर ही इस पाठ्यक्रम को पढ़ने के लिए तैयार हो जायेगा, क्योकि उसके मन मे न पढ़ पाने की कुंठा तो अभी भी बनी है, उसके विद्रोही होने का एक प्रमुख कारण यह भी है ।

अब किसी अन्य विषय को पढ़ाने से कोई लाभ नही है । व्यवसाय तो अपना ही करना है । जैनदर्शन मे ग्रेजुएशन कराने मे हमारा भी 'एक पथ दो काज' ही नहीं, बल्कि 'एक पंथ

(१५)

फागुन का महीना था, न अधिक गर्मी न अधिक सर्दी, यात्रा के लिए सबसे अच्छा समय देखकर डॉक्टर दम्पति ने विचार किया — "यदि राजू को जुलाई सत्र मे उसी छात्रावास और विद्यालय मे प्रवेश दिलाना है तो अभी से प्रयत्न करना होगा, एतदर्थ क्यो न कल-परसों से ही पन्द्रह दिन का तीर्थयात्रा का कार्यक्रम बना लिया जाए । शुभकाम मे देर क्यो ?

वैसे तो वहाँ जाकर देखने जैसी कोई बात नहीं थी, पत्राचार से सम्पर्क द्वारा भी काम बन सकता था; पर बेबी, बबली आदि ने व्यर्थ का बबेला मचाकर वहाँ के विरुद्ध वातावरण बनाकर सशय मे जो डाल दिया था; अतः जब तक अपनी आँखों से वहाँ की स्थिति न देख ले, तब तक स्वय को भी संतोष नहीं होगा और दूसरो से भी दृढ़ता से नहीं कह सकेंगे ।"

डॉ. धर्मचन्द एव उसकी पत्नी का यह सोचना उचित भी था, क्योंकि दूध का जला छाछ को भी फूँक-फूँक कर पीता है । उन्हे भय था कि राजू दुबारा कही गलत सगति मे न पड़ जाये । अत उन्होने एक बार स्वय उस सस्था के वातावरण को देखने का निश्चय किया था ।

तीर्थयात्रा का कार्यक्रम तो बन गया था, पर वे अभी तक यह निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि असलियत का पता कहाँ से/कैसे चल सकता है ? सोचते-सोचते वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पहले यात्री के रूप मे वहाँ दो-तीन दिन ठहर कर वहाँ की एक-एक गतिविधियो पर दृष्टि डालना चाहिए एवं वहाँ के आवासी छात्रो से सीधा सम्पर्क करके उनकी मन:स्थिति एव वहाँ की परिस्थितियो का अध्ययन करना चाहिए ।

यह सब देखकर डॉक्टर दम्पति तो सतुष्ट हुए ही, राजू भी वहाँ रहने के लिए मानसिक रूप से तैयार हो गया था । पर डॉक्टर धर्मचन्द ने सोचा – "यह बाहरी वातावरण तो किसी विशिष्ट व्यक्तित्व के दबाव से या उसके सहज प्रभाव से बनावटी भी हो सकता है, नकली भी हो सकता है । इसकी अतरंग स्थिति का परिचय तो वहाँ के कार्यकर्ताओं और छात्रो से बात करने से ही स्पष्ट हो सकेगा ।"

छात्रो की मनस्थिति जानने के लिए डॉक्टर ने एक-एक करके अनेक छात्रो से सम्पर्क किया । सबकी लगभग यही रिपोर्ट थी कि "घर और बाहर की सुख-सुविधाओ मे तथा व्यक्तिगत और सामूहिक व्यवस्थाओ मे जो अन्तर होता है, उसे ध्यान मे रखकर देखे तो आज ऐसी सुविधाये और प्रगति के अवसर अन्यत्र दुर्लभ हैं ।"

छात्रो ने बताया "जो छात्र गाँव और कस्बों से आते हैं या मध्यम घरो से आते है, उनके लिए तो यह स्वर्ग-सा लगता ही है, साथ ही जो घर का बहुत ही आरामदायक जीवन छोड़कर आते हैं, वे भी यहाँ के आध्यात्मिक वातावरण मे थोड़ा कठोर जीवन जीना सीख लेते हैं। उन्हे भी फिर घर का वह भोग प्रधान आरामदायक जीवन अच्छा नही लगता ।"

छात्रो के साथ हुई बातचीत के दौरान डॉ. धर्मचन्द ने एक छात्र से पूछा – "आप लोगो को यहाँ अपने माता-पिता और कुटुम्ब परिवार तथा मित्रो की याद तो सताती ही होगी ?"

एक छात्र का उत्तर था – "यहाँ हमारे माता-पिता और परिवार के लोग तो नही है, पर हमे माता-पिता और परिवार जैसा स्नेहपूर्ण वातावरण यहाँ मिल जाता है और मित्रों की क्या कहें ? पाच-दस मित्रो को छोड़कर आते है और सत्तर-बहत्तर नये मित्र मिल जाते है। अतः हमे यहाँ ऐसा लगता ही नही कि हम घर से दूर कहीं बाहर रह रहे है । फिर समय-समय पर घर जाने की छुट्टियाँ भी मिल ही जाती है । यहाँ भी हमारे घर वाले और रिश्तेदार आते ।"

डॉक्टर ने अगला प्रश्न कियां – "यहाँ भोजन में जमीकंद नहीं बनता, बेसन व छाछ के मिश्रण से बनने वाले कढ़ी आदि स्वादिष्ट वस्तुयें कुछ भी नहीं बनतीं, आपके घर जैसा भोजन भी नहीं बन पाता, इससे आप लोगों को असुविधा नहीं होती ?"

दूसरे छात्र ने आत्मविश्वास के साथ उत्तर दिया – "यह बात सच है कि भोजन सबके मन का नहीं बनता, बन भी नहीं सकता; क्योंकि यहाँ विभिन्न प्रान्तों के विभिन्न भाषा-भाषी छात्र रहते हैं और सबके खान-पान और रहन-सहन की संस्कृतियाँ और रुचियाँ भिन्न-भिन्न होतीं हैं । किसी को मीठा पसंद है तो किसी को तीखा । यदि हमारे घरों में भी ऐसा करना पड़े तो हम वहाँ एक-दो दिन को भी नहीं निभा पाते तो यहाँ बारहों मास ऐसा कैसे संभव हो सकता है ? पर जो बनता है वह अच्छे स्तर का बनता है ।"

दूसरे, हम लोग पढ़ने के लिए आते हैं, पढ़ना ही हमारा मुख्य लक्ष्य है, अतः हम लोग भोजन सम्बन्धी छोटी-मोटी कमियों पर ध्यान नहीं देते, देना भी नहीं चाहिए । सामूहिक व्यवस्था में जो संभव होगा, वही तो किया जायेगा । घर जैसी सुविधायें तो घर पर ही सम्भव हैं न ?

आप अपने को ही देखिये न ! आप यात्रा पर निकले, तो क्या आपको हर जगह घर जैसी सुविधायें मिल रहीं हैं ?

रही बात जमीकन्द और द्विदल आदि सब्जियों के न बनने की, सो जैन होने के नाते जिनमें त्रस और बहुस्थावर जीवों की हिंसा हो – ऐसा हिंसाजनित भोजन तो अभक्ष्य होने से खाने लायक ही नहीं है ।

जिसमें असंख्य सूक्ष्म त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा होती हो, वह अभक्ष्य भोजन यह अहिंसक समाज कैसे खा सकता है ?"

डॉक्टर ने कहा – "यह अहिंसक जैन समाज क्या कर सकता है और क्या नहीं – यह तो जाने दो । तुम तो अपनी कहो, यहाँ

बनता नहीं है, इसलिए तुम नहीं खाते हो या कि तुमने अपने दिल से ही इनके खाने का त्याग कर दिया है ?"

दूसरे छात्र ने उत्तर दिया – "प्रारम्भ मे प्रवेश के समय तो यहाँ बनते नहीं थे, इस कारण हम खाते भी क्या ? और अब हमें प्रवचनों और कक्षाओ के माध्यम से भली-भांति इनकी हेयता का ज्ञान हो गया है, ये अभक्ष्य है, खाने योग्य नहीं है, यह अच्छी तरह समझ मे आ गया; अतः अब हम सब लोगो ने अपने मन से ही उन सबका आजीवन त्याग कर दिया है ।

इतना ही नही, जब हम अपने-अपने घर जाते है तो घरवालो को भी यही समझाते हैं । इससे धीरे-धीरे अब हमारे घरो मे भी आलू आदि जमीकद और दही व दालो के मिश्रण से बनने वाली द्विदल सब्जियाँ नही बनती ।"

अब तक राजू की झिझक टूट चुकी थी । अतः उसने पूछ लिया – "क्या आप लोग बतायेगे कि ये अभक्ष्य क्यो होते हैं ?

एक छात्र ने कहा – "हाँ, हाँ जरूर बतायेगे, क्यो नही बतायेगे? आप पूछे और हम न बताये – ऐसा कैसे हो सकता है ? जो खाने योग्य हो वह भक्ष्य और जो खाने योग्य न हो वह अभक्ष्य। इतना तो आप समझते ही है न ?"

डॉक्टर ने बीच मे ही अपने डॉक्टरी मतव्य को प्रगट करते हुए प्रश्न किया – "अरे भाई । ये जमीकद तो खाने योग्य होते है, इनमे तो बहुत सारे विटामिन्स और प्रोटीन यानि शरीर पोषक तत्व होते है तथा शरीर के लिए घातक नहीं, बल्कि लाभदायक होते है, फिर ये अभक्ष्य कैसे हुए ?"

एक मुँह फट छात्र बोला – "डॉक्टर साहब ? क्षमा करना, अ" आपने अकेले साग-भाजियो के तत्व ही पढ़े है । अब सिवाय जैनदर्शन के तत्वो को भी पढना होगा; क्योकि इन

खाते-पीते भी तो यह शरीर पुष्ट नहीं रह पाता । देखिये न ! आप तो सभी तत्व (विटामिन्स) बराबर खा-पी रहे हैं फिर भी ...।"

दूसरे छात्र ने उसको रोकते हुए कहा – "अभी पहले डॉक्टर साहब के प्रश्नों का उत्तर देना चाहिए । यह बात जो तुम कह रहे हो, प्रथम परिचय में कहने की नहीं है । मित्र ! जरा सभ्यता सीखो ।"

उस छात्र की ओर से क्षमा मांगते हुए इस छात्र ने पुनः कहा – "डॉक्टर साहब अभक्ष्यपना केवल अपने स्वास्थ्य के हानि-लाभ से ही सम्बन्ध नहीं रखते । वरन् इनका सम्बन्ध अपने आत्मा की क्रूरता और पर जीवों के घात से भी है, अतः इस सम्बन्ध में इन अभक्ष्यों का पांच भागों में वर्गीकरण किया गया है – (1) त्रसघात (2) बहुघात (3) नशाकारक (4) अनिष्ट और (5) अनुपसेव्य ।

सभी प्रकार का मांसाहार तो चलते-फिरते त्रसजीवों के घात से बनता है, अतः वह तो त्रसघात नामक अभक्ष्य है ही, मुर्गी के सभी प्रकार के अंडों से बने खाद्य पदार्थ भी मांसाहार ही है । जिन अड़ों से मुर्गी के चूजे (बच्चे) पैदा नहीं होते उन अण्डों में भी सूक्ष्म त्रसजीव निरंतर पैदा होते रहते हैं, अतः वे ही मांसाहार ही है । उन्हें शाकाहारी कहकर नहीं खाया जा सकता ।

अतः यह सब तो त्रसघात अभक्ष्य हैं ही, इनके अतिरिक्त बासा भोजन, पुराने अचार-मुरब्बा आदि में भी दो-इन्द्रिय आदि त्रस जीव पैदा हो जाते हैं, अतः वह भी त्रसघात अभक्ष्य है ।

कोई भी करुणावन्त दयालु व्यक्ति इनका सेवन कैसे कर सकता है ? क्योंकि ये भी तो हम-तुम जैसे ही प्राणी हैं । इनकी हिंसा महापाप है ।

शराब और शहद में भी अनंत जीव निरंतर पैदा होते रहते हैं।

शराब तो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होने से अनिष्ट भी है, शहद भले अनिष्ट न हो, पर उसमें न केवल फूलों का रस ही होता है; बल्कि फूलों के रस के साथ असंख्य मधुमक्खियों के अंडे भी मिल

जाते है । मधुमक्खियो की लार एवं मल-मूत्र भी मिल जाता है; क्योकि उनके छत्ते में न तो अलग से कोई यूरिनल (पेशाबघर) होता है और न संडास । तथा फूलों का रस लाने के लिए उनके पास केवल मुँह ही बर्तन के रूप में होता है, जिसे न धोने-माजने की व्यवस्था है, न दातुन-कुल्ला करने का कोई टूथपेस्ट और मंजन । वे मक्खियाँ उसी मुँह से गंदगी भी खाती है और उसी गंदे मुँह में फूलों का रस भर कर लाती है ।

अब आप ही सोच लीजिए, मधु (शहद) भक्ष्य है या अभक्ष्य ? हमारे विचार से तो शहद खाना तो दूर, छूने लायक भी नहीं है; क्योकि वह मल-मूत्र, और थूक-लार का मधुर मिश्रण है । अतः आज से आप मरीजो को भी वे दवाये न दे, जिनमे मद्य, मधु, मास मिले रहते हैं ।

दूसरे प्रकार के अभक्ष्य पदार्थ वे है, जो बहुत से स्थावर जीवों के घात से बनते है, उन्हें बहुघात अभक्ष्य कहते हैं । आलू आदि सम्पूर्ण जमीकन्द इसी श्रेणी में आते हैं ।

राजू ने कहा – "आलू, प्याज, लहसन आदि के काटने पर उनमे जीव तो दिखाई देते नही, भिन्डी, फली आदि की भांति उनमे लटें वगैरह भी नही पड़ती, फिर यह कैसे मान लिया जाय कि उनमे जीव होते है ?"

छात्र ने शास्त्र के आधार से राजू को चुप करने के बजाय युक्ति से समझाकर उसके गले उतारते हुए कहा – "देखो ! आलू मे अनंत जीव होने का सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है, कि वे डलिया (टोकरी) मे रखे-रखे भी बढ़ते है, हमेशा ताजे से रखे रहते है, सूखते नही, सड़ते भी नही ।

जिस तरह हमारे-तुम्हारे शरीर मे जब तक जीव रहता है तब तक यह शरीर सड़ता नही, सड़ान की दुर्गन्ध भी नहीं आती, और प्राण होते ही सड़ने लगता है । यही आलू, प्याज की स्थिति है ।"

उत्पत्ति ही हिंसा है और इन रागादि विकारों की उत्पत्ति न होना ही अहिंसा है।"

यद्यपि आलू आदि जमीकंद मे रहने वाले जीव अपने आप ही मरते हैं, फिर भी आलू क्यों नहीं खाना चाहिए, इसका उत्तर यद्यपि एक सीनियर छात्र डॉक्टर परिवार को शास्त्र के आधार से दे चुका था, पर वहीं बैठे दूसरे छात्र को एक बहुत प्रबल युक्ति का स्मरण हो आया। अतः उत्साहित होकर आगे आते हुए वह बोला – "इसका एक मनोरंजक किस्सा मैं आप को सुनाता हूँ । सम्भव है उससे आपकी रही-सही शका का भी समाधान हो जायेगा ।"

अपने कानो सुनी सत्य घटना सुनाते हुए उस छात्र ने कहा – "बात बम्बई की है, पर्यूषण पर्व का समय, बरसाती मौसम, कभी रिम-झिम वर्षा तो कभी मूसलाधार पानी का जमाव, जो घंटो तक रुकने का नाम ही नहीं लेता, फिर भी मन्दिर मे चल रहे प्रवचन मे भारी भीड़ । जीने तक मे भी खड़े होने को जगह नहीं । बाहर से बहुत बड़े विद्वान जो बुलाये गये थे । प्रवचनो के आकर्षण से भीड़ दिन दूनी बढ़ती ही जा रही थी । गर्मी तो वैसे भी थी ही, पर भीड़ के कारण और अधिक महसूस हो रही थी । फिर भी जब तक प्रवचन पूरा न हो जाता, कोई हिलने का नाम नहीं लेता ।

एक दिन जब पण्डितजी यह समझा रहे थे कि आलू क्यो नहीं खाना चाहिए, तभी प्रवचन के बीच मे ही एक नवयुवक खड़ा होकर बोला – "अभी आपने कहा था कि आलू मे निगोदिया जीव होते है और वे हर क्षण अपनी मौत मरते है, तो फिर हमे शाको के राजा आलू को न खाने का उपदेश क्यो दे रहे हो ? हमारी वजह से तो वे जीव मरे नहीं; क्योंकि वे तो हर पल अपनी ही मौत से मरते रहते है न ?"

पण्डितजी ने मीठी चुटकी लेते हुए कहा "भैया ! कम से राजा को तो बचने दो । जरा विवेक से सोचो ! जो अप

रहे हों, क्या उन्हें भी कोई दयालू खा सकता है ? और क्या कहा शाकों का राजा! अरे ! राजा को ही खा जाओगे तो फिर प्रजा का क्या होगा ?"

नवयुवक बोला – "बात को मजाक में मत टालो, पण्डितजी ! मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए ।"

पण्डितजी ने अत्यन्त शान्त भाव से कहा – "देखो भाई ! यदि तुम्हें सही समाधान चाहिए तो पहले मैं जो कुछ पूछूँ, तुम्हें उन बातों का सही-सही उत्तर देना होगा ।"

युवक ने उत्साह से कहा – "हाँ यह बात मंजूर है ! पूछो जो पूछना हो, पर शास्त्र की बात मत पूछना । वे मुझे नहीं आती ।"

पण्डितजी ने पूछा – "भाई तुम रहते कहाँ हो ?"

युवक का उत्तर था – "यहीं बम्बई सेन्ट्रल में ।"

"तुम्हारा मकान कितना बड़ा है ?"

"मकान की क्या पूछते हो ? पूरी हवेली ही हमारी है, चारों ओर बहु मंजिला मकान है और बीच में काफी बड़ा चौक है ।"

पण्डितजी ने मन ही मन सोचा – "बात तो बन गई ।" अतः पण्डितजी ने पुनः प्रश्न किया – "भाई ? क्या तुम बता सकते हो कि तुम्हारे मुहल्ले से मरघट और प्रसूति गृह कितने-कितने फासले से होंगे ?

युवक को इस प्रश्न का उत्तर ज्ञात नहीं था, अतः वह सोचने लगा – "मेरे प्रश्न का इन सब बातों से क्या प्रयोजन है ? ये पण्डितजी ऐसे ऊँट-पटांग प्रश्न क्यों कर रहे हैं ?"

मन में क्रोध भी बहुत आ रहा था पर क्रोध को पीता हुआ वह बोला – "मरघट तो करीब तीस-पैंतीस किलोमीटर होगा और प्रसूति गृह भी बीस-पच्चीस किलोमीटर दूर तो होगा ही ।"

पण्डितजी ने कहा – "तब तो आप के मुहल्ले वाले को मरघट तक मुर्दा ले जाने और प्रसव की पीड़ा से पीड़ित महिलाओं को प्रसूतिगृह तक ले जाने में बड़ा भारी कष्ट झेलना पड़ता होगा ? क्यों जी !

एक काम क्यो न करें ? तुम्हारी हवेली के चौक मे तो मुहल्ले के मुर्दे दफनाने की व्यवस्था हो जावे और पहली मजिल में प्रसूतिगृह बनवा देवे । क्यो ठीक है न ?"

"क्या बकते हो ! आपको शर्म नही आती ऐसा कहते हुए । मेरा मकान मरघट और प्रसूतिगृह ?" — एकदम आग बबूला होकर युवक बोला।

पण्डितजी ने शान्त करते हुए कहा — "तुम चिन्ता क्यो करते हो? तुम्हारी हवेली मे तो मात्र वे ही मुर्दे दफनाये जायेंगे, जो अपनी मौत मरे होंगे । हत्या और आत्महत्या से मरे मुर्दे नही । तथा उन्ही महिलाओ का प्रजनन कराया जायेगा जो वैध होंगे, जायज होंगे । अवैध और नाजायज प्रसूतियाँ नही कराई जायेगीं । तब तो ठीक है न ? और सुनो ! यह सब काम मुफ्त मे नही होगा । तुम्हें इसके किराये का मुँह माँगा पैसा दिया जायेगा ।"

युवक गरज कर बोला — "नही, यह हरगिज नहीं हो सकता। मेरा मकान और मुर्दा घर ? बद करो यह बकवास ।"

पण्डितजी ने उसकी आवाज को दबाते हुए उसी जोश से व्यगबाण छोड़ते हुए कहा — "तुम्हे मकान को तो किसी कीमत पर भी मरघट और मुर्दाघर बनाना पसद नहीं है और मुँह को मुफ्त मे ही मरघट बनाना पसद है और अपने मुँह को प्रसूतिघर भी खुशी-खुशी बना लेते हो ? तुम्हे शर्म नही आती । असख्य जीव तुम्हारे मुँह मे मरे — क्या तुम्हें यह पसद है ? भले ही वे अपनी मौत ही मरते है, पर मरते तो तुम्हारे मुँह मे ही है न ?"

पण्डितजी का यह शका-समाधान सुनकर न केवल युवक बल्कि वहाँ बैठे लगभग सभी गद्‌गद् थे और लगभग सभी का मन उसी दिन से आलू न खाने का सकल्प करने के लिए आतुर हो उठा था ।

× ×

'पर क्या ?' बादशाह ने बीच मे ही बीरवल की बात काटते हुए कहा ।

बीरवल ने सोचा — 'बादशाह की समझ मे ऐसे नहीं आयेगा ।'

अतः उसने एक क्षण सोचकर कहा — 'बादशाह ! आपका फरमाना तो वाजिब है, पर मनुष्य की इच्छाये बड़ी विचित्र होती है और फिर बालहठ, राजहठ और त्रियाहठ तो जगत प्रसिद्ध है ही । इन्हें समझाना इतना सरल नही है, जितना आप समझते है । यदि आपको यकीन नही हो तो आप स्वयं प्रयोग करके देख ले । थोड़ी देर के लिए आप मेरे बाप बन जाइए और मै आपका बेटा बनता हूँ । आपके पास तो किसी भी वस्तु की कमी नहीं है । आप मुझे न रोने के लिए या रोते हुए को चुप करने के लिए जो विधि अपनायेगे, उसी विधि से मै अपने बेटे को कभी रोने का अवसर नही दूगा । यदि रोयेगा भी तो उसी विधि से चुप कर दिया करूँगा ।'

बादशाह ने कहा — 'चलो ठीक है, यह बात हमे मजूर है ।'

बस, फिर क्या था, बीरवल बेटा बनकर बिना कुछ कहे जोर-जोर से रोने लगा ।

बाप की हैसियत से बादशाह ने प्रेम से कहा — 'बेटा ! रोते क्यो हो? बोलो तुम्हें क्या चाहिए ?'

बेटे के रूप मे बीरवल ने कहा — 'ऊं ऊं ऊं मुझे जोर से भूख लगी है अब्बाजान ? मै दाल-भात खाऊँगा ।"

देरी का क्या काम था, तुरंत दाल-भात पेश कर दिया गया । फिर भी बेटा चुप नहीं हुआ ।

अब्बाजान ने कहा — 'अब क्यो रोते हो बेटा !'

बेटे ने रोते-रोते कहा — 'इसे मिलाकर खाऊँगा । नौकर द्वारा तुरंत दाल-भात मिला दिया गया । फिर भी बेटा चुप नहीं हुआ । नौकर के हाथ से दाल-भात मिलाता देख और जोर-जोर से रोने ल

अब्बाजान ने पूछा — 'अब क्यो रोते हो बेटा ?'

टपक रहे थे, पर वे भी आँसू पी-पी कर ही अपनी अशांति की आग बुझा रहे थे ।

बिना कारण अपने शरीर का उपयोगी अग काटकर कौन फेंकना चाहेगा ? पर यदि कोई अंग सड़ गया हो और निरंतर मौत के मुँह मे ले जा रहा हो, उस अग के कट जाने से कितना भी दु:ख क्यों न हो ? उसे तो बिना मीन-मेख किए तुरंत कटवाना ही पड़ता है। उसके सिवाय जीवित रहने का अन्य कोई उपाय भी तो शेष नहीं है। ऐसी स्थिति मे कोई करे तो करे भी क्या ? ठीक यहि स्थिति सेठ सिद्धोमल की हो गई थी । उनका पुत्र संजू उनकी बालमनोविज्ञान विषयक अनभिज्ञता के कारण ही तो विद्रोही हुआ था। इसका उन्हें भी बहुत अफसोस था, पर अब वे करे तो करें भी क्या ? उन्हें कुछ समझ मे नही आ रहा था ।

× × ×

उनकी इस छोटी-सी नासमझी का इतना बड़ा दड देने पर भी उनके भाग्यविधाता को अभी सतोष नही हुआ था । सो आये दिन पुलिस की परेशानियाँ अलग झेलनी पड़ रही थीं । पुलिस को तो मानो चुगने के लिए हरा-भरा चनो का खेत मिल गया था, जिसे मन चाहा चोंटे जाओ और चुगे जाओ । जब भी मन चाहे सेठ सिद्धोमल की छाती पर बैठकर मनमाना होरा भून-भून कर खाओ ।

पुलिस के सिपाहियो को जब कहीं कोई काम नहीं दिखा या हाथ तग हुआ तो आ धमके सेठ सिद्धोमल के यहाँ उनके बेटे की कुशल क्षेम पूछने । जब भी जेब खाली हुई नहीं कि सबसे पहले उन्हें सेठ सिद्धोमल ही याद आते । यदि सेठ ने आनाकानी की तो दूसरे ही दिन सच्ची-झूठी रिपोर्ट बनाकर सजू थाने मे पिट रहे होते और इसकी खबर उन तक जल्दी ही पहुँचा दी जाती, ताकि उसकी माँ सिर धुने और फिर उनकी तिजोरी खुले।

'जैसी होनहार होती है तदनुसार ही बौद्धिक विचार बनने लगते हैं, पुरुषार्थ भी वैसा ही होने लगता है, निमित्तादि सहायक कारण-कलाप भी स्वतः वैसे ही मिलते जाते हैं ।'

तात्पर्य यह है कि जब जैसा कार्य होना होता है, तदनुसार सभी अंतरंग एवं बहिरंग कारण-कलाप स्वतः मिल जाते हैं ।

संभव है संजू के और उसके माता-पिता के दुर्दिनों का अंत आ गया हो। मानों इसी वजह से मेरे मन में यह विचार इतनी उग्रता से उठ रहे हों, अतः प्रयत्न करने में कोई हानि नहीं हैं ।'

× × ×

एक दिन विज्ञान बड़े उत्साहपूर्वक संजू की वापसी की पृष्ठभूमि की तैयारी के साथ सेठ सिद्धोमल के घर पहुँचा । उसे देखकर सिद्धोमल खुशी से उछल पड़े । 'अंधा क्या चाहे दो आँखें सेठजी स्वयं भी विज्ञान से मिलना चाहते थे । वे उसके घर जाने की सोच ही रहे थे कि विज्ञान स्वयं ही उनके घर आ गया था ।

विज्ञान को देखते ही सेठजी की तो केवल आँखें ही डबडबाई, पर संजू की माँ तो जोरों से फूट-फूट कर रो पड़ी थी । विज्ञान उन दोनों के हृदय की वेदना बराबर समझ रहा था सो उन्हें आश्वस्त करते हुए उसने कहा – "आप दुःखी न हो, संजू को राह पर लाने का एक उपाय मुझे समझ मे आया है, वही कहने मे आपके पास आया हूँ ।"

"कहो-कहो ! बेटा ! अवश्य कहो ! तुम जो कुछ कहोगे, मैं उस पर गंभीरता से विचार करूँगा और जो भी सभव होगा, वह सब करने की कोशिश करूँगा ।" – संजू के पिता ने कहा ।

"मैं कुछ कहूँ इसके पहले में यह जानना चाहता हूँ कि क्या आप चाहते हैं कि संजू घर लौट आये ?" – विज्ञान ने कहा ।

सेठजी बोले – "बेटा ! ऐसे कौन माँ-बाप होंगे जो अपने बेटे का भला नहीं चाहेंगे ? फिर हमारा तो अन्य दूसरा है ही कौन ?

हम तो मौत के मुँह मे ही बैठे है, हमारा क्या भरोसा ? रहें न रहें, यह अटूट सपति कल कौन सभालेगा ? क्या करें हमारी तो किस्मत ही फूट गई है। बुढ़ापे मे ये दिन भी देखने बाकी थे–।

भाई ! कोई उपाय हो तो जरूर करो, पर–।"

"पर क्या ? सेठ साहब ! आप इस बात से निश्चित रहें । अब यदि आयेगा तब तो कुन्दन बनकर ही आयेगा, पर लौटकर आना आसान नही है; क्योकि जिसे एक बार दुर्व्यसनों और दुराचार की आदत पड़ जाती है, फिर उसे त्याग पाना सहज बात नहीं है । हाँ, एक उपाय मुझे सुझा अवश्य है; पर–" विज्ञान ने कहा ।

"पर क्या ?" – सेठजी बोले ।

विज्ञान ने अपनी बात मनवाने के लहजे मे कहा – "जैसा मै कहूँ वह आप कर सकोगे ?"

"हाँ ! हाँ ! जो तुम कहोगे मै सब करूँगा, कहो-कहो क्या कहते हो ?"

विज्ञान ने सेठजी के परिणामो को अच्छी तरह परख लिया था, सेठजी उसकी सब बाते मानने को तैयार थे ।

विज्ञान ने कहा – "मेरे दादाश्री ने मुझे बचपन मे एक कहानी सुनाई थी, जो उस समय तो मेरे लिए केवल मनोरजन का साधन मात्र बनकर रह गई थी, पर कल जब मै बिल्कुल अकेला शात बैठा था, तब अनायास वह कहानी तो मुझे याद आई ही, साथ ही उस कहानी मे ही मुझे सजू को सुधारने का, उसे सन्मार्ग पर लाने का एक महामत्र भी मिल गया । पहले मै आपको वही कहानी सुनाना चाहता हूँ ।"

"सुनाओ ! सुनाओ !! जरूर सुनाओ बेटा !!!" – सेठजी ने कहा ।

विज्ञान ने उनमे कौतूहल उत्पन्न करते हुए कहा – "वह कहानी साधारण कहानी नहीं है, भला मेरे दादाश्री साधारण कहानी कहते ही क्यो ? उसमे पूरा तत्वज्ञान भरा है – मुझे यह बात उस दिन

पर्यूषण मे सुगध दशमी के दिन सेठ धनदत्त और उनकी पत्नी धनदत्ता जिनमंदिर में दर्शन करने के लिए गये थे । वहाँ बाहर से पधारे हुए एक बहुत बड़े विद्वान का प्रवचन चल रहा था । पण्डितजी ने शास्त्र तो पढ़े ही थे, आत्मा भी पढ़ा था और लोकजीवन को भी पढ़ा था अर्थात् वे शास्त्र मर्मज्ञ तो थे ही आत्मज्ञानी भी थे और लोक व्यवहार मे भी निपुण थे।

पण्डितजी समयसार परमागम की तीसरी गाथा पर प्रवचन कर रहे थे। उन्होने कहा – "एकत्व निश्चय को प्राप्त भगवान आत्मा ही लोक में सबसे सुन्दर है । जो एकबार उस शुद्धात्मा का दर्शन कर लेता है, उसे फिर संसार में कुछ भी अच्छा नहीं लगता ।

कहा भी है –

'जब आतम अनुभव आवे ।
तब और कुछ न सुहावे ॥'

जो एकबार दाख चख लेता है फिर उसे महुआ नहीं भाता । जिसे अमृत तुल्य मीठा पानी मिल जाय, फिर भला वह समुद्र का खारा पानी क्यों पियेगा ? जिनके घर देवागना तुल्य गृहणियाँ हों, वे वेश्याओं के यहाँ जाकर अपना धन क्यों लुटायेंगे ?

पर अनादि काल से इन कामी-भोगी जीवों ने अपनी विवेक की आँख से कभी भगवान आत्मा को देखा ही नहीं है, इसीकारण ये विषयों में फसे हैं । एकबार यदि यह भेदज्ञान की आँख से उस एकत्व-विभक्त भगवान आत्मा को देख लेता तो संसार के भोगों से स्वतः विरक्त हो जाता और कर्मबंधन से मुक्त हुए बिना नहीं रहता।"

पण्डितजी बोलो जा रहे थे, सेठ धनदत्त और सेठानी धनदत्ता एकाग्र मन से सुने जा रहे थे । वैसे तो सभी श्रोता मत्रमुग्ध थे; पर सेठजी सबसे अधिक प्रसन्न दिखाई दे रहे थे । उनका तो आज मंदिर आना ही सार्थक हो गया था; क्योंकि उन्हे प्रवचन मे पुत्र को घर वापिस लाने का महामंत्र जो मिल गया था ।

वे खुशी-खुशी घर लौट रहे थे, रास्ते में सेठानी ने उनकी प्रसन्नता का कारण पूछा ।

सेठजी ने कहा — 'अरे महाभाग ! अपने से कितने बड़ी भूल हुई है जो आज पाँच दिन यों ही खो दिये । यदि पंचमी से ही पंडितजी के इन प्रवचनों को सुनते तो हम निहाल हो जाते ।

आज के प्रवचन में ही मुझे महामंत्र मिल गया है, जिससे श्रीकांत बिना किसी प्रताड़ना के सुधर जाएगा और किसी का भी दिल दुःखाये बिना ही हमारा बेटा हमें मिल जायेगा ।'

'कहो भी तो वह महामंत्र क्या है ?' — धनदत्ता ने बड़ी आतुरता से पूछा ।

धनदत्त ने कहा — 'कुछ नहीं कल ही अपने बेटे के लिए एक सर्वसुन्दर कन्या की तलाश के लिए नाई और पंडितजी को बुलाकर नगर-नगर में उद्घोष करा दिया जाये । भले ही बेटे के तौल स्वर्णमुद्रायें भी क्यों न देनी पड़े, पर सबसे सुन्दर कन्या के साथ बेटे की शादी करेंगे ।'

'उससे क्या होगा स्वामिन् ?' — धनदत्ता ने जिज्ञासा प्रगट की।

'अरे ! जब हमारा बेटा सर्वगुण सम्पन्न सुन्दरी को देखेगा तो उस बालक की भांति जो नया खिलौना देखते ही पुराना खिलौना फेंक देता है, वह स्वतः ही उस नृत्यांगना का परित्याग कर देगा' — सेठ धनदत्त ने खिलखिलाकर कहा ।

उपाय तो उत्तम था, कारगर भी था, पर कहने में जितना सरल-सहज दिखता था, प्रयोग करने में उतना आसान नहीं था, फिर भी 'सही दिशा में किया गया प्रयत्न निष्फल नहीं जाता' । इस विश्वास के साथ सेठजी ने श्रीकांत की शादी करने का निश्चय कर लिया और एक सर्वगुण संपन्न सर्वांग सुन्दर तथा गीत-संगीत और नृत्यकला में निपुण सुशील कन्या के साथ उसकी सगाई कर दी गई ।

श्रीकात सुशील और आज्ञाकारी तो था ही, अतः उसने पिता द्वारा की गई सगाई का विरोध नहीं किया; बल्कि उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया ।

जब यह बात उस नृत्यागना को ज्ञात हुई तो वह चिंतित हो उठी, उसे विचार आया कि श्रीकात की शादी होने के बाद जब वह उस सर्वांग सुन्दर एवं सर्वगुण सम्पन्न सुन्दरी को देखेगा, उसके सम्पर्क में आयेगा तो स्वभावतः यहाँ माना छोड़ देगा । अतः उसने सोचा कि शादी अब टल नहीं सकती, अतः ऐसा कोई उपाय करना चाहिए जिससे वह उसका मुँह ही न देखे ।

दूसरे दिन जब श्रीकात नृत्य देखने को उस नृत्यागना के नाट्यगृह मे पहुँचा तो वहाँ उसने उस नृत्यागना को अत्यन्त उदास मुद्रा मे बैठा देखा। देखते ही उसने पूछा — 'आज तुम ऐसी उदास क्यो हो ? क्या तुमसे किसी ने कुछ कहा हैं ? अरे मेरे रहते तुमसे कोई कुछ नही कह सकता। जो आँख दिखायेगा उसकी आँख फोड़ दी जायेगी और जो अँगुली दिखायेगा उसकी अँगुली तोड़ दी जायेगी ।'

नर्तकी ने कहा — 'स्वामी ! ऐसी कोई बात नहीं है, मेरी चिन्ता का विषय और कोई नहीं, आप ही है ।'

'मै ! मै कैसे ? मुझसे ऐसी क्या भूल हुई है ?' — श्रीकात ने कहा।

नृत्यागना ने दुःखी मन से कहा — 'श्रीकात ! भूल आपसे नहीं आपके पिताजी से हुई है ।'

आश्चर्यचकित हो श्रीकात ने पूछा — 'क्या कहा ? भूल और मेरे पिताजी से ! असमव ।'

नृत्यागना ने कहा — 'घबराओ नहीं, मै जो कहती हूँ उसे ध्यान से सुनो । एक ज्योतिषी आया था, वह कहता था कि — श्रीकात की शादी जिस कन्या से हो रही है, उस कन्या का मुख देखते ही श्रीकात अधा हो जायेगा । बस यही मेरी चिता का विषय है ।'

श्रीकांत बोला – 'बस इतनी-सी बात है, ठीक है, मैं उसका मुँह ही नहीं देखूंगा फिर तो कोई भय नहीं है – अब तो ठीक है न? अब तुम प्रसन्न हो जाओ और हमें प्रसन्न करने के लिए नृत्य प्रारंभ करो।'

नर्तकी के तीर का निशाना सही जगह लगा, वह अपने लक्ष्य-वेध में सफल हुई, अतः वह प्रसन्न हो गई ।

× × ×

श्रीकांत ने अपनी आँखों पर अपने ही हाथों से पट्टी बाँध ली थी। पट्टी बांधे-बांधे ही शादी हो गई, दुल्हन घर आई, एक माह बाद पीहर जाकर फिर वापिस घर आ गई, पर अभी भी श्रीकांत की आँख से पट्टी नहीं उतरी । पत्नी को चिंता हुई, आखिर बात क्या है ? कुछ दाल में काला नजर आता है, वह भी कम बुद्धिमान नहीं थी, सुन्दरी तो थी ही, चतुर भी बहुत थी ।

उसने एक दिन पतिदेव से कहा – 'स्वामिन् ! जब आँख पर पट्टी ही बंधी है तो आप दूकान पर क्यों जाते हैं, घर पर ही आराम कीजिए ?'

'नहीं-नही, दूकान जाना तो जरूरी है, आजकल एक तो वैसे ही घाटा ही घाटा हो रहा है और फिर घर बैठ गये तो...' भोलेपन से श्रीकांत ने कहा ।

श्रीकात की पत्नी मे सोचा – 'इस रहस्य का पता तो लगाना ही है, अतः क्यों न अपनी दासी को यथार्थ स्थिति का पता लगाने के लिए गुप्तचर के रूप में श्रीकात के पीछे लगा दिया जाय ?'

दासी भी चतुर-चालाक थी । उसने शीघ्र ही सब यथार्थ स्थिति का पता लगा लिया ।

श्रीकांत जितना स्नेह नर्तकी से करता था, अपनी पत्नी से भी उससे अधिक प्रेम करने लगा था; क्योंकि उसने भी अपने सद्व्यवहार से उसका मन मोह लिया था । उसका मुँह न देखना तो उसकी मजबूरी थी।

नर्तकी की भाँति एक दिन उसकी पत्नी ने भी श्रीकांत के घर आते ही अपने हाव-भाव से उदासी प्रकट की ।

श्रीकांत ने वही संवाद जो नर्तकी को उदास देखकर बोला था, पत्नी के सामने दुहराया — 'जिसने आँख दिखाई हो, उसकी आँख फोड़ दूंगा, जिसने उंगली दिखाई हो, उसकी उंगली तोड़ दूंगा ।'

तब पत्नी ने भी वैसे ही लहजे में कहा — 'स्वामिन् ! ऐसी तो कोई बात नहीं है । हाँ, एक ज्योतिषी आया था ।'

'क्या कहता था वह' — घबड़ाकर श्रीकांत बोला ।

'और तो कुछ खास नहीं कहा, पर इतना अवश्य कहा कि जब तक तेरा पति तेरा मुँह नहीं देखेगा, तब तक उसके व्यापार मे घाटा ही घाटा होता रहेगा । बस यही एक मेरी उदासी का कारण है ।'

श्रीकांत बोला — 'ये ज्योतिषी भी कमाल करते है ।'

इसमे कमाल की क्या बात है ? जैसा उनके निमित्त ज्ञान मे आया, बता दिया' — पत्नी ने कहा ।

'पर सबका मत अलग-अलग क्यों ? एक कहता है कि पत्नी का मुँह देखेगा तो अंधा हो जायेगा, दूसरा कहता है कि नहीं देखेगा तो दिवाला निकल जायेगा, अब तू ही बता क्या करूँ ?

'एक उपाय है' — पत्नी ने गंभीरता से कहा ।

'वह क्या ?' — श्रीकांत ने जिज्ञासा प्रगट की ।

'खास तो कुछ नही, बस आप मुझे एक आँख से देख लो, दिवाला तो नही निकलेगा कम से कम । दिखने को तो एक आँख से भी उतना ही दिखता है जितना दोनो आँखो से, बल्कि निशाना लगाने मे भी आसानी रहेगी' — हँसी रोकते हुए पत्नी बोली ।

"क्या बात करती है, काना नहीं हो जाऊँगा ?'

'सोच लो दिवाला नही निकलने देना हो, तो इतना तो करना ही पड़ेगा। ऐसे आँख पर पट्टी कबतक बाँधे रहोगे ? और हाँ, यह तो विज्ञान का युग है न ! अतः अब तो आँखे पुनर्स्थापित करने की सुविधा भी उपलब्ध है ।' — पत्नी ने कहा ।

'हाँ ! यह ठीक है', कहकर श्रीकांत ने डरते-डरते एक आँख खोली तो चाँदसा मुखड़ा देखता ही रह गया । उसने आँख फूटने की आशंका से आँख को बार-बार मिलामिलाकर देखा, पर हुआ यह कि चमड़े की आँख फूटने की बजाय हृदय की आँखें, विवेक की आँखें खुल गई और पत्नी की चतुराई से नर्तकी के त्रियाचरित्र का भेद जानकर श्रीकांत बहुत प्रसन्न हुआ ।"

विज्ञान ने सेठ सिद्धोमल को यह कहानी सुनाते हुए कहा — "जिस तरह सेठ धनदत्त को पंडितजी के इस प्रवचन से दुहरा लाभ मिला था। सिद्धांत समझ में आ जाने से आत्मा का स्वरूप तो समझ में आया ही, साथ ही दृष्टान्त सुनकर उसने भी अपने पुत्र श्रीकांत की सगाई एक ऐसी सुन्दर कन्या से तय कर ली जो सर्वगुण सम्पन्न और सर्वांग सुन्दर थी । उस कन्या के सम्पर्क में आने पर उसके सब दुर्व्यसन और दुराचार की बुरी आदतें स्वतः छूट गई, क्योंकि अब उसे उस सुन्दरी के सिवाय और कुछ अच्छा लगता ही नही था । ठीक इसीतरह यदि तुम भी अपने पुत्र सजू की सगाई किसी सर्वांग सुन्दर कन्या से कर दो तो उसका ध्यान भी सब जगह से हटकर एक जगह टिक जायगा ।"

सेठ सिद्धोमल यह कहानी सुनते ही बासो उछल पड़े, मानों उन्हें निधि मिल गई हो । बस फिर क्या था, उन्होने भी सजू की शादी सर्वश्रेष्ठ रूप-गुण सम्पन्न कन्या से करने का निश्चय कर लिया, ताकि वह भी तथाकथित दुराचार से मुक्त हो सके । उसके लिए उन्हें जो कुछ त्याग करना पड़े, वे करने को तैयार हो गये ।

इधर विज्ञान ने सजू से सम्पर्क करके उसके पिताजी के विचारों मे आये परिवर्तन की खुशखबरी सुनाकर उसे भी पुनः घर लौटने के लिए राजी कर लिया ।

०

(१७)

सेठ सिद्धोमल ने सोचा – "ऐसा अखण्ड पुण्य तो विरलो के ही होता है, जिसके फल मे सब प्रकार की अनुकूलताये एक साथ मिलती है । हम जैसे अधिकाश लोगो का तो दात-चनो जैसा खेल ही होता है । जब दात होते है तब चबाने को चने तक नसीब नहीं होते और जब पुण्य योग से सब कुछ भोग सामग्री उपलब्ध हो जाती है, तब तक आते इतनी कमजोर हो जातीं है कि मूग की दाल का पानी भी नहीं पचता ।

ठीक यही स्थिति सजू की शादी के सबध मे घटित होती दिखाई देती है । अपने बराबरी का रिस्ता, भरपूर दहेज और सर्वांग सुन्दर कन्या – मन चाहे सभी सयोग मिलना तो सभव है नहीं; क्योंकि जिनके पास देने को भरपूर दहेज, सर्वांग सुन्दर व सर्वगुण सम्पन्न कन्या तथा सभी प्रकार की सम्पन्नता होगी, वह सजू जैसे आवारा लड़के को अपनी लड़की क्यो देगा ? भले सजू मे कोई खास खराबी नहीं है, पर मैने उससे सबध विच्छेद की घोषणा करके अपने हाथ से ही अपने पैरो पर पत्थर जो पटक लिया है । इस परिस्थिति मे यदि सुन्दर बहू चाहिए तो किसी निर्धन व्यक्ति की लड़की ही लेनी पड़ेगी । दहेज मिलना तो दूर, यह भी हो सकता है कि लड़की के माँ-बाप का आर्थिक सहयोग भी करना पड़े । अतः क्यों न अपनी ओर से ही दहेज न लेने की घोषणा करके उदार और आदर्शवादी होने का यशलाभ ही ले लिया जावे ? प्रतिष्ठा प्राप्त करने के इस स्वर्ण अवसर को यों ही खो देने मे कोई समझदारी नहीं है ।"

यह विचार करके सेठ सिद्धोमल ने समाज मे अपनी मित्र मंडली और अपने सब मिलने-जुलने वालो से यह कहना प्रारंभ कर दिया।

अरे भाई ! हम तो उन लोगो मे से हैं कि यदि जरूरत हुई तो कन्यापक्ष का भी तन-मन-धन से — हर तरह से पूरा-पूरा सहयोग करने को तैयार हैं । पर कन्या सर्वगुण सम्पन्न और सर्वांग सुन्दर होनी चाहिए ।"

इसप्रकार सेठ सिद्धोमल ने समाज मे और अपनी मित्र-मडली मे लम्बे-लम्बे वक्तव्य देकर आदर्शवादी बनने की कोशिश तो बहुत की, पर वे आदर्श व्यक्ति बन नही पाये । उनके इस प्रस्ताव को सुनकर एक क्रान्तिकारी समाज सुधारक से नही रहा गया । उसने सेठ सिद्धोमल को आड़े हाथों लेते हुए उन्हें अपने वचनबाण का निशाना बनाकर कहा — "मैं सेठ सिद्धोमल और उन जैसे सहस्रो श्रीमन्तो से पूछना चाहता हूँ कि यदि आप लोग दहेज द्वारा मनचाहा धन लेकर वर-विक्रय नही करोगे तो तन-मन-धन से सहयोग देने के बहाने मुँहमागा धन देकर कन्याओ का क्रय करोगे, पर यह बणिक वृत्ति तुम करोगे अवश्य । विक्रय नही तो क्रय, क्रय नहीं तो विक्रय । तुम क्रय-विक्रय का धधा किए बिना नहीं रह सकते । बनिये जो ठहरे । क्या ऐसा नहीं हो सकता कि क्रय-विक्रय कुछ भी न करो ?

ध्यान रहे, कन्यापक्ष को दहेज देने के लिए किसी न किसी तरह बाध्य करना जितना बड़ा नैतिक व सामाजिक अपराध है, बे-मेल सबधों के लिए कन्या का क्रय करना भी उतना ही बड़ा अपराध है; क्योकि कन्या के क्रय की प्रथा ने ही तो अनमेल रिस्तो को प्रोत्साहित किया था, परम्परा डाली थी । साठ-साठ वर्ष के वृद्ध श्रीमन्त भी निर्धन व्यक्तियो को मुँह-माँगा धन का प्रलोभन देकर पन्द्रह-सोलह वर्ष की कन्याओ से शादी कर लिया करते थे और स्वय दस-पाँच वर्ष मे ही राम को प्यारे होकर पच्चीस-तीस वर्ष की भरी जवानी मे ही उसे वैधव्य के दुःसह दुःख भोगने को छोड़ जाते थे । बेचारी वे जीवनभर हिरणी की भाँति दीन-हीन बनी कामियो की कुदृष्टि से

बरातियो का स्वागत-सम्मान करना और यादगार के रूप में या शादी की स्मृति स्वरूप दी गई छोटी-मोटी भेंट भी बरातियो को स्वीकार करनी ही होगी ।

कन्यापक्ष का कहना था कि "परम्परागत प्रत्येक पुरानी बात बुरी ही होती हो, गलत ही हो, यह बात भी नहीं है और प्रत्येक नवीन बात सही ही हो, भली ही हो – यह भी कोई नियम नहीं है । वस्तुतः अति ही सर्वत्र बुरी होती है । इसीलिए किसी मनीषी ने ठीक ही कहा है कि 'अति सर्वत्र वर्जयेत् ।"

कन्या के पिता ने आगे कहा – "शादी-विवाह के बहुत से रीति-रिवाज और परम्पराये बहुत अच्छे होते हैं, हमे उन्हें तोड़ना भी नहीं चाहिए। पर अविवेक के कारण आज दोनो पक्षों मे हो रही अति से अनेक अच्छे रीति-रिवाज और परम्पराये भी बदनाम हो गई हैं । उनमे सबसे अधिक बदनामी दहेज को मिली है ।

वस्तुतः दहेज का परम्परागत रिवाज बुरा नहीं था । बल्कि यह एक अच्छी परम्परा थी । यह कभी किसी बुद्धिमान व्यक्ति की सूझ-बूझ का सुखद परिणाम रहा होगा । पर आज तो इसका स्वरूप ही बदल गया है, विकृत हो गया है । यह पहले जितनी सुखद थी, आज उससे कहीं बहुत अधिक दुःखद बन गई हैं । उस दुःखद स्थिति के मूल कारणों को न देखकर कुछ लोग दहेज जैसी पवित्र परम्परा का ही विरोध करने लगे हैं । दहेज को ही कोसने लगे हैं । ऐसे लोग दहेज का सही स्वरूप, अर्थ व उसका मूल प्रयोजन नहीं जानते । दहेज वस्तुतः कन्या के माता-पिता, भाई-भाभी, बंधु-बान्धव, कुटुम्ब-परिवार और रिस्तेदारों द्वारा अपनी-अपनी शक्ति और रुचि के अनुसार प्रेमपूर्वक सहर्ष दिया गया वह उपहार है, जिसे प्रदान कर वे प्रसन्न होते हैं कृतार्थ होते है । इसमें परस्पर प्रेम और सहयोग की भावना भी निहित होती है ।

इस परम्परा को प्रचलित करने के पीछे एक पवित्र उद्देश्य यह भी रहा होगा कि जिन लड़के-लड़कियों को परिवार और समाज के लोग वर-वधू के रूप में गृहस्थ जीवन में प्रवेश कराते हैं, उनकी प्रारंभिक या प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा करने का उत्तरदायित्व भी तो उनके परिवार व समाज का है । अतः सभी घर-कुटुम्ब के लोग, रिश्तेदार, पंच और समाज के सब लोग मिलकर अनेक नेग-दस्तूरों के रूप में कुछ न कुछ दैनिक आवश्यकता की वस्तुयें देकर एक नया घर बसाते हैं ।

आपने देखा होगा दहेज में क्या-क्या दिया जाता है ? रसोई के वर्तन, शयनकक्ष का सामान, बैठक का फर्नीचर, पहनने-ओढ़ने के वस्त्र, सामान्य गहने आदि । व्यवहार व आशीर्वाद के रूप में नगद रुपया भी अनेक लोग देते हैं, जो पारस्परिक व्यवहार के रूप में शादी-विवाह एवं जन्मदिनों के अवसरों पर वापिस भी हो जाता है ।

जिसतरह मेहमान को मेजवान अपनी परिस्थिति के अनुसार उत्तम से उत्तम भोजन बनाकर प्रेमपूर्वक मना-मनाकर परोसता है, पर मेहमान की इज्जत और प्रतिष्ठा इस वात में ही है कि वह कभी कुछ अपने मुँह से माँगता नहीं है । इसी में होती है दोनों पक्षों की शोभा । मेहमान सोचता है –

रूखी अरु आधी भली, जो परसे मन लाय ।
परसत मन मैला करे, तो मैदा जर जाय ॥

ठीक यही स्थिति दहेज के संदर्भ में समझना चाहिए । अतः जो दहेज मांगेगा, मैं उसे तो अपनी कन्या दूँगा ही नहीं, पर जो मेरे द्वारा प्रेमपूर्वक दी गई भेंट को स्वीकार नहीं करेगा, उसे भी मैं अपनी कन्या देना पसन्द नहीं करूँगा; क्योंकि बिल्कुल कुछ भी दहेज स्वीकार न करना भी कन्यापक्ष का अपमान है ।

हमारी जो लेन-देन की विशुद्ध परम्परायें हैं, उनका निर्वाह तो होना ही चाहिए । वस्तुतः देखा जाए तो दहेज कोई समस्या नहीं,

समस्या है दहेज की माग करना, दहेज का सौदा करना, दहेज देने के लिए कन्यापक्ष को येन-केन-प्रकारेण बाध्य करना ।

दहेज देने-लेने का व्यवहार तो सदा से है और रहेगा । वह कोई अनुचित भी नहीं है । विरोध दहेज का नहीं, दहेज प्रथा का होना चाहिए । दहेज देने एव लेने को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाना ठीक नहीं है ।

कुछ लोग अधिक दहेज मिलने में अपनी इज्जत समझते हैं तो कुछ बिल्कुल भी दहेज न लेने में, स्वीकार न करने में अपनी इज्जत समझते है, पर वे दोनों ही प्रकार के लोग भूल में है, वस्तुस्थिति से अनभिज्ञ है ।"

× × ×

कन्या के पिता के ये आदर्श विचार सुनकर सेठ सिद्धोमल भी उनके विचारो से सहमत हो गये । दहेज के कारण और निवारण पर अपने महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत करते हुए कन्या के पिता ने कहा — "आज शायद ही कोई लेखक, कवि, कहानीकार और वक्ता बचा हो, जिसने दहेज के विरोध मे कभी न कभी अपनी कलम या जबान न चलाई हो; पर उनमे ऐसे बहुत कम होगे जो उसकी तह तक पहुँचे हो । अधिकाश तो केवल वरपक्ष को कोसने मे ही अपने कर्त्तव्य की इति-श्री मान लेते है ।

पर क्या ऐसा वर्गीकरण सभव है कि अमुक-अमुक व्यक्ति वरपक्ष के हैं और अमुक कन्यापक्ष के ? क्या वे सभी व्यक्ति, जिन्हें आप आज वरपक्ष का कह रहे हैं, कभी भी कन्यापक्ष के नही रहे होगे या आगे कभी कन्यापक्ष के नहीं रहेंगे । अरे, जिनके घर मे एक लड़का एव एक लड़की है, दोनो शादी लायक है । आप ही बताओ ! उन्हें हम किस पक्ष का माने ? क्या वह एक ही व्यक्ति दोनों पक्ष नही है ? और यह एक-दो घर नहीं, घर-घर की कहानी

की प्रशसा कर रहे थे और कह रहे थे कि हम सबको भी इसीतरह के आदर्श विवाहो को प्रोत्साहित करना चाहिए ।

अभी हो रहे आदर्श विवाह जो निर्धनता के प्रतीक बनते जा रहे है, उनमे भी इसीतरह का सुधार अपेक्षित है, अन्यथा यह योजना लम्बे काल तक नहीं चल सकेगी ।

अपनी ओर देख !

एकबार इसी जिज्ञासा से अपनी ओर देख कि — जानने लायक, देखने लायक एकमात्र अपना आत्मा ही है । यह आत्मा शब्दों में नही समझाया जा सकता है, इसे वाणी से नहीं बताया जा सकता। यह शब्दजाल और वाक्‌विलास से परे है । यह मात्र जानने की वस्तु है, अनुभवगम्य है। यह अनुभवगम्य आत्मवस्तु ज्ञान का घनपिण्ड और आनन्द का कन्द है । अतः समस्त परपदार्थों उनके भावों एव अपनी आत्मा मे उठनेवाले विकारी-अविकारी भावों से भी दृष्टि हटाकर एकबार अन्तर में झाँक ! अन्तर मे देख, अन्तर मे ही देख ! देख !! देख !!!

— तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, पृष्ठ-76

१८

"प्रशंसा और पुरस्कार एक ऐसी संजीवनी है, जो अनजाने ही अन्तरात्मा में नवीन चेतना का संचार कर देती है । यह एक ऐसा टॉनिक[1] है, जिसके बिना व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास ही अवरुद्ध हो जाता है । वस्तुतः यह मानवमात्र की वह मानसिक खुराक है, जिसके बिना मानव में काम करने का उत्साह उत्पन्न ही नहीं होता। जिस तरह मनुष्य का शरीर संतुलित भोजन के अभाव में रोगी हो जाता है, कमजोर हो जाता है; उसीतरह संतुलित प्रोत्साहन व प्रशंसा की कमी के कारण मानव की कार्यक्षमता कम हो जाती है ।

प्रशंसा व प्रोत्साहन एक ऐसी रामबाण अचूक औषधि है, जो हताश, हतोत्साहित व निरुत्साहित मानवों के मनों में आशा, उमंग व उत्साह भर देती है । प्रशंसा की खुराक देकर आप एक भूखे-प्यासे व्यक्ति से भी मनचाहा कठिन से कठिन और हीन से हीन काम करा सकते हैं ।

आये दिन होनेवाले स्वागत समारोह, अभिनन्दन-पत्रों और प्रशंसा-पत्रों का समर्पण एवं उपाधियों व पुरस्कारों का वितरण तथा आभार प्रदर्शनों के आयोजन निरर्थक नहीं है, इन सबके पीछे यही मनोवैज्ञानिक तथ्य काम करता है ।"

इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को ध्यान में रखकर ही आचार्यश्री ने उस दिन अपने प्रवचन में विज्ञान के स्वाध्याय की प्रशंसा की थी, जिसे सुनकर वह मन ही मन भारी प्रसन्न था । अब उसका उत्साह द्विगुणित हो गया था । फलस्वरूप उसने अपने स्वाध्याय को तो नियमित और व्यवस्थित

---

१. मानसिक एवं शारीरिक क्षतिपूर्ति करनेवाले बलदायक एवं मनोबलवर्द्धक पोषक तत्त्व।

किया ही, साथ ही तत्त्वप्रचार की नई-नई योजनाएँ बनाने में भी वह सक्रिय हो गया ।

आचार्यश्री द्वारा प्रशंसा रूपी जल के सींचने से उसकी मानस वाटिका पल्लवित पुष्पित हो हरी-भरी होने लगी थी ।

× × ×

दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाय तो प्रशंसा पाने और यश खाने की आदत एक बड़ी भारी मानवीय दुर्बलता भी है, जिसका चतुर, चालाक व वाक्पटु व्यक्ति दुरुपयोग भी कर लेते हैं । स्वार्थी लोग इस मानवीय कमजोरी को पहचान कर झूठ-मूठ प्रशंसा करके अपने स्वार्थ सिद्ध करने के प्रयास भी करते हैं ।

यह एक ऐसी विश्वव्यापी बीमारी भी है, जो औरों की तो बात ही क्या, क्वचित्-कदाचित् बड़े-बड़े साधु-सन्तो तक मे भी देखी जा सकती है और इससे बचना असंभव नहीं तो कठिन तो है ही । अतः यश की भूख और प्रशंसा की प्यास बुझाते समय प्रशंसक के हृदय की पवित्रता की पहचान और तदनुसार अपनी योग्यता का आकलन एवं आत्म-निरीक्षण तो कर ही लेना चाहिए ।

सज्जन बुद्धिमान व्यक्ति वह है, जो इसका उपयोग व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए एक चतुर वैद्य की तरह इसप्रकार करता है कि किसको/कब/कितनी मात्रा में प्रशंसा की खुराक दी जाय ? जो उसके सर्वांगीण व्यक्तित्व के विकास में सहायक हो सके ।

इस संबंध मे प्रायः होता यह है कि व्यक्ति इसके मूल उद्देश्य को दृष्टि से ओझल करके या तो अपने-पराये के संकुचित दृष्टिको के कारण 'अन्धा बाँटे रेवड़ी, चीन-चीन कर देय' वाली कहावत चरित करने लगता है । अथवा स्वयं कुछ सोचे-समझे बिना, देखा-देखी मे चल देता है ।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के विदेशों मे हुए सम्मान से प्र भारतीय विश्वविद्यालय ने उन्हें 'डाक्टरेट' की उपाधि से

का आमंत्रण दिया तो उन्होंने 'टू मच लेट' कहकर उनके सम्मान को अस्वीकार कर दिया था ।

ऐसा करके उन्होंने कोई नाराजी प्रगट नहीं की थी, बल्कि वे उन्हें यह सिखाना चाहते थे कि – 'भरे पेट में अमृत पान कराने के बजाय भूखे पेट को समय पर दो रोटियाँ देना बेहतर है ।'

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर आचार्यश्री ने विज्ञान को ठीक समय पर प्रोत्साहित किया था । प्रोत्साहन पाकर विज्ञान ने एक दिन साहस बटोरते हुए शंका-समाधान के समय णमोकार मंत्र की कथाओं से संबंधित चर्चा को पुनः उठाते हुए निवेदन किया कि – "महाराज! णमोकार महामंत्र संबंधी पुराणों में आयी कथाओं के संदर्भ में मेरा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि 'दृढसूर्य' चोर ने दुस्सह दुःख भोगते हुए जल की आशा से णमोकार मंत्र का उच्चारण किया, फिर भी वह उस मंत्र के प्रभाव से देवपर्याय को प्राप्त हुआ, सो ऐसा कैसे संभव है ? क्या संक्लेश भावों के साथ तथा लौकिक कामना से किये गये णमोकार मंत्र का उच्चारण का फल स्वर्ग की प्राप्ति हो सकता है ?"

आचार्यश्री विज्ञान के तार्किक चिन्तन और गहन अध्ययन की पुनः प्रशंसा करते हुए बोले – "स्वाध्याय तो कहते ही उसे हैं जिसमें विचार मंथन हो । जिसतरह दही को विधिवत बिलोए बिना मक्खन हाथ नहीं आता, उसीप्रकार वस्तुस्वरूप का स्याद्वाद शैली से विधिवत मन्थन किए बिना तत्त्व हाथ नहीं आता ।"

यद्यपि शंका-समाधान का समय समाप्त हो चुका था, फिर भी उपर्युक्त शंका का समाधान सुनने को सभी श्रोता उत्सुक थे, परन्तु समयाभाव के कारण उस दिन समाधान करना संभव नहीं था ।

श्रोता भी यही सोच रहे थे कि महाराज समय के पाबन्द हैं, अतः अब कल तक तो प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी । उधर उस रात आचार्यश्री के चिन्तन का विषय भी केवल विज्ञान की तत्त्वचर्चा ही बनी रही । उसके आगम पर आधारित एवं युक्तिसंगत प्रश्नों ने महाराजश्री को समाधान

करने के लिए विवश तो किया ही, उसकी पैनी पकड़ ने उन्हें प्रभावित भी किया । इसकारण उनका अगले दिन का प्रवचन भी विज्ञान द्वारा प्रस्तुत की गई शकाओ के इर्द-गिर्द ही घूमता रहा ।

दृढ़सूर्य चोर की कथा से सबधित विज्ञान की शंका का विश्लेषण करते हुए आचार्यश्री ने कहा — "यह कोई नियम तो है नहीं कि जिन-जिन को बाह्य मे दारुण दुःख होता दिखाई दे, उन सबके परिणाम भी सक्लेश रूप ही हो, विशुद्ध भी तो हो सकते हैं । सम्यग्दृष्टि नारकी जीवो को ही देखो न ? नरको मे बाह्य सयोगो की कैसी प्रतिकूलता है ? निरन्तर अनन्त दुःख, एक क्षण को भी चैन नहीं; फिर भी सम्यग्दृष्टि जीव समता रस का ही पान किया करते है ।

इस सबध मे कविवर दौलतरामजी की वे पंक्तियाँ स्मरणीय हैं, जिनमें उन्होने सम्यग्दृष्टि की प्रतिकूल परिस्थितियो मे समताभाव से रहने का चित्रण किया है । वे कहते हैं —

चिन्मूरत दृग धारि की मोहि, रीति लगत कछु अटापटी ।
बाहर नारकिकृत दुःख भोगे, अन्तर समरस गटागटी ॥

इसप्रकार दारुण दुःख मे भी विशुद्ध परिणाम रह सकते हैं । इसका दूसरा ज्वलन्त प्रमाण हमारे सामने पाँच पाण्डवो का है । यदि बाहर के दारुण दुःख देखकर उनके अन्तरंग परिणामो को सक्लेशरूप ठहराया जाएगा, तब तो फिर उनमे से तीन को मोक्ष प्राप्त होना और दो का सर्वार्थसिद्धि मे जाने की बात ही विवाद मे पड़ जायेगी, जो निर्विवाद रूप से सर्वज्ञ देव द्वारा कथित आगम सिद्ध तथ्य है ।

देवपर्याय की प्राप्ति भी बिना विशुद्ध परिणामो के सभव नही है, अतः दृढ़सूर्य चोर के परिणाम णमोकार मत्र का निमित्त पाकर अपनी तत्समय की योग्यता से नियम से विशुद्ध हुए थे, अन्यथा उसे देवगति में जाना कैसे सभव है ?

उक्त कथा मे भी इतना ही तो लिखा है कि दुस्सह दुःख भोगते हुए भी उसने णमोकार मत्र के पढ़ने से देवगति प्राप्त की । यह कहाँ लिखा कि सक्लेश परिणाम करते हुए भी स्वर्ग गया ?"

अपने प्रवचन के विषय को आगे बढ़ाते हुए मुनिश्री ने विज्ञान को ही लक्ष्य करके कहा – "विज्ञान ! तुम्हारी दूसरी शंका यह है कि पानी पीने की कामना से णमोकार मंत्र का जाप करनेवाले को स्वर्ग की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

यह शंका भी अपनी जगह बिल्कुल सही हैं, पानी ही क्या ? किसी भी लौकिक कामना से की गई पंचमेरष्ठी की उपासना तीव्रकषाय होने से पापभावरूप ही है । फिर भी दृढ़सूर्य चोर को जो स्वर्ग की प्राप्ति होने का उल्लेख पुराणों में है उस संदर्भ में यह विचारणीय है कि –'क्या ऐसा नहीं हो सकता कि णमोकार मंत्र के उच्चारण करने से दृढ़सूर्य चोर का ध्यान प्यास जनित पीड़ा या दारुण दुःख से हटकर पंचपरमेष्ठी के स्वरूप पर चला गया हो और भली होनहार के कारण उसे अपने चौरकृत्य पर पश्चाताप के साथ णमोकार मंत्र की आराधना के फलस्वरूप विशुद्ध परिणाम हो गये हों, जिनका फल साक्षात् स्वर्ग ही है ।

उसकी अन्तरंग परिणति विशुद्ध हो जाने पर भी बाह्य दृष्टि से देखनेवालों ने तो यही देखा होगा अथवा उन्हें तो यही दिखाई दिया होगा कि वह बेचारा प्यास से तड़प रहा है, ओंठ सूख रहे हैं, ओंठों पर जीभ फेर रहा है, साथ ही णमोकार मंत्र पढ़ रहा है ।' यह दृश्य देखकर तो यही कहा जायेगा या अनुमान लगाया जायेगा कि उसने जरूर पानी के लिए ही णमोकार मंत्र पढ़ा होगा ।

कविवर बनारसीदास के साथ भी तो ऐसा ही घटित हुआ था । जब मरणतुल्य वेदना के बाद भी उनके प्राण नहीं निकले तो लोगों ने यह कहना प्रारंभ कर दिया कि – 'पता नहीं बेचारे के प्राण कहाँ मोह-ममता में अटक रहे हैं ? किन्तु जब लोगों की यह चर्चा उनके कान में पड़ी तो उन्हें यह लिखकर बताना पड़ा कि – अरे भाई ! ऐसी बात नहीं है । मैंने तो ज्ञानरूपी फरसे से अपने मोह-राग-द्वेष आदि सभी कर्म-शत्रुओं को मार दिया है । अब मैं इस संसार से सदा के लिए जा रहा हूँ, मुझे अब यहाँ पुनः लौटकर नहीं आना है ।

देखिए उन्हीं के शब्दों में — अर्द्धकथानक में वे लिखते हैं :-

'ज्ञान कुतक्का हाथ, मारि अरि मोहना ।
प्रगट्यो रूप स्वरूप, अनन्त सु सोहना ॥
जा परजै को अन्त, सत्य कर मानना ।
चले बनारसिदास फेर नहीं आवना ॥'

अतः दृढ़सूर्य का बाहरी दारुण दुःख देखकर यह कल्पना करना उचित नहीं है कि उसने पानी की कामना से ही णमोकार मंत्र सुना था, फिर भी स्वर्ग की प्राप्ति हो गई । यदि पानी की कामना से मंत्र का पाठ किया होता तो नियम से स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती ।

तुम्हारी मान्यतानुसार अर्थ करने से अनर्थ यह होगा कि लोग लौकिक कामना से ही *धर्मकार्य* करने लगेंगे; तब फिर तो निष्कामभक्ति की भावना समाप्त हो ही जावेगी ।

यदि कदाचित् कहीं ऐसा स्पष्ट लिखा भी मिल जाय तो प्रयोजन एवं प्रसंग को दृष्टि में रखकर नयार्थ व मतार्थ से ही उसका समाधान करना होगा ।"

इस प्रकार मुनिश्री ने विज्ञान की शंकाओं का जो समाधान किया, उससे विज्ञान तो सन्तुष्ट हो ही गया, अन्य श्रोता भी गद्‌गद हो गये। सभी मुनिश्री की जय बोलते हुए अपने-अपने घर चले गये । •

१९

"क्या दिगम्बर और क्या श्वेताम्बर, सम्पूर्ण जैन समाज एकमत से णमोकार महामंत्र को अपना आदर्श मंत्र मानती है और सभी मंत्रों में इसको सर्वश्रेष्ठ महामंत्र निरूपित करती है; क्योंकि इस महामंत्र में उन अरहंत सिद्ध आदि वीतरागी पंचपरमेष्ठी को नमन किया गया है, जो सबको समान रूप से मान्य एवं सभी को परम-पूज्य और आराध्य हैं।

क्या गृहस्थ और क्या साधु-मुनि — सभी इन्हें निर्विवाद रूप से एक जैसा ही मानते-पूजते हैं ।

इस कारण सभी सम्प्रदायों में इस महामंत्र की महिमावाचक अनेक पौराणिक कथायें, उपकथायें तो थीं हीं साथ ही समय-समय पर घटित घटानाओं के आधार पर लोक प्रचलित किंवदन्तियाँ एवं भट्टारक युगीन कल्पित कथाओं की भी भरमार रही ।

यहाँ तक तो कोई बात नहीं थी; पर कहीं-कहीं या तो साहित्यिक दृष्टि से अतिशयोक्ति, अन्योक्ति आदि अलंकारों के प्रयोगों से या फिर अनुयोग पद्धति के प्रयोजन वश अथवा किंवदन्तियों से प्रभावित होकर इन कथाओं में बढ़ा-चढ़ा कर भी बहुत कथन किए गए हैं । जिनके सही अभिप्राय और यथार्थ स्थिति को न समझ पाने से उनके सम्बन्ध में लोगों को भ्रान्तियां भी बहुत हुई हैं ।"

आचार्यश्री आज भी रात भर इन्हीं सब बातों पर विचार मंथन करते रहे; क्योंकि दो दिन से प्रवचनों के उपरांत पूछे जाने वाले प्रश्नों में इसी से सम्बन्धित प्रश्न अधिक आ रहे थे । आचार्यश्री ने आगम के आलोक में काफी मंथन किया था । अतः उन्होंने सोचा — "क्यों न आज अनुयोग पद्धति को ही समझा दिया जाय ?"

उसे रोते देख माँ को विचार आया – "आज अच्छा मौका है। जब काँटा लग ही गया तो चाँटों का काम काँटे से ही क्यों न ले लिया जाए?"

बेटे ने रोते-रोते माँ से पूछा – "माँ मुझे काँटा क्यों लगा ?"

माँ बोली – "बेटा तू अपनी बड़ी बहिन को गाली देता है न? मारता-पीटता भी है । बस, इसी कारण तुझको काँटा लगा है ।"

बेटा बोला – "अच्छा माँ मैं आज से कभी गाली नहीं दूँगा, फिर तो काँटा नहीं लगेगा ?"

माँ बोली – "बेटा ! काँटा तुम जैसा पागल थोड़े ही है, जो बिना बात किसी को परेशान करे ।"

उस दिन से बालक ने अपनी बड़ी बहिन को ही क्या सभी को मारना-पीटना और गाली-गलौज करना छोड़ दिया ।

यद्यपि काँटे से गाली-गलौच और मारपीट का कोई संबंध नहीं था, तथापि माँ ने अपनी बुद्धिमानी से यदि काँटे के लग जाने मात्र से बेटे की बुरी आदत छुड़ा दी तो सद् अभिप्राय होने से माँ का यह कथन असत्य नहीं है । बुरी आदत छुड़ाने को चाँटे नहीं मारना पड़े, चाँटों का काम उस काँटे ने ही निबटा दिया, जो कि अचानक उसे लग गया था । सही अभिप्राय होने से ऐसा करना जिस तरह लोक में अनुचित नहीं माना जाता, उसीतरह मोक्षमार्ग में भी ऐसा कथन करने की एक शैली है, जिसका नाम प्रथमानुयोग है। इस अनुयोग का मूल प्रयोजन पापी व अज्ञानी जीवों को पापाचरण से हटाने और मोक्षमार्ग में लगाने का है । एतदर्थ कभी-कभी किसी एक के फल को किसी अन्य का भी कह दिया जाता है ।

प्रथमानुयोग में केवल प्रयोजन की मुख्यता से कथन होता है । इस प्रकरण में केवल इतना प्रयोजन है कि जो लौकिक कामनाओं की पूर्ति के लिए अन्य मत-मतान्तरों द्वारा पीर-पैगम्बर या रागी-द्वेषी व

अल्पज्ञ देवी-देवताओं की शरण मे चले जाते हैं । वे वहाँ जाकर गृहीत मिथ्यात्व मे न पड़े, णमोकार मत्र द्वारा पचपरमेष्ठी का स्वरूप पहचान कर वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा व उन्हीं के पथानुगामी साधुओं की शरण मे आएँ, ताकि वे गृहीत मिथ्यात्व के महापाप से बच सकें और सच्ची बात समझने के निमित्तो से दूर न हो जावे ।"

आज विज्ञान फूला नही समा रहा था, यह प्रश्न उसके मन को बहुत समय से कचोट रहा था, उसका तर्क, युक्ति व आगम के आधार पर जो समाधान मिला; उससे वह पूर्ण प्रसन्न और सतुष्ट था ।

दूसरे दिन प्रवचन से पूर्व ही अनुमति लेकर विज्ञान ने प्रसन्नता प्रगट करते हुए एक प्रश्न और किया — "महाराज ! आगम मे आये परस्पर विरोधी कथनो का सामजस्य किस प्रकार सभव है ?"

इस तथ्य को समझाते हुए आचार्यश्री ने कहा — "भाई ! ऊपर से परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले कथन भी वस्तुतः परस्पर विरोधी नहीं होते; क्योकि दोनो कथनो के प्रयोजन बिल्कुल पृथक-पृथक होते हैं ।

कथाओ के माध्यम से कथाकार अज्ञानी जीवो को सन्मार्ग या मोक्षमार्ग मे लगाना चाहता है; अतः स्वर्गादिक की प्राप्ति मे अनेक कारणो के होते हुए भी मोक्षमार्ग के नेता पचपरमेष्ठी मे श्रद्धा उत्पन्न कराने के लिए पचपरमेष्ठी के वाचक णमोकार मत्र को सुनने रूप निमित्त पर ही जोर देता है । अन्य कारणो को गौण कर देता है ।

कथाकार सोचता है कि यदि इस कथा को पढ़कर पाठक को अरहतदेव एव आचार्य उपाध्याय व साधु परमेष्ठी पर श्रद्धा हो गई तो फिर वह उनकी आराधना भी करने लगेगा और उनकी वाणी भी सुनने लगेगा। ऐसा करने से उसे स्वतः सन्मार्ग मिल जायेगा ।

इसी प्रयोजन से कथा-पुराणो मे कहा गया है कि णमोकार मत्र के श्रवणमात्र से ही उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हुई है, अन्य कोई प्रयोजन नहीं है । कथाकार का अभिप्राय सही होने से कथा मे आए सभी सत्य ही कहे जाते है, यथार्थ ही माने जाते है ।

पंचपरमेष्ठी रूप सद्‌निमित्तों से दूर रहने वाले संसारी जीव ऐसा कहे बिना उन सद्‌निमित्तों से पास ही नहीं आते । इसी कारण णमोकार मंत्र से सम्बन्धित कथाओं में णमोकार मंत्र के स्मरणादि को ही सारा श्रेय दिया गया है और अन्य सभी अंतरंग कारणों को गौण रखा गया है ।

इसके अतिरिक्त एक कारण यह भी है कि अन्य अंतरंग कारण बाहर से प्रगट दिखाई ही नहीं देते, अतः उन्हें श्रेय देना संभव भी नहीं है ।

पांडवपुराण, पद्‌मपुराण एवं पार्श्वपुराण आदि में भी जो यह कहा गया है कि परमेष्ठी पद में विराजमान आत्माओं को भी संकट का सामना करना पड़ा, उसका भी यही प्रयोजन है कि यदि कोई निकट भव्य जीव अपनी अज्ञानमय पूर्वपर्याय में पापाचरण या पापभाव करता है तो उसे उसका फल भोगना ही पड़ता है । चाहे बाद में वह कितना ही बड़ा धर्मात्मा क्यों न हो जावे ? अतः जिसे संकटों में पड़ना स्वीकार न हो, जो दारुण दुःखों से बचा रहना चाहता हो; उसे पापाचरण से तो बचना ही चाहिए न !

दोनों ही तरह के कथानकों का उद्देश्य और अभिप्राय सत् व सत्य होने से कोई भी कथन आगमविरुद्ध व परस्पर विरोधी नहीं है ।

यदि वस्तुतः कारण-कार्य की मीमांसा की जाय तब तो प्रत्येक कार्य के सम्पन्न होने में अनेक कारण विद्यमान रहते हैं; किन्तु श्रेय केवल बाह्य निमित्त कारण को ही दिया जाता है, क्योंकि निमित्त रूप से भी किसी के द्वारा किये गये उपकार को सज्जन भूलते नहीं है । कहा भी है – "नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति" ।

देखो, उन बंदर, बकरा, हथिनी आदि जीवों को जो स्वर्गादि की प्राप्ति हुई, उसमें णमोकार मंत्र का सुनना तो मात्र निमित्त कारण था। साथ में उन जीवों की होनहार भी वैसी ही थी तथा उनके परिणामों की विशुद्धि (कषाय की मंदता) भी ऐसी हो गई थी कि उन परिणामों

से देवगति का बंध हो, अन्य नरकादि गति का नहीं एवं काललब्धि भी वैसी ही आ गई थी । इस कारण उसके परिणाम भी उसी जाति के हुए, जिनसे सद्गति होती है । साथ मे निमित्तरूप मे णमोकार मंत्र भी कान मे पड़ गया था और उस पर विचार करके अरहंतादि के प्रति भक्ति श्रद्धा भी हो गई थी ।

इसप्रकार जब सभी कारण मिलते हैं काम तो तब होता है, परन्तु कथन करने मे अधिकतर निमित्त की ही मुख्यता रहती है । अपेक्षाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं । अतः स्वाध्याय के समय इस बात का ध्यान रखना बहुत आवश्यक होता है कि कहाँ/किस अपेक्षा से कथन किया गया है, किसको मुख्य व किसको गौण किया गया है । ध्यान रहे, जिसे गौण किया हो, उसका निषेध नही मान लेना चाहिए ।"

आचार्यश्री के इस प्रवचन से सभी श्रोतागण प्रथमानुयोग का स्वरूप, उसके कथन करने की पद्धति और प्रयोजन जानकर मन ही मन भारी प्रसन्न हुए और प्रवचन की प्रशंसा करते हुए अपने-अपने घर चले गये । •

रुचि का माप

विषय-कषाय के पोषक उपन्यासादि को हमने कभी अधूरा नहीं छोड़ा होगा, उसे पूरा करके ही दम लेते हैं; उसके पीछे भोजन को भी भूल जाते हैं । क्या आध्यात्मिक साहित्य के अध्ययन में भी कभी भोजन को भूले हैं ? यदि नहीं, तो निश्चित समझिये हमारी रुचि अध्यात्म में उतनी नहीं, जितनी विषय-कषाय में है ।

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ 111

२०

आचार्यश्री के सरल सुबोध शैली में हुए आध्यात्मिक प्रवचनों ने नगर में धूम मचा दी थी । उनके प्रवचनों में क्या अनपढ़-क्या पढ़े लिखे, क्या बालक-क्या वृद्ध, क्या स्त्रियाँ-क्या पुरुष, क्या जैन-क्या अजैन, क्या नेता-क्या अभिनेता, – सभी समय पर पहुँच जाते थे; क्योंकि उनके प्रवचनों में सभी को अपनी-अपनी रुचि के अनुसार तत्त्वज्ञान का लाभ मिल रहा था ।

कठिन से कठिन विषय को सरल से सरल एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत करना उनके प्रवचनों की विशेषता थी ।

आज आचार्यश्री के प्रवचन का विषय णमोकार महामंत्र की कथाओं के पढ़ने से उत्पन्न हुई विज्ञान की शंकाओं का समाधान करना था । उन्होंने सोचा – "विज्ञान जैसे और भी अनेक परीक्षा प्रधानी पाठकों को ये शंकायें होना स्वाभाविक है; अतः क्यों न प्रवचन में ही इस विषय को स्पष्ट कर दिया जाये, ताकि सभी का एक साथ समाधान हो जाये ।"

आचार्यश्री ने प्रवचन की पृष्ठभूमि बनाते हुए कहा – "कल विज्ञान ने प्रवचन के बाद णमोकार महामंत्र के संदर्भ में कुछ महत्त्वपूर्ण शंकाओं का समाधान चाहा था; पर समयाभाव से कल वह चर्चा नहीं हो सकी तथा यह भी सोचा कि आप लोगों को भी संभवतः ये शंकायें हो सकती हैं । वैसे भी णमोकार महामंत्र जैसे विषय की यथार्थ जानकारी अति आवश्यक है । अतः आज के प्रवचनों में इसी विषय पर चर्चा होगी।"

प्रवचन प्रारंभ करते हुए आचार्यश्री ने कहा – "इस णमोकार मंत्र में उन पंचपरमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है, जिनमें कुछ तो पूर्ण वीतरागी है और कुछ वीतरागता के मार्ग पर निरंतर अग्रसर हैं तथा

जिन्हें यह देखने-सुनने की फुरसत ही नहीं है कि उन्हें कौन नमस्कार कर रहा है और कौन नहीं कर रहा है ?

अरहंत व सिद्ध भगवान पूर्ण वीतरागी हैं, उन्हें तो तुम्हारे नमस्कार से कोई प्रयोजन ही नहीं है तथा जो एकदेश वीतरागी है, उन आचार्य, उपाध्याय व साधु परमेष्ठी को भी किसी के नमस्कार करने न करने से कोई मतलब नहीं है ।

इस महामत्र मे पचपरमेष्ठी को नमस्कार करने के सिवाय न तो किसी लौकिक कार्य विशेष के करने-कराने या होने की गारंटी दी गई है और न कहीं कोई आश्वासन ही दिया गया है । हाँ, एक यह गारंटी अवश्य दी है कि जो व्यक्ति इस महामत्र का स्मरण करेगा, उसमे कहे गये पचपरमेष्ठी के स्वरूप का बारम्बार विचार करेगा; उसके मन में उस समय कोई पापभाव उत्पन्न ही नहीं होगा । अर्थात् उसके उस समय होने वाले सब पापो का नाश (अभाव) हो जायेगा । वह परमात्मा की तरह ही बाहर और भीतर से पवित्र हो जायेगा ।

इस गारटी की सीमा भी ध्यान मे रखो, नहीं तो धोखा हो जायेगा। केवल इतनी गारंटी है कि जब तक मन में पचपरमेष्ठी का स्मरण रहेगा तब तक पापभाव पैदा नहीं होगे, आगे-पीछे की उसकी कोई गारंटी नहीं है, भूतकाल मे किये गये पापो का फल भी भोगना पड़ सकता है ?

इस महामत्र की महानता के सबध मे समय-समय पर प्रचारित कथा कहानियो से जहाँ एक ओर जैनजगत में इसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई है और जिज्ञासा जगी है, वहीं दूसरी ओर भ्रात धारणाये भी कम प्रचलित नही हुई हैं । भ्रात धारणाओ के लिए इस महामत्र के सही स्वरूप का जितना भी अनुशीलन/परिशीलन किया जाये, कम ही है ।

देखो, अविवेक की महिमा ! अविवेकियों की वणिक वृत्ति परमपूज्य पचपरमेष्ठियों के साथ भी सौदेबाजी शुरू कर [illegible] भी अविश्वास की भाषा में ! पहले पचपरमेष्ठी [illegible]

करें, तब बाद में यह उन्हें छत्र चढ़ायेगा, विधान करायेगा, मंदिर बनवा देगा, उनके तीर्थ की यात्रा पर जायेगा और न जाने क्या-क्या करेगा उनके लिए ? पर करेगा तब, जब पहले इसका काम हो जाएगा। क्या भरोसा भगवान का ? बाद में काम किया न किया ?"

आचार्यश्री ने भक्तों की सौदेबाजी के कुछ नमूने प्रस्तुत करते हुए आगे कहा –

श्री महावीरजी में उल्टे हाथे लगाती हुई एक बहिन कहती है – 'हे चांदनपुर के बाबा! यदि मेरे बच्चा हो गया तो मैं आपको छत्र चढ़ाऊँगी और दुबारा आकर सीधे हाथे लगाऊँगी ।'

दूसरा भाई कहता है – 'यदि मैं मुकदमा जीत गया तो तीर्थयात्रा पर जाऊँगा और सब तीर्थों पर पूजा-पाठ रचाऊँगा ।'

तीसरा भगत कहता है – 'यदि मेरी बीमारी ठीक हो गई तो ऐसे ठाठ-बाट से सिद्धचक्र पाठ करूँगा की लोग देखते रह जायेंगे ।'

ये सब भगवान पंचपरमेष्ठी के साथ सौदेबाजी नहीं है तो और क्या है?"

सीधे मत्रो के जाप जपने से नहीं । हाँ, यदि मत्र जपते हुए कषाये अत्यन्त मद रहे तो पुण्यबध होता है।"

विज्ञान ने अब तक के अल्पकालीन स्वाध्याय मे कथा-कहानियों के माध्यम से जो पढ़ा था और विद्वानो के प्रवचनो मे जो सुना था, उसके आधार पर ही उसने कल प्रश्न पूछा था, उसका कहना था –

"पुराणो की बाते मेरी समझ मे बिलकुल नहीं आती । मै बहुत प्रयास करता हूँ, परन्तु समाधान मिलने के बजाये आशकाएँ ही अधिक बढ़ती जाती हैं ।"

विज्ञान का मूल प्रश्न यह था कि – "क्या पुराणों की कथाओ के अनुसार णमोकार महामत्र के स्मरण मात्र से वस्तुतः सब सकट दूर हो जाते हैं और सब पाप नष्ट हो जाते है ? जैसा कि पुण्यास्रव कथाकोष मे उल्लिखित इन कथाओं से स्पष्ट है –

पहली कथा में स्पष्ट उल्लेख है कि – सुग्रीव के जीव ने बैल की योनि मे मरणासन्न दशा मे सेठ के द्वारा णमोकारमत्र सुनकर स्वर्ग प्राप्त किया था ।

दूसरी कथा मे साफ-साफ कहा गया है कि – चारणऋद्धिधारी ऋषियो के द्वारा प्रबोध को प्राप्त हुआ बदर महामत्र णमोकार के प्रभाव से दोनो लोको मे सुख भोगकर केवली पद को प्राप्त हुआ ।

तीसरी कथा मे चर्चा आई है कि – राजा विद्युत्कीर्ति की पुत्री विजयश्री सुलोचना के द्वारा सुनाये गये मत्र के प्रभाव से इद्राणी हुई।

चौथी कथा मे यह कहा गया है कि – वह बकरा, जिसे मरते समय चारुदत्त ने णमोकार मत्र सुनाया, उससे वह दिव्य शरीर वाला देव हुआ ।

पाचवी कथा मे आया है कि – वे नाग-नागिनी, जिन्हें पार्श्वकुमार ने मरणासन्न दशा मे णमोकार मत्र दिया, उससे वे धरणेंद्र-पद्मावती हुए।

छठवीं कथा मे कहा है कि – कीचड़ मे फसी हुई हथिनी विद्याधर द्वारा दिये गये महामत्र के प्रभाव से भवान्तर मे राजा जनक की पुत्री सीता हुई ।

सातवीं कथा में यह कहा है कि — दृढ़सूर्य चोर शूली पर दुस्सह दुःख से व्याकुल होकर यद्यपि जल पीने की आशा से णमोकार मंत्र का उच्चारण कर रहा था, तब भी उसके प्रभाव से वह देवपर्याय को प्राप्त हुआ ।

अंतिम आठवीं कथा में तो यहाँ तक कह दिया है कि — विवेकहीन सुभग ग्वाला उस मंत्र के केवल प्रथम पद के उच्चारण मात्र से तद्भव मोक्षगामी सुदर्शन सेठ हुआ और उसने उसी भव से मुक्ति की प्राप्ति की ।

यदि वस्तुतः ऐसा है तो जो प्रतिदिन नियमित रूप से त्रिकाल णमोकार मंत्र का जाप करते हैं, पंचपरमेष्ठी का ध्यान करते हैं, उनके जीवन में अनेक दुःख या संकट क्यों देखे जाते हैं ? अथवा जो स्वयं पंचपरमेष्ठी में शामिल है, ऐसे पांच पांडवों पर ऐसा भयंकर उपसर्ग क्यों हुआ ? उन्हें अंगार सदृश जलते हुए लोहे के कड़े क्यों पहनाये गये और पहना भी दिये तो ठंडे क्यों नहीं हुए ?

एक नहीं ऐसे अनेक पौराणिक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिन्होंने हृदय से पंचपरमेष्ठी की आराधना की, प्रतिदिन णमोकार मंत्र का जाप किया और स्वयं भी पंचपरमेष्ठी के पदों पर विराजमान रहे, फिर भी अनेक प्रतिकूल प्रसंगों का सामना करना पड़ा — ऐसा क्यों हुआ ?

भावलिंगी संत तद्भव मोक्षगामी सुकुमल मुनि को स्यालिनी ने खाया, सुकौशल मुनिराज को शेरनी ने खाया, गजकुमार मुनिराज के सिर पर जलती हुई सिगड़ी रख दी गई, राजा श्रेणिक के द्वारा मुनिराज के गले में मरा सांप डालने से मुनिराज को लाखों लाख चींटियों ने काटा, श्रीपाल को कुष्ट रोग ने घेरा, तीर्थंकर पार्श्वनाथ पर कमठ ने उपसर्ग किया और मुनिराज आदिनाथ को छह माह तक प्रतिदिन लगातार आहार की चर्या पर निकलने पर भी आहार नहीं मिला, महासती सीता को दो-दो बार बनवास के दुःख उठाने पड़े, राम भी चौदह वर्ष तक वन-वन भटकते फिरे, प्रद्युम्न कुमार को अनेक संकटों का सामना करना पड़ा,

जीवन्धर और उनके माता-पिता रानी विजया व सत्यन्धर को मरणतुल्य कष्ट झेलने पड़े, महासती मनोरमा को मजदूरी करनी पड़ी, सुदर्शन सेठ को सूली पर चढ़ना पड़ा, सैकड़ो मुनियो को घानी मे पिलना पड़ा, अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियों को बलि आदि मंत्रियो कृत उपसर्ग झेलने पड़े । आखिर ऐसा क्यो हुआ ?

जबकि ये सब पच नमस्कार मत्र के आराधक तो थे ही, इनमे अधिकाश तद्भव मोक्षगामी और भावलिंगी सत भी थे और आदिनाथ व पार्श्वनाथ तो साक्षात् तीर्थंकर भगवान की पूर्व भूमिका में स्थित थे, फिर भी उन पर उपसर्ग क्यो हुए ?

इससे स्पष्ट है कि अकेले स्मरण से ही कार्य की सिद्धि नही होती। कार्य की सिद्धि तो अनेक कारणों से ही होती है, पर जिस कारण की महिमा बतानी होती है; उसे मुख्य करके शेष कारणो को गौण किया जाता है । यही जिनवाणी मे प्रथमानुयोग के कथन की शैली है ।

× × ×

'सब पापो के नाश' का तात्पर्य यह है कि — जबतक उसका ध्यान णमोकार मत्र पर रहेगा, तबतक उसका उपयोग अन्य इंद्रिय विषयो मे या पापभावो मे जाएगा ही नही । अतः पापभावों की उत्पत्ति ही नही होगी । यह सब पापो के नाश का स्वरूप है ।

दूसरी बात यह है कि — जो व्यक्ति णमोकार मत्र के माध्यम से पचपरमेष्ठी का स्वरूप भली-भांति जानकर उनका स्मरण करता है, भक्ति करता है, बहुमान करता है, वह अवश्य ही उनके द्वारा बताये गये मुक्ति के मार्ग पर चलेगा । जब वह स्वय उनके बताए गये मुक्ति के मार्ग पर चलेगा तो वह एक न एक दिन पचपरमेष्ठी पद मे शामिल भी हो जायेगा ।

ऐसी स्थिति मे वह पूर्वकृत पापो से बधे कर्मो की निर्जरा भी करेगा। इस अपेक्षा को ध्यान मे रखकर ही णमोकार मत्र के जाप को सर्व पापो का नाश करने वाला कहा गया है ।

यहाँ कोई कह सकता है कि यदि णमोकार मंत्र का लाभ मात्र वर्तमान पापभावों एवं पापों से बचना ही है, तो वर्तमान पापों से एवं पापभावों से तो हम किसी अन्य महापुरुषों के स्मरण से भी बच सकते हैं, इसमें णमोकार मंत्र की ही क्या विशेषता रही ?

इसका समाधान यह है कि रागियों के चिंतन/स्मरण से रागभावों की महिमा ही दृष्टि में रहेगी, वीतरागता की नहीं । वीतराग की महिमा आये बिना लौकिक कामनाओं का अभाव नहीं होता, अपितु कामनाओं की पूर्ति करने की कामना ही जागृत होती है, जो स्वयं पापभाव है, पाप का कारण है ।

अतः उन्होंने कहा – "देखो एक कार्य के होने में अनेक कारण मिलते हैं, तब कहीं कार्य संपन्न होता है । तथा अपने-अपने दृष्टिकोण से सभी कारण महत्त्वपूर्ण होते हैं । जिसप्रकार लाखों रुपयों की मशीन में दो रुपये के स्क्रू का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है । उसीप्रकार प्रत्येक कार्य में सभी कारणों का अपना-अपना स्थान है; पर कथन में कभी कोई कारण मुख्य होता और कभी कोई अन्य ।

उदाहरण के तौर पर हम एक ऐसे बीमार व्यक्ति को लें, जिसे अचानक हार्ट अटेक हुआ है और डॉक्टर के कहे अनुसार यदि समय पर मेडिकल हेल्प न मिलती, चिकित्सा सहायता उपलब्ध न होती, तो वह दो घंटे में ही दम तोड़ने वाला था, परन्तु पड़ौसी ने यथासमय उसे इमरजेंसी वार्ड में पहुँचाकर और होशियार डॉक्टर को बुलाकर रात में २ बजे मेडिकल स्टोर्स खुलवाकर जान बचाने वाले के लिए अत्यन्त आवश्यक दवा की व्यवस्था कर दी, जिससे वह मरीज बच गया । इसप्रकार उस मरीज की जान बचाने में चार कारण मिले :–

एक – पड़ौसी, दूसरा – डॉक्टर, तीसरा – मेडीकल स्टोर वाला और चौथी – दवा ।

अब देखिये इस घटना के प्रत्यक्षदर्शियों में से एक व्यक्ति तो पड़ौसी के गीत गाते हुए कहता है – पड़ौसी हो तो ऐसा हो । यदि वह समय पर व्यवस्था नहीं करता तो बेचारा मर ही जाता ।

दूसरा डॉक्टर के गीत गाता हुआ। कहता है – "काश ! ऐसा होशियार डॉक्टर समय पर न मिलता तो वह बेचारा अपने जीवन से ही हाथ धो बैठता।"

तीसरा कहता है – "अरे ! यह सब तो ठीक है, परन्तु यदि वह दवाई समय पर उपलब्ध न होती तो बेचारा डॉक्टर भी क्या कर सकता था ? उस बेचारे दुकानदार की कहो, जिसने रात के दो बजे दुकान खोलकर दवा दे दी।"

चौथा कहता है – "इन बातो मे क्या धरा है ? आयुकर्म ही सर्वत्र बलवान है। यदि आयु ही समाप्त हो गई होती तो धनवतरी जैसा वैद्य भी नही बचा सकता था। ये सब तो निमित्त की बाते है। जब जीवनशक्ति ही समाप्त हो जाती है तो सारे के सारे प्रयत्न धरे रह जाते हैं। मौत के आगे किसी का वश नहीं चलता। यदि पड़ौसी, डॉक्टर, मेडिकलस्टोर वाला और दवाये ही बचाती होती तो डॉक्टर आदि ने अपने सगे माँ-बाप एवं प्रिय कुटुम्ब-परिवार को क्यो नही बचा लिया ? बचा लेते न वे उन्हें !

पाँचवें ने कहा – "अरे भाई ! चारों व्यक्तियो ने तो केवल अपने-अपने विकल्पो की ही पूर्ति की है, उन्होने तो उसके बचाने मे कुछ किया ही नही, पर आयुकर्म भी अचेतन है, जड़ है, वह भी जीव को जीवनदान देने मे समर्थ नही है। वह भी उन चार निमित्तों की तरह ही है।

वास्तविक बात यह है कि उस मरीज की उपादान की योग्यता ही ऐसी है, जिसे जहाँ जबतक जिन सयोगो मे अपनी स्वयं की योग्यता से रहना होता है, तबतक उन्हीं सयोगों के अनुरूप उसे वहाँ उसी रूप मे सब बाह्य कारण कलाप सहज ही मिलते जाते है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य मे तो कुछ करता ही नहीं, द्रव्यो का समय-समय होने वाला परिणमन भी स्वतत्र है। ऐसा ही प्रत्येक वस्तु का स्वभाव है।

आयुकर्म का उदय भी एक निमित्त कारण ही है । निमित्त होते तो अवश्य हैं, पर वे कर्ता नहीं हैं । कार्य के समय उनकी उपस्थिति होती है, अतः कभी किसी को महत्व मिल जाता है और कभी किसी को । वक्ता के द्वारा जब जिसको जैसा मुख्य गौण करना होता है, कर देता है । वास्तविक कारण तो जीव की तत्समय की योग्यता ही है ।

कहा भी है –

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायश्चतादृशाः ।
सहायास्तादृशाः सन्ति यादृशी भवितव्यता ॥

अथार्त् जीव का जिस समय जैसा जो होना होता है, तदनुसार ही बुद्धि या विचार उत्पन्न हो जाते हैं । प्रयत्न भी वैसे ही सहज होने लगते हैं, सहयोगियों में वैसा ही सहयोग करने एवं दौड़-धूप करने की भावना बन जाती है और कार्य हो जाता है; अतः कारणों के मिलाने की आकुलता मत करो ।

देखो ! कारण मिलाने को मना नहीं किया है, बल्कि उसको मिलाने आकुलता न करने को कहा है ।

जिसे वस्तु के स्वतंत्र परिणमन में श्रद्धा-विश्वास हो जाता है, उसे आकुलता नहीं होती । भूमिकानुसार जैसा राग होता है, वैसी व्यवस्थाओं का विकल्प तो आता है; पर कार्य होने पर अभिमान न हो तथा कार्य न होने पर आकुलता न हो; तभी कारण-कार्य व्यवस्था का सही ज्ञान है – ऐसा माना जायेगा ।

यहाँ कोई कह सकता है कि यदि दवायें और डॉक्टर कुछ नहीं करते तो लाखों डॉक्टर्स, करोड़ों रुपयों के मेडिकल साधन सब बेकार हैं क्या ? और क्या शासन का करोड़ों रुपयों का मेडिकल बजट व्यर्थ ही बरबाद हो रहा है, पानी में जा रहा है ?

यह किसने कहा कि सब बेकार है ? मैं तो यह कह रहा हूँ कि जब जो कार्य होना होता है, तब उसके अनुरूप सभी कारण

कलाप मिलते ही है । कहने का अर्थ यह है कि एक कार्य होने में अनेक कारण होते है, किंतु कथन किसी एक कारण की मुख्यता से किया जाता है, अन्य कारण गौण रहते है ।

मुख्य-गौण करके कथन करने की ये ही तो विभिन्न अपेक्षायें हैं। पहले व्यक्ति ने पड़ौसी को मुख्य किया, दूसरे ने डॉक्टर को, तीसरे ने दवा को और चौथे ने आयुकर्म को मुख्य कर दिया । इसी कथन शैली को तो स्याद्वाद कहते हैं ।

अरे भाई ! विज्ञान के जीवन को ही देखो न ? उसकी होनहार भली थी तो उसे एक के बाद एक अनुकूल निमित्त भी मिलते गये और उसके परिणामो मे विशुद्धि आती गई, रुचि बढ़ती गई । निमित्त तो पहले भी कम नही मिले थे । मैने ही उन्हें कितना समझाने की कोशिश की थी, पर वे कहाँ समझे थे ? अब वे कभी उस सत्साहित्य को श्रेय देते है तो कभी अपने मित्र ज्ञान को धन्यवाद देते है, कभी अपने भाग्य को सराहते है, तो कभी अपने दादाजी की प्रशसा करते है; जिन्होने अपने घर मे ऐसे सत्साहित्य का सकलन किया था । इसप्रकार कभी किसी को मुख्य करते है और कभी किसी को । जब किसी एक को मुख्य करते है तो शेष कारण अपने आप गौण हो जाते है ।

यही बात णमोकार महामत्र सबधी पौराणिक कथाओ के सबध मे भी जानना चाहिए । वहाँ स्वर्गादिक की प्राप्ति मे परिणामो की विशुद्धि आदि कारण तो अनेक है, पर परमेष्ठी की शरण मे पहुँचाने के प्रयोजन से णमोकार मत्र के सुनने-सुनाने को मुख्य किया गया है और शेष कारणो को गौण कर दिया है ।

× × ×

विज्ञान ने जाते-जाते एक प्रश्न और पूछा था । उसका कहना था कि – "पुराणों मे तथा मुनिराजो की वाणी मे शका प्रगट करने से महापाप होता है, फिर भी मै आपके एव पुराणो के कथनो मे शका प्रगट कर रहा हूँ, इससे मेरा कोई अनर्थ तो नही हो जायेगा ?"

उसके इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्यश्री ने कहा – "अरे भाई ! अनर्थ तो शंकाओं को मन में रखने से होता है । गुरु के समक्ष शंका प्रगट करने से तो शंकाओं का समाधान होता है ।"

आचार्यश्री ने विज्ञान की शंकाओं को स्वभाविक बताते हुए आगे कहा – "विज्ञान ! तुम निःसंदेह निकट भव्य हो, धर्म के क्षेत्र में परीक्षा प्रधानी होना धर्म के प्रति अश्रद्धा नहीं है । परीक्षा करके जो बात स्वीकार की जाती है, वही श्रद्धा अटूट एवं अचल होती है ।

स्वाध्याय में शंकायें उत्पन्न होना तो स्वाध्याय का शुभलक्षण है । शकाएँ या तो सर्वज्ञ को नहीं होती या उन अल्पज्ञों को जो केवल स्वाध्याय का नियम निभाने में ही धर्म समझ बैठे हैं । जिसे जरा भी जिज्ञास होती है, उसे तो शंकायें उत्पन्न होती ही हैं ।

शंकायें उत्पन्न होना कोई बड़ी समस्या नहीं है; क्योंकि ज्ञान स्वयं सर्व समाधानकारक है और फिर आवश्यकता ही अविष्कार की जननी है । जिसतरह पानी स्वयं अपना रास्ता बना लेता है, खोज लेता है; ठीक उसी तरह जिज्ञासु भी अपनी शंकाओं के अधिकांश समाधान तो ही खोज लेते हैं । फिर भी नियमित स्वाध्याय और समय-समय पर सत्संग और तत्त्वचर्चा भी उपयोगी है । जिसप्रकार दही मथने से मक्खन निकलता है, उसीतरह तत्त्व का मंथन करने से सुख-शांति और समताभाव प्रगट होता है, धर्म प्रगट होता है; अतः निर्भय व निःशंक होकर शंका-समाधान करना चाहिए ।

सभी जीव जिनवाणी के रहस्य को समझें और सच्चा सुख प्राप्त करें – इस मंगलभावना के साथ आज के वक्तव्य से यहीं विराम लेता हूँ ।"

इस प्रकार कहते-कहते मुनिश्री ने अपने वक्तव्य को विराम दिया और सभी जिज्ञासु उन्हें सविनय नमस्कार कर अपने-अपने घर को चले गये । महाराजश्री भी अपने स्वाध्याय में निमग्न हो गये । •

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि – "बालक का [illegible] एक ऐसा कोरा कागज है, जिस पर जो भी सही या गलत प्रारम्भ में लिख दिया जाता है, वह अपनी ऐसी अमिट छाप छोड़ता है कि [illegible] न तो आसानी से मिटाया जा सकता है, न बदला जा सकता है। बालक को जो प्रारम्भिक जीवन में सिखा दिया जाता है, उसका सरल हृदय उसे ही सच मान लेता है।"

सम्भवतः इसी तथ्य को ध्यान में रखकर हमारे पूर्वजों ने बालकों की शिक्षा का प्रारम्भ 'ओम् नमः सिद्ध' से करने का निर्णय लिया होगा। सिद्ध परमात्मा को स्मरण करके बालकों को आध्यात्मिक शिक्षा दिलाते होंगे। पैंतालीस दिन के बालक को मन्दिर में ले जाकर [illegible] सुनाने की परम्परा तो आज भी प्रचलित है।

प्रो. ज्ञान के दादाजी इस बात [illegible] से सुपरिचित थे। अतः उन्होंने अपने पोते ज्ञान को अन्य लौकिक [illegible] के पूर्व तत्त्वज्ञान ही सिखाया था। इस कारण [illegible] जमीन-आसमान का अन्तर [illegible]। [illegible] भिन्न-भिन्न उत्तर होते थे। [illegible] था, उसके सोच में [illegible] दृष्टि से सोचता था।

× × ×

[illegible]

लाभ तथा संस्कारहीन बालकों की दुर्दशा को जाने और तत्त्वज्ञान के महत्व को पहचाने । एतदर्थ उन्होंने ज्ञान और विज्ञान के संस्कारों के अन्तर को स्पष्ट करने के उद्देश्य से उनसे कुछ प्रश्नोत्तर करने का विचार किया ।

एक दिन जब आचार्यश्री ने ज्ञान व विज्ञान को प्रवचन मंडप के सामने बैठा देखा तो उनके माध्यम से सम्पूर्ण धर्मसभा को तत्त्वज्ञान और संस्कारों की उपयोगिता समझाने के उद्देश्य से विज्ञान की ओर हाथ का इशारा करते हुए पूछा – "बताओ तुम कौन हो और तुम्हारा क्या नाम है ? तुम कहाँ रहते हो और तुम्हारा क्या काम है ?"

विज्ञान ने अपने भौतिक चिंतन के अनुसार उत्तर दिया – "मैं जैन हूँ, विज्ञान मेरा नाम है, दिल्ली रहता हूँ और पढ़ना-लिखना तथा वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा नये-नये आविष्कार करना मेरा काम है ।"

आचार्यश्री ने यही प्रश्न पुनः ज्ञान की ओर हाथ का इशारा करते हुए पूछा – "तुम बताओ भाई ! तुम कौन हो और तुम्हारा क्या नाम है ? तुम कहाँ रहते हो और तुम्हारा क्या काम है ?

ज्ञान ने अपने तात्विक चिंतन के आधार पर उत्तर दिया – "वस्तुतः मैं जीवतत्त्व हूँ और शुद्धात्म मेरा नाम है तथा मैं अपने स्वरूप चतुष्टय में रहता हूँ और मात्र जानना मेरा काम है ।"

आचार्यश्री ने ज्ञान से ही पुनः प्रश्न किया – "तुमने अपना यह वस्तुगत अलौकिक परिचय क्यों दिया ? व्यक्तिगत लौकिक परिचय क्यों नहीं दिया ? क्या ऐसा परिचय देने से लोग तुम पर हंसेंगे नहीं ?"

ज्ञान ने गंभीर होकर विनम्रता से उत्तर दिया – "महाराज ! मुझमें आपकी कृपा से इतना विवेक हो गया है कि कहाँ/किसको/क्या उत्तर देना चाहिए, इस कारण में हंसी का पात्र नहीं बन सकता ।

चूंकि यह प्रश्न एक धर्म गुरु ने प्रवचन के बीच पूछा है । अतः मैंने सोचा – 'आपको मुझसे इसी प्रकार के उत्तर की अपेक्षा थी ।'

यदि यही प्रश्न मुझसे कॉलेज के प्रोफेसर ने किया होता या इन्कमटैक्स ऑफीसर ने किया होता, तो उसे मै अपना व्यक्तिगत लौकिक परिचय देता। उनसे कहता — 'ज्ञान मेरा नाम है, दिल्ली में मेरा धाम है, मैं प्रोफेसर हूँ और पढ़ाना-लिखाना मेरा काम है ।'

पर यह परिचय तो केवल लोक मे कामचलाऊ परिचय है, कदम-कदम पर झूठा पड़ने वाला परिचय है; क्योंकि लोकव्यवहार मे केवल एक नाम से काम नहीं चलता, यहाँ तो क्षण-क्षण मे और कदम-कदम पर नाम, काम, धाम और व्यक्तित्व बदलते रहते है ।

देखिये न ! मै कौन हूँ । इस प्रश्न के कितने उत्तर हो सकते हैं । मै भारतीय हूँ, हिन्दी भाषी हूँ, मै मनुष्य हूँ, मै जैन हूँ, मै प्रोफेसर हूँ, मै विद्यार्थी हूँ, मै आत्मार्थी हूँ, मै बाप भी हूँ, बेटा भी हूँ; शिष्य भी हूँ, गुरु भी हूँ, भाई भी हूँ, भतीजा भी हूँ, भानजा भी हूँ, मामा भी हूँ आदि-आदि। जितने रिश्ते हैं, लोक व्यवहार मे मै वह सब हूँ ।

हॉस्पिटल में मै मरीज हूँ, बस मे रेलगाड़ी मे यात्री हूँ, दूकान पर ग्राहक हूँ, सभा मे श्रोता हूँ । क्या-क्या गिनाऊँ । लोक मे हर कदम पर और हर पल मेरा एक नया नाम रख दिया जाता है । जो हर पल बदले, वह मै कैसे हो सकता हूँ । मै तो कभी न बदलने वाला ध्रुव आत्मतत्त्व हूँ ।

जबतक पर सापेक्ष परिचय दिया जायेगा, तबतक तो यही स्थिति रहेगी। यद्यपि लोक में काम चलाने की अपेक्षा यह परिचय भी ठीक है, पर यह परिचय वास्तविक — वस्तुगत परिचय नहीं है । यह सब तो संयोगी कथन है ।

और आपको मेरे इस परिचय से क्या प्रयोजन हो सकता है ? अतः मैने आपको अपना वस्तुगत अलौकिक परिचय दिया है ।

यही स्थिति मेरे नाम, काम और धाम की है, माता-पिता को मैं 'ज्ञानू' हूँ और मित्रों को 'ज्ञान' । समाज के लिए 'ज्ञानप्रकाशजी हूँ' और कॉलेज में 'प्रोफेसर ज्ञान जैन" ।

इसीतरह मैं क्या बताऊँ कि मैं कहाँ रहता हूँ ? लोक में मेरा कोई एक ठिकाना तो है नहीं, कभी कहीं तो कभी कहीं । इसीतरह कोई एक निश्चित काम भी नहीं है, कभी कुछ करता हूँ, तो कभी कुछ । कभी पढ़ता हूँ तो कभी पढ़ाता हूँ ।"

ज्ञान के अटपटे किन्तु युक्तिसंगत उत्तर सुनकर श्रोताओं को एक विचित्र-सी अनुभूति हुई थी । आचार्यश्री भी मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे, क्योंकि वे जो स्पष्टीकरण करना चाहते थे, वह ज्ञान के उत्तरों से बहुत कुछ स्पष्ट तो हो ही चुका था । अतः उसी पर अपनी छाप लगाते हुए आचार्यश्री ने कहा – "देखो विज्ञान ! तुम भी वस्तुतः जैन नहीं, जीव हो; जैन तो इसलिए कहलाते हो कि तुमने जैन कुल में जन्म लिया है, यदि तुमने क्षत्रिय कुल में जन्म लिया होता तो तुम्हें जैन कौन कहता ? फिर तो तुम क्षत्रिय कहलाते न ? तुम भी अपने को क्षत्रिय मानने में ही अपना गौरव समझते । तुम्हें स्वयं भी जैनपना स्वीकृत नहीं होता ।

इसीतरह तुम्हारा नाम भी वस्तुतः विज्ञान नहीं है, तुम्हारा वास्तविक नाम तो शुद्धात्म है, ज्ञायक है । विज्ञान तो तुम्हारे माता-पिता का रखा हुआ नाम है । काश चुन्नू, मुन्नू, कल्लू, मल्लू, पप्पू, सप्पू या बबलू, डबलू आदि नामों में से कोई एक नाम रख देते तो क्या तुम उसी नाम से नहीं पुकारे जाते ?

इसीप्रकार तुम वस्तुतः जयपुर में नहीं अपने स्वरूप में रहते हो और केवल जानने-देखने का काम करते हो, पठन-पाठन, धंधा-व्यापार और साइंस के प्रयोग करना तुम्हारा यथार्थ काम नहीं है ।

यदि तुम वस्तुतः विज्ञान ही हो तो बताओ जब तुम्हारे माता-पिता ने यह नाम नहीं रखा था, तब भी तुम थे या नहीं ? और अगले जन्म में जब यह नाम नहीं रहेगा तब भी तुम रहोगे या नहीं ? यदि रहोगे तो तुम वस्तुतः विज्ञान कैसे हो सकते हो ? तुम तो भगवान आत्मा हो, जो सदा सभी अवस्थाओं में रहता है तथा तुम्हारे ये काम-धाम

जातियाँ व उपजातियाँ भी तो बदलती रहती है । अतः इन जातियों से भी आत्मा की पहचान नहीं होती ।"

आचार्यश्री समझा रहे थे और सभी श्रोता मन्त्रमुग्ध होकर सुन रहे थे; क्योंकि उन्हें कभी ऐसी बाते सुनने को मिली ही नहीं थीं ।

आचार्यश्री बोले – "हाँ तो मैं यह कह रहा था कि जो बातें बालक प्रारम्भ में सीख लेता है, उसे ही सब मान लेता है, तभी तो विज्ञान को केवल क्षणिक वर्तमान पर्याय का सत्य जो क्षण-क्षण में असत्य में बदलता रहता है, वह तो सत्य-सा लग रहा था और जो कभी न बदलने वाला ध्रुव स्वभावी त्रैकालिक सत्य है, वह सत्य नहीं लगता था ।

यही तो वर्तमान शिक्षा का दोष है । अतः बालको को लौकिक भौतिक विज्ञान की शिक्षा दिलाने के पूर्व या साथ-साथ तत्त्वज्ञान की शिक्षा एव सदाचार के सस्कार भी देना चाहिए । हम लौकिक शिक्षा पढ़ाने को मना नही करते, पर वह तो केवल जन्म की ही समस्या का समाधान देगी, वह भी भाग्योदय के साथ; पर तत्त्वज्ञान की शिक्षा तो जन्म-जन्मान्तर के दुःखो को दूर करने वाली शिक्षा है, अतः उस शिक्षा व सस्कारो की उपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिए ।

इसी तथ्य को ध्यान मे रखकर प्राचीनकाल मे शिक्षा के सबध मे यह रीति-नीति निर्धारित की गई होगी कि बालको को सर्वप्रथम धार्मिक और आध्यात्मिक विद्या पढ़ाई जावे, तदन्तर ही उसे अर्थकरी साहित्य, सगीत कला और विज्ञान तथा शस्त्रादि विद्याये सिखाई-पढ़ाई जावे, इसी वजह से पहले "ओम् नमः सिद्ध" से ही पढाई का प्रारम्भ होता था, जो बाद मे बिगड़ते-बिगड़ते "ओ ना मा सी धम" हो गया । इसप्रकार शिक्षा के क्षेत्र मे अध्यात्म विद्या नगण्य हो गई और उसका स्थान इंग्लिश सस्कृति ने ले लिया है । इस कारण लोग "ओम नम सिद्धम" का सही अर्थ ही भूलते जा रहे हैं ।

भारतीय संस्कृति से घृणा करने वालों ने तो इसका मजाक बनाते हुए यहाँ तक कहना प्रारंभ कर दिया था कि – "ओ ना मा सी धम, बाप पढ़े ना हम" अर्थात् 'ओम् नमः सिद्धं' जैसी भारतीय अध्यात्म विद्या न हमारे बाप-दादों ने पढ़ी थी और न हमें पढ़ना है ।

आज का युग आर्थिक और वैज्ञानिक युग है, अतः प्रत्येक व्यक्ति अपनी संतान को अर्थकरी तकनीकी शिक्षा ही दिलाना चाहता है, यहाँ तक तो कोई बात नहीं है, उचित भी है; पर दुःख की बात तो यह है कि उसके लिए हमें ईसाई संस्कृति की गोद में जाना पड़ रहा है, जहाँ ईसाई धर्म के संस्कार तो दिये ही जाते हैं, साथ में अंडा, मांस मछली आदि मांसाहार को भी प्रोत्साहन दिया जाता है एवं उसे श्रेष्ठ आहार बताया जाता है । इस कारण विद्यार्थी धीरे-धीरे भारतीय एवं जैन संस्कृति से दूर होता जा रहा है ।

ऐसी स्थिति में आज यह अति आवश्यक हो गया है कि हम अपने बालक-बालिकाओं को उस वातावरण में भेजने के पहले बाल मनोविज्ञान के सिद्धान्त को ध्यान में रखकर सर्वप्रथम अहिंसा का पाठ पढ़ाएँ, भगवान महावीर के मूलभूत सिद्धान्तों से अवगत कराएँ तथा लौकिक शिक्षा के साथ-साथ तात्विक ज्ञान व सदाचार के संस्कार भी देते रहें।

अरे भाई ! जरा सोचो तो सही, हम मात्र वर्तमान मानव जीवन के सत्तर-पिचत्तर वर्ष सुखपूर्वक जीने के लिए जीवन का एक तिहाई भाग लगभग पच्चीस वर्ष की किशोर अवस्था तो हम विशुद्ध अर्थकरी लौकिक शिक्षा के अर्जन में ही बिता देते हैं, जिसमें केवल गुलाम बनने की गारंटी मिलती है तथा शेष जीवन का सारभूत संपूर्ण यौवन धनोपार्जन और कुटुम्ब परिवार के भरण-पोषण में बिता देते हैं, जो केवल भाग्याधीन है । यदि भाग्योदय न हो तो पूरी पढ़ाई का सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है । वह अर्थकरी विद्या भी कुछ काम नहीं आती । इसके प्रमाण में यह लोक प्रसिद्ध कहावत कहीं भी सुनी जा सकती है कि – 'पढ़ी पारसी बेचे तेल, यह देखो कर्मों का खेल' ।

साठ वर्ष के बाद बुढ़ापे का जीवन भी कोई जीवन है । उसे तो ज्ञानियो ने अर्द्धमृतक की सज्ञा देकर पहले ही अधमरा घोषित कर दिया है ।

ऐसी स्थिति मे विचारणीय यह है कि जब अपने और अपने कुटुम्ब परिवार के लौकिक जीवन को सुखी-दुःखी बनाना हमारे हाथ में है ही नहीं, जब पूर्वोपार्जित पुण्य-पाप के अनुसार ही अनुकूल/प्रतिकूल सयोग मिलता है, तो उसके लिए इतना श्रम, शक्ति व समय का अपव्यय क्यो? और जिस आगामी अनन्तकाल के भविष्य को उज्ज्वल बनाना हमारे हाथ मे है, हमारे पुरुषार्थ के आधीन है – स्वाधीन है, उस दिशा मे सोचने-समझने तक का समय नही, यह कैसी विडम्बना है ? अतः हमें सर्वप्रथम अपने बालको मे तत्त्वज्ञान के ही सस्कार देना चाहिए ।

यदि नगर मे या मोहल्ले मे वीतराग-विज्ञान पाठशाला न हो तो माता-पिता स्वयं ही बालक के प्रथम गुरु हैं, अतः माता-पिता आत्मा व परमात्मा के स्वरूप को जाने-पहचाने और बालको मे भी यही सस्कार डाले।

माँ से प्राप्त संस्कारो का ही सुफल था कि आचार्य कुदकुद ग्यारह वर्ष की छोटी-सी उम्र मे नग्न दिगम्बर साधु बन गये थे और समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, अष्टपाहुड व पचास्तिकाय जैसे महान पचपरमागम के रूप मे आध्यात्म शास्त्र हमे दे गए है ।

धन्य हैं वे माता-पिता और धन्य है वे कुदकुद से बालक, जिन्होने पालना मे ही अपने पूर्वजो से तत्त्वज्ञान के सस्कार प्राप्त कर लिए थे। सभी को ऐसा सुअवसर प्राप्त हो – इसी भावना के साथ आज का प्रवचन यहीं समाप्त करते हैं ।" – ऐसा कहकर आचार्यश्री ने अपना प्रेरणास्पद प्रवचन समाप्त कर दिया ।

जिनवाणी स्तुति के बाद सभी श्रोता प्रसन्न मुद्रा मे आज के व्याख्यान की सराहना करते हुए अपने-अपने घर चले गये । विज्ञान को भी अपने अज्ञान का अहसास हो गया । अत वह तत्त्वज्ञान प्राप्त करने में और अधिक सक्रिय हो गया ।

•

२२

"कहने को तो मेडीकल साइन्स ने भी कम उन्नति नहीं की है, उसने भी अपने क्षेत्र में आसमान की ऊँचाईयों को छू लिया है ।

देखो न ! हृदय, किडनी, लीवर और फेफड़ों जैसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंगों का भी सफल प्रत्यारोपण कर डाला है ।

पर, यह जानकर आम आदमियों को खुश होने की जरूरत नहीं है; क्योंकि ये साधन सबको सहज सुलभ नहीं हो सकते । एक-एक अंग के प्रत्यारोपण में लाखों रुपये लगते हैं । कहाँ से लायेगा हर कोई व्यक्ति इतने सारे रुपये ?

मानलो, पुण्य के योग से रुपयों का साधन बन भी जाये और अंग-अंग बदलने की भी व्यवस्था हो जाये तो भी इन अंगों का बदलना इतना आसान नहीं है, जितना कहने-सुनने में आसान लग रहा है ।

यह कोई बच्चों का खेल तो है नहीं । उसमें भी तो रिस्क है । जीवन को दाव पर लगाना पड़ता है, क्योंकि अंगों के बदलने में जीवन का खतरा अंत तक बना ही रहता है ।

ऑपरेशन सफल होजाने के बाद भी वह कृत्रिम अंग कितना/कब तक काम करेगा ? करेगा भी या नहीं ? ये सारी चिन्ताओं के बादल तो छाये ही रहते हैं न ? उससे जो मानसिक क्लेश और शारीरिक कष्ट होता है, उसे कोई कैसे कम कर सकेगा ?

अरे ! जो किस्मत में होगा, उसे कौन बदल सकेगा ? होनी को कौन टाल सकता है ? मौत पर किसा वश चला है ? उसके सामने तो सबको हथियार डालने ही पड़ते हैं, एक न एक दिन हार माननी ही पड़ती है ।"

इसी उधेड़बुन मे उलझे अन्नू और अज्जू को अस्पताल मे पड़े-पड़े महीनो हो गये थे, उपचार बराबर चल रहा था; पर अभी तक आराम होने से कोई आसार नजर नहीं आ रहे थे । वे जीवन और मौत से संघर्ष कर रहे थे । उनके अन्तर्मन का क्लेश और देह का दर्द तो वो ही जाने, पर उनकी दुःख भरी आहें और समय-समय पर निकली चीखे, आँखो से बहते आँसू और पल-पल मे बदलती करवटें बता रहीं थीं कि उन्हें असह्य वेदना है । उनके एक-एक हाव-भाव से उनके कष्ट का आभास हो रहा था । उनके अत्यन्त उदास और हताश चेहरे पर उनकी जीवन के प्रति हुई निराशा स्पष्ट झलक रही थी ।

× × ×

एक तो विज्ञान और उनकी पत्नी विद्या को अन्नू और अज्जू के भोलेपन और निर्धनता के कारण उन पर पहले से ही सहानुभूति थी; दूसरे, सजू और राजू के चक्कर मे आ जाने से उनकी जो दुर्दशा हो रही थी, उससे वे दोनो उनकी करुणा के पात्र भी बन गये थे ।

अतएव विज्ञान और विद्या उनका हर तरह से सहयोग कर उन्हे सन्मार्ग पर लाना चाहते थे और दुर्व्यसनो से दूर कर उन्हे बीमारी के कष्टो से भी छुड़ाना चाहते थे ।

इस कारण विज्ञान ने पूर्व मे दिए गये आश्वासन के अनुसार उन दोनो के उपचार कराने के लिए और परिवार के भरण-पोषण के लिए आर्थिक सहयोग तो दे ही रखा था, उनके सेवा-सुश्रुषा मे भी अपना तन, मन, धन और जीवन अर्पण कर रखा था ।

विज्ञान की इस निःस्वार्थ सेवा और समर्पण की भावना देखकर अस्पताल के अन्य डॉक्टर भी अन्नू और अज्जू का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे । क्षयरोग विशेषज्ञ डॉ. धर्मचन्द और उदररोग विशेषज्ञ डॉ कनकलता जैसे निःस्वार्थ समाजसेवी डॉक्टरो की अमूल्य सेवा भी उन्हे विज्ञान के प्रयास से उपलब्ध हो गई थी । इस कारण उनके इलाज मे किसी प्रकार से कोई कमी नहीं रही थी ।

पर अपने-अपने पुण्य-पाप का फल तो जीव को स्वयं ही भोगना पड़ता है । उसमें कोई किसी का हाथ नहीं बटा सकता ।

स्थिति यह बनी कि 'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की ।' अतः डॉक्टर धर्मचन्द ने विज्ञान को निजी परामर्श देते हुए कहा कि – "यद्यपि एक डॉक्टर के नाते हम लोग इनके इलाज में अन्तिम दम तक कोई कसर नहीं रखेंगे, परन्तु अब इनके लक्षणों से ऐसा नहीं लगता कि ये बहुत लम्बा जीवन जी सकेंगे । अतः मेरी निजी राय तो यही है कि अब इन्हें घर ले जाया जाये और वहाँ पर उनका इलाज चलने के साथ-साथ इन्हें अधिक से अधिक समय तक धर्म की बातें सुनाई-समझाई जावें, वैराग्यप्रेरक प्रसंग सुनाये जावें, पौराणिक कथाएँ सुनाई जावें । इन सबसे ही इन्हें शान्ति मिलेगी । यहाँ ये सब संभव नहीं हो सकेगा। इनके उपचार की व्यवस्था हम दोनों इनके घर पर ही कर लेंगे और समय-समय पर हम स्वयं भी देख-भाल करते रहेंगे ।

× × ×

अन्नू और अज्जू भी अब तक अस्पताल के वातावरण से ऊब चुके थे, घबरा चुके थे । उनका स्वयं का दर्द तो एक ओर रहा, उनसे वहाँ रहने वाले दूसरे रोगियों का दर्द भी देखा नहीं जाता था । आये दिन हो रही मौतें, मरीजों का चीखना-चिल्लाना, उनके चित्त को आकुल-व्याकुल कर देता था । पर बेचारे मरीज भी क्या करें ? उनसे दर्द सहा नहीं जाता तो न चाहते हुए भी चीखें निकल ही पड़ती थीं।

किसी को सिर का शूल तो किसी को कानों का कष्ट, किसी को दमा से बैचेनी तो किसी को पेट की भयंकर पीड़ा, किसी को दिन-रात खांसी से चैन नहीं तो कोई हृदय की घबड़ाहट से बैचेन । जहाँ देखो वहीं दर्द ही दर्द । यदि कोई बेदर्द थे तो केवल डॉक्टर, नर्से और कम्पाउडर; जिन्हें न किसी के दर्द की परवाह और न किसी के चिल्लाने की चिन्ता । वे भी बेचारे क्या करें ? कराहें सुनते-सुनते उनके भी

कान बहरे हो गये थे । बड़ी से बड़ी चीख अब उन्हें प्रभावित नहीं करती थी ।

वे दर्द दवाने की भी आखिर कितनी दवाएँ दे ? दवाओं की भी तो अपनी सीमाएँ होती हैं ? अतः दवाओं से तो केवल असहनीय दर्द को ही दवाया जा सकता है । थोड़ा-बहुत दर्द तो मरीज को सहना ही पड़ता है ।

उन्होंने जो यह मान रखा था कि 'मरीजों की तो आदत ही चीखने-चिल्लाने की होती है' । कुछ अंश तक तो उनके इस सोच को सच कहा भी जा सकता है; पर इससे बेचारे वे मरीज तो बे-मौत मारे ही जाते है, जिनको वस्तुतः असह्य दर्द होता है । परन्तु यह पहचान भी कोई कैसे करे कि किसको कितना कष्ट है ? कष्ट मापने का थर्मामीटर तो किसी के पास है नहीं ।

बस, इन्हीं सब बातो से घबड़ाकर अज्जू ने अन्नू से परामर्श करके यह निश्चय किया कि अस्पताल से छुट्टी पाने के लिए विज्ञान से निवेदन किया जाय । वे इस संबंध मे भी हमारी सहायता कर सकते है ।

एक दिन डरते-डरते अज्जू ने विज्ञान से बड़े ही विनम्र शब्दो मे कहा – "हम आपका जितना भी उपकार माने थोड़ा है । आप हम जैसे तुच्छ लोगो के साथ भी कितना कष्ट उठा रहे है और कितना रुपया हम लोगो पर खर्च कर रहे है । हम अनेक जन्मो मे भी आपके इस ऋण से उऋण नही हो पायेंगे । यदि हम प्रथम परिचय मे ही आपकी सलाह मान लेते और संजू की बातो मे नही आते तो हमे ये दुर्दिन देखने ही नहीं पड़ते । 'पर होनहार बलवान होती है।' उसी के अनुसार सब कारण कलाप मिलते है । इसी कारण आपकी बात उस समय हमारी समझ मे नही आयी ।

जाति से जैन होकर भी हमने कोई भी काम जैनधर्म के अनुकूल नहीं किया । हम कितने पापी है; पर हम करते भी क्या ? दुर्भाग्य से हमे जन्म से ऐसा वातावरण ही नही मिला, जिससे हमे धर्म-कर्म

से परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य मिलता, हम तो ऐसे वातावरण में रहे कि जहाँ हमें केवल भौतिक वातावरण ही मिला । अब आपकी सद्प्रेरणा से हमें कुछ धर्म को सुनने, समझने एवं तदनुसार उसे आचरण में लाने की रुचि हुई है ।

अतः हम धर्म के विषय में कुछ विशेष जानना चाहते हैं । और जितना हम से बनेगा, हम आचरण भी करना चाहते हैं । अतः हमें आप यहाँ से घर ले चलो । अब हमारा यहाँ जी नहीं लगता और यहाँ रहने की अब जरूरत भी नहीं है; क्योंकि केवल तीनों समय दवा की गोलियाँ ही तो चलती हैं, यहाँ का कोई ऐसा इलाज नहीं हैं, जो घर न हो सकता हो । आपको भी बार-बार आने-जाने की परेशानी होती है । घर पर आप लोगों से धर्म की दो बातें सीख लेंगे तो जन्म-जन्मान्तर में काम आयेंगी ।

× × ×

विज्ञान अज्जू और अन्नू के विचारों को सुनकर मन ही मन प्रसन्न हुआ; क्योंकि डॉक्टर धर्मचन्द की भी यही सलाह थी और विज्ञान स्वयं भी यही चाहता था । फिर भी विज्ञान ने उनके मन में हुए परिवर्तन की प्रतिक्रिया जानने के लिए कहा – "तुम्हें शेष रही-सही बुरी आदतों को भी जीवन भर के लिए छोड़ना होगा । तभी इस विषय पर विचार हो सकता है ।"

दोनों ने उत्साह से कहा "हम आपकी सब बातें मानेंगे और जैसा कहेंगे, वैसा ही करेंगे ।"

उस दिन से उन्होंने जो यदा-कदा चोरी छिपे शराब, सिगरेट पीते थे, उसको भी सदा के लिए तिलांजलि दे दी ।

परन्तु जब खेतों में खड़ी फसलें पानी की प्रतीक्षा करते-करते सूख चुकी हों तो बाद में मूसलाधार बरसात की भी क्या कीमत ? उससे उस फसल को क्या लाभ ? यही स्थिति अन्नू और अज्जू की हो चुकी थी ! काश ! वे कुछ पहिले चेत जाते । पर चेत कैसे जाते, मौत का बुलावा जो आ गया था ।

अज्जू के फेफड़े सिगरेट के धुएँ से अत्यन्त क्षीण हो चुके थे और अब कोई भी दवा काम नहीं कर रही थी । यही स्थिति अन्नू के लीवर की थी। यद्यपि अब कोई भी दवा काम नही कर सकती थी, पर 'जब तक श्वासा तब तक आशा' के अनुसार उपचार तो चल ही रहा था।

यद्यपि अज्जू और अन्नू अपनी-अपनी करनी पर पछता रहे थे । पर 'फिर पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत' वाली कहावत उनके मानस पटल पर बार-बार आ-जा रही थी । उनकी अन्तरात्मा से ऐसी आवाज आ रही थी कि लोगों से चिल्ला-चिल्ला कर कहें कि – 'हम जैसी भूल भविष्य मे कोई न करे ।'

एक बार तो उन्होने अपनी हार्दिक इच्छा जाहिर करते हुए यह कहा था कि आप हमारा उदाहरण प्रस्तुत करते हुए दुनिया को शराब और सिगरेट के दुष्परिणामो की घोषणा करते हुए ढिंढोरा पिटवा दे, ताकि भविष्य मे कोई सिगरेट व शराब पीना तो दूर, उन्हे छूना भी पाप समझे ।

× × ×

अन्नू और अज्जू को जब अस्पताल से छुट्टी मिली तो उन्हे बडी राहत-सी महसूस हुई । अब तो उनकी दिनचर्या ही बदल चुकी थी। उनके आचरण से ऐसा लगता ही नही था कि ये लोग कभी दुर्व्यसनो के शिकार भी थे ।

सुनीता और सरला भी अब विज्ञान और विद्या के सम्पर्क मे आने से अपने को पूर्ण सुरक्षित और सुखी अनुभव कर रही थी । अब वे बराबर मंदिर आते, दर्शन-पूजन करते, प्रवचन मे भी अपनी शक्ति के अनुसार बैठ जाते और प्रवचन मे आये तत्त्वज्ञान की बातो को अपने मे बिठाने का प्रयत्न करते ।

उनके देह का उपचार तो यथाशक्य चल ही रहा था, साथ ही अपने साधर्मी भाइयो के साथ बैठकर विज्ञान ने उन चारो ही प्राणियो को अधिकतम धर्मलाभ पहुँचाने की भी एक व्यवस्थित योजना बना ली

विज्ञान ने उन्हें समझाया — "क्या जीवन भर पश्चाताप ही करते रहोगे ? यदि गल्तियो पर पछताते ही रहोगे तो आत्मा का अनुभव कब करोगे ? पछतावे का महत्व उस सीमा तक ही होता है, जब-तक हम उन दोषो की दल-दल से बाहर न निकल जाये, अब तो तुम बहुत आगे बढ़ गये हो ।

अतः अब तुम भूत को भूल जाओ, भविष्य की भी चिन्ता छोड़ दो, अब तो तुम केवल वर्तमान को संभालो, भविष्य तो अपने आप सभल जायेगा । अपने आत्मा को जानो, उसे ही अच्छी तरह पहचानो; उसी में जम जाओ, उसी में समा जाओ, तुम्हे सब पापों से छुटकारा मिल जायेगा और तुम सदा के लिए सुखी हो जाओगे।"

× × ×

विज्ञान के इस धर्मवात्सल्य और निःस्वार्थ सेवा से वे चारों ही प्राणी बहुत ही गद्‌गद् थे और पश्चाताप के आँसुओ से अपने पूर्वकृत पापों को धो-धोकर पवित्र हो रहे थे । अब अधिकाश समय उनका आत्म-चिन्तन और पचपरमेष्ठी के स्मरण में ही बीतने लगा था । अतः अब उन्हें न जीवन का अनुराग था और न मरण का भय । वे दोनों अपने साथ अपनी पत्नियो को भी सन्मार्ग मे लगा देखकर भारी प्रसन्न थे ।

समाधिमरण की भावना मन में संजोये जीवन-मरण से सघर्ष कर मृत्युजयी बनकर अत्यन्त साम्य भाव से आठ दिन के अन्तराल ही से अनू और अज्जू दोनों अपनी पत्नियों को अकेला छोड़कर दिवंगत हो गये ।

× × ×

वहाँ उपस्थित जन-समूह में से एक वृद्ध ने कहा — "अन्त भला सो सब भला । विज्ञान, विद्या और डॉक्टर दम्पति के प्रयासो से उनका अन्तिम जीवन भी सुधर गया, मरण बहुत अच्छा हो गया और मे भी कोई कसर नहीं रही; पर जो मूल जीवन मे हो गई भी

तो हो गई थी । उसका दुष्परिणाम भी उन्हें भोगना ही पड़ा, वरना अभी उनकी उम्र ही क्या थी, यदि सिगरेट और शराब की आदत न पड़ी होती तो वे असमय में बेमौत नहीं मरते । भगवान ! ऐसी भूल कभी कोई न करे ।"

ऐसा कहते-कहते वह वृद्ध पुरुष अचेत हो जमीन पर गिर पड़ा। वह उसके वियोग को बर्दाश्त नहीं कर पाया; क्योंकि वह और कोई नहीं अज्जू का दादा ही था, जिसने उसे बड़े ही लाड़-प्यार से पाला-पोसा और पढ़ाया-लिखाया था और उसके सहारे ही वह अपने पुत्र-वियोग से हुए गहरे घाव को भर रहा था, जो पोते के वियोग से पुनः हरा-भरा हो गया और वही घाव उसकी मृत्यु का कारण बन गया । •

मैं कौन हूँ

"मैं" शरीर, मन, वाणी और मोह-राग-द्वेष, यहाँ तक कि क्षणस्थायी परलक्षी बुद्धि से भिन्न एक त्रैकालिक, शुद्ध, अनादि-अनन्त, चैतन्य, ज्ञानानन्द स्वभावी ध्रुवतत्त्व हूँ, जिसे आत्मा कहते हैं ।

जैसे मैं बंगाली हूँ, मैं मद्रासी हूँ और मैं पंजाबी हूँ', इस प्रान्तीयता के घटाटोप में आदमी यह भूल जाता है कि 'मैं भारतीय हूँ' और प्रान्तीयता की सघन अनुभूति से भारतीय राष्ट्रीयता खण्डित होने लगती है; उसी प्रकार 'मैं मनुष्य हूँ, देव हूँ, पुरुष हूँ, स्त्री हूँ, बालक हूँ, जवान हूँ' आदि में आत्मबुद्धि के बादलों के बीच आत्मा तिरोहित-सा हो जाता है । तथा जैसे आज के राष्ट्रीय नेताओं की पुकार है कि देशप्रेमी बन्धुओं ! आप लोग मद्रासी और बंगाली होने के पहिले भारतीय हैं, यह क्यों भूल जाते हैं ? उसी प्रकार मेरा कहना है कि 'मैं सेठ हूँ, मैं पण्डित हूँ, मैं बालक हूँ, मैं वृद्ध हूँ' के कोलाहल में 'मैं आत्मा हूँ' को हम क्यों भूल जाते हैं ?

— मैं कौन हूँ ? पृष्ठ 13-14

सजू के हृदय मे पिता के प्रति विद्रोही भावना पनपने के दो प्रमुख कारण थे । एक तो उसके पिता द्वारा उसको योग्य बनाने के लिए आवश्यकता से अधिक सावधानी और कठोर अनुशासन तथा दूसरा प्रबल कारण था उनका स्वयं का अत्यधिक महत्त्वाकाक्षी होना ।

जहाँ एक ओर वे सजू के बिगड़ने के भय से उसे जेब खर्च भी बहुत ही कस-कस कर देते, वहीं दूसरी ओर अपनी महत्त्वाकाक्षाओं की पूर्ति के लिए वे पैसे को पानी की तरह बहाया करते ।

कम जेब खर्च मिलने के कारण सजू को अपनी मित्र-मडली मे हीन भावना का अनुभव होता था; क्योंकि उसकी तुलना मे कम पैसे वाले राजू आदि मित्र भी उससे कही अधिक जेब खर्च पाते थे और दिल खोलकर खर्च किया करते थे ।

वैसे देखा जाये तो सजू स्वभाव से इतना बुरा नहीं था, जितना वह परिस्थितियो वश बदनाम हो गया था ।

वह अपने पिता की स्वय के प्रति पवित्र भावनाओ को भी पहचानता था और उनकी व्यक्तिगत कमजोरियो को भी जानता था । पर एक तो वह उनसे छोटे मुँह बड़ी बात करे कैसे ? और कहने की हिम्मत करे भी तो उसके कहने का उसके पिता पर कोई असर होने वाला नही था; क्योंकि वे तो उसे अभी भी नादान ही समझ रहे थे ।

बेटा कितना भी बड़ा और समझदार क्यों न हो जावे, पर बाप के लिए तो सदैव बच्चा और अक्ल का कच्चा ही नजर आता है। बाप के सामने बेटा और पति के सामने पत्नी भी समझदारी की बात कर सकते है — यह बात सेठ सिद्धोमल की समझ के परे थी ।

उन्होंने अपने इसी सोच के कारण न संजू की कभी कोई बात सुनी और न अपनी पत्नी की सलाह पर ही कोई ध्यान दिया ।

परिणामस्वरूप संजू के हृदय में पिता के प्रति विद्रोह की भावना पनप गई । अब उसे पिता की भली बातें भी बुरी लगने लगीं । मानसिक संतुलन बिगड़ जाने से उसकी सोचने की क्षमता भी घट गई । उसने अपने गम को भुलाने के लिए सुरा का सहारा लिया तो उसके सहचारी अन्य अनेक दुर्व्यसनों ने भी उसे घेर लिया ।

× × ×

परिस्थितियों के झंझावात में उलझने के कारण आवारा बने संजू को सौभाग्य से जब ज्ञान, विज्ञान और सुदर्शन जैसे व्यक्तियों का सत्समागम मिला तो वह अपनी भूल का अहसास करते हुए अपने दुष्कृत्य पर लज्जित तो हुआ ही, उसने पश्चाताप के आँसुओं से अपने पूर्वकृत पापों का प्रक्षालन भी कर डाला और भविष्य में ऐसी भूल कभी न करने का संकल्प भी कर लिया ।

इसप्रकार जब उसके दिन फिरे तो उसे सन्मार्ग पर आते देर नहीं लगी और वह रहे-सहे दुर्व्यसनों को दूर करने के प्रयास में लग गया। परिणामस्वरूप प्रौढ़ता की सीढ़ी पर पग रखते-रखते उसमें काफी समझ आ गई ।

उधर उसके पिता भी सोच रहे थे कि – विज्ञान के बताये गुरुमंत्र के अनुसार उसको सन्मार्ग पर लाने के लिए एक सर्वगुणसम्पन्न, सर्वांग सुन्दर कन्या से उसकी शीघ्र शादी कर दी जाये ।

संयोग से सेठ सिद्धोमल मनोवांछित सर्वश्रेष्ठ कन्या के साथ अपने पुत्र संजू की शादी करने में सफल भी हो गये । इसतरह ज्ञान, विज्ञान और सुदर्शन के प्रयासों से और माता-पिता के प्रयत्नों से संजू पुनः अपने घर वापिस आ गया ।

संजू की वापसी और योग्य कन्या से उसका विवाह सम्बन्ध हो जाने से उसके माता-पिता तो प्रसन्न हुए ही, नागरिको और उसकी मित्र-मडली को भी भारी प्रसन्नता हुई ।

सरला एव सुनीता के सम्पर्क मे रहने से सजू के चरित्र के बारे मे जो भ्रम खड़े हो गये थे, यथासमय उनका भी निराकरण हो गया।

गलतफहमियों से भी वातावरण बहुत विषाक्त हो जाता है । यदि यह जानना हो, इसका प्रत्यक्ष अनुभव करना हो तो संजू, सरला और सुनीता के चरित्रो से जाना जा सकता है । वे दोनो पूर्ण पवित्र और सदाचारिणी थीं; पर उन्हें समाज ने सजू को आश्रय देने के कारण सदेह की दृष्टि से देखा और पूर्ण दुराचारी मानकर समाज से बहिष्कृत कर दिया था । सजू के पिता सेठ सिद्धोमल ही उन्हें अपमानित और समाज से बहिष्कृत करने मे अग्रणी थे । वे समाज के सरपच जो थे । पुत्र मोह ने ही उन्हें अपने सरपंच पद का दुरुपयोग करने को विवश कर दिया था । सजू के पथभ्रष्ट होने मे उन्हें सारा दोष सरला व सुनीता का ही नजर आ रहा था । जबकि स्थिति कुछ और ही थी । पर वे क्या करें, मोह की महिमा ही विचित्र है । अस्तुः यदि संजू ने आगे आकर उन्हें अग्नि-परीक्षा की कसौटी पर न कसा होता तो बेचारी वे तो बेमौत मारी ही गई थीं ।

× × ×

सरला और सुनीता की समस्या सुलझाने के बाद सजू इस अवसर की तलाश मे था कि वह धीरे-धीरे अपने पापा को विश्वास मे लेकर उन्हें उनकी उन कमजोरियो का आभास कराये, जिनके कारण वे सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र मे इतना समय देने एवं धन खर्च करने के बावजूद भी लोगो की दृष्टि मे श्रद्धेय नही बन पाये, बल्कि लोग उन्हें महत्त्वाकांक्षी और नाम तथा धन का लोभी ही समझते रहे ।

लोगो को सेठ सिद्धोमल के व्यक्तित्व को समझने मे कोरा भ्रम नहीं था, कुछ-कुछ वस्तुस्थिति भी ऐसी ही थी । वे अपने को आवश्यकता

लिखाकर उन्होंने अनेक सामाजिक संस्थाओ, सगठनो और ट्रस्टों के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष और कार्याध्यक्ष जैसे महत्वपूर्ण पदो को भी हथिया लिया था । इन पदो पर पदासीन होने से उन्हें अपने बड़ेपन का भ्रम भी हो गया था ।

बेचारे सेठजी को क्या पता कि यह सब तो माया की महिमा है, इसमे अपना क्या बड़प्पन है । 'माया तेरे तीन नाम, परसा, परसु परसराम' वाली कहावत उन पर पूर्णरूपेण घटित होती थी । उन्होंने भी 'सिद्धा, सिद्धो से लेकर सेठ सिद्धोमलजी तक की नाम-यात्रा इसी पीढ़ी मे पूरी की है ।

एक व्यक्ति जब निर्धन था तब लोग उसे 'परसा' कहकर पुकारा करते थे, जब वह कुछ धनवान हुआ तो लोग उसे 'परसु' कहने लगे तथा जब वह और अधिक धन सम्पन्न हो गया तो उसे सेठ श्री परसरामजी कहकर पुकारा जाने लगा था ।

जब सिद्धोमल बड़े आदमी बन गये तो अब समाज को अपने पक्ष मे रखने के लिए एव समाज मे अपना सर्वोच्च स्थान सुरक्षित रखने के लिए और अपने नाम की प्रसिद्धि के अनुसार समय-समय पर चन्दा-चिट्ठा तो लिखाना ही पड़ता था, पर इतने सारे ब्लैकमनी (काले धन) का खर्च कहाँ दिखावे ? एक यह समस्या भी तो उनके सामने रहा करती थी ।

एतदर्थ उन्होंने अपने पूर्वजो के नामो पर ऐसे अनेक छोटे-मोटे ट्रस्ट बना रखे थे, जिनके माध्यम से वे अपनी अवैध सम्पत्ति को वैध एव सुरक्षित करके अपने कुटुम्ब परिवार के हित मे उसका मनमाने ढंग से सदुपयोग कर सकें और चन्दा-चिट्ठा भी दे सकें ।

समय-समय पर मुखर-नेताओ, शासकीय अधिकारियो और कर्मचारियो तथा पत्र-पत्रिकाओ को चन्दा-चिट्ठा या उपहारों के नाम पर मुँह मा[illegible] धन देकर उनका मुँह बद रख सकें और समय-समय पर उच्चासन पर सुशोभित होकर सम्मान पा सकें । इन सबके

सजू की चिन्ता का यही मुख्य विषय था । वह चाहता था कि एक तो उनकी यह दौड़-धूप कम हो और दूसरे उनको अनावश्यक तनाव जो सस्थाओ की उपाधियो के कारण होता है, वह कम हो । तीसरे, वे एक जगह रहकर शान्ति से स्वाध्याय करें, तत्वाभ्यास करें तो धीरे-धीरे उनकी तनावजनित बीमारी भी ठीक होगी और उनकी ये महत्त्वाकांक्षाएँ भी अपने आप कम हो जायेगी ।

इसके लिए उसने अपने मित्र प्रो. ज्ञान, विज्ञान और सुदर्शन से कहा कि वे लोग ही कोई ऐसा रास्ता निकाले, उपाय खोजे; जिससे उसके पिताजी स्वाध्याय एवं तत्त्वाभ्यास मे रुचि लेने लगे । वे चाहें तो डॉ. धर्मचन्द और राजू से भी सहयोग ले लें ।

× × ×

बड़े आदमियो को आमतौर पर जो बड़ी-बड़ी व्याधियाँ और उपाधियाँ होती है, सेठ सिद्धोमल भी उसके अपवाद नहीं थे, उन्हें भी लगभग सभी आधियाँ-व्याधियाँ और उपाधियाँ थी; क्योकि उन्होने भी तो वे सब मुसीबते मोल ले रखी थीं, जो आमतौर पर सब श्रीमन्तो को घेरे रहती है ।

यद्यपि उनके सौभाग्य से अब उन्हें धन-दौलत कमाने की बिल्कुल ही चिन्ता नहीं थी, क्योकि उनके पास अटूट-असीमित चल-अचल सम्पत्ति थी, जिसके ब्याज और भाड़े से ही उन्हे लाखों रुपयो की आय का साधन हो गया था; पर प्राणी की इच्छाओं की भी तो सीमा नहीं है। उन्हें पैसे कमाने की चिन्ता नहीं थी तो वे नाम कमाने और यश-प्रतिष्ठा प्राप्त करने के चक्कर मे पड़ गये । इस कारण वे सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक सस्थाओं की नेतागिरी मे उलझे रहते थे ।

जगह-जगह का प्रदूषित पानी और टाइम-बे-टाइम खाना तथा दो-दो बजे रात तक जागना । पूर्ण अनियमित दिनचर्या; न कोई खाने-पीने और सोने का निश्चित समय और विश्राम का ठिकाना । कोई कितना भी लोह पुरुष क्यो न हो, आखिर इसतरह वह कबतक स्वस्थ रह सकता

वैराग्यमय वातावरण बनाते हुए ज्ञान, विज्ञान और सुदर्शन ने भी उन्हें मोक्षमार्ग पर अग्रसर होने को प्रोत्साहित किया ।

कह नहीं सकते सेठ सिद्धोमल ने उस विकट परिस्थिति मे कितना क्या ग्रहण कर पाया, पर देखते ही देखते उन्हें ब्रेन हेमरेज हो गया, उनके मस्तिष्क की नस फट गई । और वे ऐसे अचेत (बे-होश) हुए कि पुनः होश मे आये ही नहीं ।

उनके आँख से झरती अश्रुधारा केवल यह बता रही थी कि शायद उन्हें अपनी अमूल्य मनुष्य पर्याय निष्फल खोने का भारी पश्चाताप हो रहा है । उनका तो जो हुआ सो हुआ, पर उनके इस दुखद निधन से दर्शकों के हृदय अवश्य दहल गये । फलतः सभी ने अपने शेष जीवन को स्वाध्याय और सयम से सार्थक करने का दृढ़ संकल्प कर लिया ।

उतावलेपन की हद

यदि आपको इस जगत का उतावलापन देखना है तो किसी भी नगर के व्यस्त चौराहे पर खड़े हो जाइये और देखिये इस दुनिया का उतावलापन। चौराहे पर मौत की निशानी लालबत्ती है, एक सिपाही भी खड़ा है आपको रोकने के लिये, फिर भी आप नहीं रुक रहे हैं; अपनी मौत की कीमत पर भी नहीं रुक रहे हैं । यद्यपि आप अच्छी तरह जानते है कि लालबत्ती होने पर सड़क पार करना खतरे से खाली नहीं, कभी भी किसी भारी वाहन के नीचे आ सकते है, पुलिस वाला भी आपको सचेत कर रहा है, फिर भी आप दौड़े जा रहे है । क्या यह उतावलेपन की हद नहीं है ? इतनी भी जल्दी किस काम की ? पर ऐसा उतावलापन कहीं भी देखा जा सकता है ।

क्या यह देश का दुर्भाग्य नहीं है कि आप अपने उतावलेपन के कारण लालबत्ती होने पर भी किसी वाहन के नीचे आकर मर न जावें — मात्र इसलिये लाखों पुलिसमैनों को चौराहों पर खडा रहना पड़ता है ।

अपनी मौत की भी कीमत पर जिनको इतनी भी देरी स्वीकृत नहीं, पसन्द नहीं; ऐसे अधीरिया — उतावले लोगों की समझ में यह कैसे आ सकता है कि जो कार्य जब होना होगा, तभी होगा ।

— क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ ६४

एक ओर तो प्राणप्रिय पतिदेव के चिर-वियोग जनित असीम विरह वेदना, दूसरी ओर वैधव्य जीवन की सहगामी असंख्य संभावित-असंभावित विपत्तियों-आपत्तियों के कष्ट-कंटकों से भरी पहाड़-सी जिन्दगी । एक असहाय विधवा के लिए कितना दुःखद प्रसंग होता है यह ? क्या इसकी कोई कल्पना भी कर सकता है ?

नई उम्र की विधवाओं को आये दिन नई-नई समस्याओं का सामना करना पड़ता है सो अलग । वे बात-बात में संदेह की दृष्टि से ही देखी जाती हैं । न वे किसी को आँख उठाकर देख सकती हैं, न कोई उन्हें । न वे किसी से सहयोग ले सकती हैं और न किसी को सहयोग दे सकती हैं, जहाँ हँसी वहीं फँसी । अतः जीवनभर सहज होने का तो काम ही नहीं । जिन्दगी भर तनाव में जीना ही उनकी नियति है । कदम-कदम पर असुरक्षा, जहाँ/जिसका सहारा लेने की सोचें, सबसे पहले वही इज्जत लूटने को आमादा । भले ही वह रिश्ते में कुछ भी लगती हो, और उम्र में भी बहू-बेटी के बराबर ही क्यों न हो? पर कामियों को न रिश्तों की परवाह न उम्र का लिहाज ! भूखे भेड़ियों की तरह चौबीसों घंटे इसी ताक में रहते हैं कि कहीं किसी तरह चंगुल में फँस जाय । अपने शील की सुरक्षा का कहीं कोई साधन नहीं; सदा सशंक जीवन ।

ऐसी स्थिति में कोई लज्जाशील नारी शान्ति से रहना भी चाहे तो कैसे रहे ? कोई कितने भी फूँक-फूँक कर कदम रखे, कैसे भी बच-बच कर क्यों न चले, पर कहीं न कहीं चक्कर में आने की संभावना से इन्कार भी तो नहीं किया जा सकता; क्योंकि किस के मन में कब/क्या भाव जग जाये – यह निर्णय करना बहुत कठिन है । ऐसा

कुछ न भी घटे तो भी अफवाहो की शिकार हुए बिना न रहे । शुभ प्रसगों पर उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है सो अलग । इन सब परिस्थितियो के कारण उसे अपनी मनःस्थिति को सामान्य रख पाना तलवार की धार पर चलने जैसा कठिन काम है ।

यही सब सरला और सुनीता के चिन्ता के विषय थे । वे सोचती थीं कि इन सब समस्याओ का सामना हम कर भी सकेंगी या नहीं?

यदि अन्य कोई आलम्बन हो, तब भी कोई राहत मिल सकती है, पर उन दोनो के आगे-पीछे भी कोई नहीं था । सास-ससुर का तो उन्होंने मुँह भी नही देखा था । वे तो रेल (ट्रेन) दुर्घटना मे पहले ही स्वर्गवासी हो गये थे, सताने अभी हुई नही थीं । बिल्कुल एकाकी शून्य जीवन था उनका ।

भले ही उनके पति लम्बी बीमारी के कारण कुछ कमाई नहीं कर पा रहे थे, पर अब तक उनका साया उनके सिर पर होने से उनमे मनोबल था, उन्हें अपने सौभाग्यवती होने का गौरव था और परिस्थितियों से जूझने का साहस था । यद्यपि उनके पतियो की असाध्य बीमारी के कारण वे निराश थी, पर किसी तरह गृहस्थी की गाड़ी तो खिच ही रही थी; परन्तु उनके निधन से तो उनकी रही-सही हिम्मत भी टूट गई थी, पतियो का साया उठते ही उनके साहस का भी जनाजा निकल गया था । अब वे अपने को बहुत ही असहाय और दीन-हीन अनुभव कर रही थी ।

यद्यपि विद्या, विज्ञान और डॉक्टर दम्पति जैसे सज्जन और उदार व्यक्ति उन्हे काफी ढाढस बधा रहे थे, पर वे अभी भी किंकर्तव्यविमूढ थीं। उनकी आँखो के आगे घनघोर अधकार ही अधकार छाया हुआ था । जीने के लिए कहीं भी कोई आशा की किरण दिखाई नही दे रही थी। उनका बार-बार मूर्छित हो जाना यह बता रहा था, मानो वे सदैव के लिए मूर्छित ही हो जाना चाहती हैं, मर ही जाना चाहती हैं ।

वे सोच रही थीं अब जीवित रहकर करें तो करें भी क्या ?

नारी के जीवन में उत्साहपूर्वक जीने के दो ही तो प्रमुख कारण होते हैं – एक पति और दूसरे पुत्र-पुत्रियाँ, जिनके लिए वह अनेक कष्ट सहकर भी समर्पित रहती हैं । उनके आगे-पीछे अब कोई नहीं था; अतः वे पूरी तरह निराश हो चुकी थीं ।

× × ×

पति कैसा भी क्यों न हो, पर पति तो आखिर पति ही होता है। वह भी भारतीय नारी का । भारतीय संस्कृति में तो वैसे भी पति को परमेश्वर कहा जाता रहा है; न केवल कहा जाता है, माना भी जाता है । अतः पत्नियाँ अपने पतियों के प्रति पूर्ण समर्पित रहती हैं ।

सरला और सुनीता के पति भी उनके लिए परमेश्वर तुल्य ही थे। उनके दुर्व्यसनों को वे परमेश्वर के द्वारा ली जा रही अपनी परीक्षा ही मान रहीं थीं । अतः उनकी बीमारी में उन्होंने उनके लिए क्या-क्या नहीं किया ? लोकनिन्दा की भी परवाह न करते हुए बचपन में प्राप्त अपनी नृत्यकला और संगीतकला द्वारा मित्रों का मनोरंजन करके भी आजीविका चलाई और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की । उन्होंने कभी भी अपने पतियों का न अनादर किया और न किसी से उनका अनादर होने दिया ।

जिन परिस्थितियों में वे जी रही थीं और जिन लोगों से वे घिरीं थीं, उन परिस्थितियों में कोई भी व्यक्ति कभी भी भटक सकता था, पथभ्रष्ट हो सकता था; पर वे कीचड़ में कंचन की भांति निर्लिप्त रहीं। रावण के घर में रही सती-सीता की भांति उन्होंने अपने सतीत्व को सम्पूर्णतः सुरक्षित रखा ।

पर आरोप लगाकर बदनाम करने वाले धोबियों की तो न तब कमी थी, न अब है; सो जो जिसके मुँह में आया, इनके बारे में भी खूब कहा ।'

× × ×

यद्यपि होस्टल में पढ़ते समय एक बार संजू सुनीता की ओर आकर्षित हुआ था, और उसकी सहज मद-मद मुस्कान से भ्रमित होकर उसके हसने को प्रेम का सकेत समझकर, मिलने का आमत्रण मानकर, प्रेमान्ध हो गर्ल्स होस्टल के बेकडोर से घुस कर सुनीता से मिलने की कोशिश मे वहाँ की लड़कियों द्वारा कच्चे चोर की तरह पकड़ लिया गया था, घेर लिया गया था। उसे तभी तत्काल अपनी भूल का अहसास भी हो गया था कि — वह तो उसकी नादानी पर हँसी थी, मूर्खता पर मुस्कुराई थी ।

यद्यपि सुनीता की वह मुस्कुराहट उस समय संजू को महगी पड़ी थी, पर उस घटना से उसने बहुत बड़ा सबक सीख लिया था । तब से वह कभी किसी लड़की के चक्कर में नहीं पड़ा था । उसने उसी समय सकल्प कर लिया था कि मै इन महिलाओं के स्वभाव को समझने मे ऐसी भूल कभी नहीं करूँगा ।"

सजू को इसप्रकार का कोई शौक भी नहीं था । उसकी आवश्यकता तो केवल उसके पिता के कारण उत्पन्न हुई प्रतिकूलता का गम भुलाने के लिए शराब और समय बिताने एवं मनोरंजन के लिए नृत्य-नौटंकी देखना, सगीत सुनना तथा यदा-कदा रमी आदि खेलने तक ही सीमित थी; पर लोग तो उसे आवारा और सुनीता के प्रेम में पागल समझ ही बैठे थे । लोगो का समझना भी निराधार नहीं था । एक तो परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी बनी थीं, दूसरे — यह जरूरी भी तो नहीं है कि ज्ञेयो के अनुसार ही ज्ञान हो । जैसी वस्तु हो उसका वैसा ही ज्ञान हो यह — यह कोई नियम नहीं है । कभी-कभी बालों में मच्छरों के होने का भ्रम भी तो हो जाता है ।

× × ×

यद्यपि सरला और सुनीता महासती सीता की भाँति पूर्ण पवित्र उनका दामन सदा बेदाग रहा । जिसतरह रावण के यहाँ रहने

पर वह उसी कॉलेज के एक साधारण क्लर्क की कन्या थी, अतः उसके पिता को जहाँ एक ओर अपनी बेटी की सफलता पर गर्व था, वहीं वह सदा सशंकित भी बना रहता था कि कहीं-कोई उसकी बेटी की ओर आकर्षित होकर मेरे लिए सिरदर्द न बन जाये ।

जब से होस्टल की घटना उसके कानों में पड़ी, तब से वह और भी अधिक चौकन्ना हो गया था । अब तो वह जल्दी से जल्दी अपनी बेटी के पीले हाथ करने की चिन्ता में हो गया था ।

अज्जू उसी के मित्र का लड़का था । मित्र की मृत्यु एक ट्रेन दुर्घटना में हो गई थी । जाना-पहचाना होने से और देखने-दिखाने में आकर्षक व्यक्तित्व होने से अज्जू सुनीता के पिता को पसन्द था तथा अच्छा खिलाड़ी होने के कारण सुनीता का भी उसके प्रति सहज आकर्षण था। अतः सुनीता की मर्जी से ही उसके पिता द्वारा सुनीता का विवाह अज्जू के साथ कर दिया गया ।

अज्जू का मन पढ़ने में कम और खेलों में अधिक होने से वह अधिक नहीं पढ़ सका था । और धंधे में नुकसान हो जाने से अब केवल मेहनत-मजदूरी ही उसके हाथ में रह गई थी ।

× × ×

अनू भी इसी रुचि का था । उसके भाग्य ने पूरी तरह साथ नहीं दिया। वह ग्रेजुएट होकर भी बेकारी का शिकार बना रहा । थर्ड क्लास जो था । आजकल थर्ड क्लास पास होना तो फेल हो जाने से भी बदतर हो गया है । यह जानते हुए भी अनू अपनी पढ़ाई के प्रति सीरियस नहीं हुआ । जब नौकरी के लिए दर-दर भटकना पड़ा तब कहीं उसे अपनी गल्ती महसूस हुई । पर जब समय ही बीत गया तो फिर पीछे पछताने से भी क्या होने वाला था ।

वह नौकरी तलाशते-तलाशते जब परेशान हो गया और कहीं कोई ढंग की नौकरी नहीं मिली तो वह भी 'वर्क इज वर्शिप' को टच करके मेहनत-मजदूरी करने लगा ।

भले ही मेहनत-मजदूरी को लोग हल्का काम समझते हैं, इज्जत की दृष्टि से नहीं देखते; पर मेहनत-मजदूरी पराई गुलामी से तो लाखगुणी अच्छी ही है ।

बस, यही सोचकर अपने मन को समझा-बुझाकर वे दोनों अपनी आजीविका आराम से कर रहे थे, पर दुर्दैव को यह भी रास नहीं आया।

जब सुनीता और सरला ने अन्नू और अज्जू के कहने पर अपने पतियों के पुराने मित्रों के नाते संजू और राजू को अपने घर में आश्रय दिया; तब तो वे कुछ समझ न सकीं कि इनको आश्रय देने का परिणाम इतना दुःखद हो सकता है । और जब समझ में आया तब तक बात बहुत आगे बढ़ चुकी थी, पानी सिर पर से गुजर चुका था । अतः अब उनका हटाना संभव नहीं रहा ।

संजू और राजू के साथ रहने से अज्जू और अन्नू को भी सिगरेट और शराब पीने की आदत पड़ गई । पहले तो वे होली-दिवाली यदा-कदा शौकिया पिया करते थे, पर अब तो रोज-रोज पीने-पिलाने से व्यसन बन गया था, अतः अब पिये बिना चैन नहीं पड़ती थी । इस कारण अब उन्हें अलग-अलग करना आसान काम नहीं था ।

ये दुर्व्यसन सेवन करने वाले अपने सगे माता-पिता, भाई-बहिन, पुत्र और पत्नी का साथ भले ही छोड़ दें, पर दमभाई का साथ नहीं छोड़ सकते। एक साथ बैठकर गाँजा-चरस, बीड़ी-तम्बाकू, भंग और मदिरापान करने वाले दमभाई के आगे सगे भाई की इन्हें कोई कीमत नहीं होती ।

यद्यपि संजू व राजू का साथ सुनीता व सरला को ही सबसे अधिक महंगा पड़ा; क्योंकि एक तो उनके पति इनके साथ अधिक मात्रा में शराब और सिगरेट पीने से ही मौत के शिकार हुए । दूसरे इनके सम्पर्क में रहने से उनकी बदनामी हुई, सो अलग । पर वे करें तो करें भी क्या ?

पहले सजू और राजू इनकी शरण मे आये और बाद मे अन्नू और अज्जू उनके अनुराग मे ऐसे फसे कि अब ये स्वयं उनको छोड़ने की स्थिति मे नहीं रहे । अतः सुनीता एवं सरला न चाहते हुए भी अपने पतियों को अन्नू और अज्जू से जीते जी अलग नहीं कर सकी ।

× × ×

सजू और राजू को दिन-रात सुनीता व सरला के घर आते-जाते, रात-रात भर गपशप लगाते, तथा खाते-पीते और वहीं उठते-बैठते एवं सोते देखकर समाज की दृष्टि मे ये दोनो तो दुराचारी बन ही गये, साथ मे सुनीता और सरला भी इनकी वजह से बिना कारण बदनाम हो गईं ।

समाज क्या जाने इनके अन्तरंग को; पर ध्यान रहे — बाप बेटे को धोखा दे सकता है, बेटा बाप को चकमा दे सकता है, पति पत्नी से झूठ बोल सकता है, पत्नी पति से बात छुपा सकती है; पर मित्र-मित्र के साथ दगा नहीं करता । चोर-चोर से कुछ भी छुपाता नहीं है, डाकू-डाकू को कभी धोखा देता नही है । जुआरी जुआरी के साथ कभी बेईमानी करता नही है; व्यापारी वर्ग मे यह कौन नहीं जानता कि नम्बर दो का करोड़ो का धन्धा केवल परस्पर के विश्वास के भरोसे ही चलता है । पक्की लिखा-पढ़ी करने वाले भले ही फेल हो जाएँ, पर ये लोग आज तक तो कभी फेल होते देखे नही गये ।

इसी तथ्य के आधार पर छाती ठोक कर यह कहा जा सकता था कि सजू और राजू का व्यवहार सरला और सुनीता के साथ भाई-बहिन के पवित्र प्रेम की तरह था; उन्होने उन्हें कभी भी बुरी निगाह से देखा तक नहीं था; क्योंकि अब वे उनकी प्रेमिकाए नहीं, बल्कि मित्रों की पत्नियाँ जो थीं ।

पर, समाज को कौन समझाये कि ये पवित्र है और समाज ऐसे कैसे मानता कि इन्होने ऐसा कोई पाप नहीं किया ।

सोचना एक अपेक्षा से सच भी हैं; क्योंकि काजल की कोठरी में रहकर कोई उसके दाग से कैसे बच सकता है ?

पर वे भी क्या करें ? उनके पास सीता सती जैसा कोई अग्नि-परीक्षा देने का उपाय भी तो नहीं है । वे सीताजी जैसा साहस कर भी नहीं सकती थीं; क्योंकि संभव है सीताजी जैसी पवित्रता होने पर भी सीताजी जैसा पुण्य उनके पास न हो और अग्नि का जल पवित्रता से नहीं पुण्य से होता है, अन्यथा पवित्रता तो पाँचों पांडवों के भी कम नहीं थी ।

पाँचों ही पाँडव पंच महाव्रत के धारी थे, जिनमें तीन तो तद्भव मोक्षगामी भी थे । उनको भी अग्नि से तप्त लाल-लाल दहकते लोहे के गहने पहना दिए गये थे । समझ लो कि उनके पास सीता जैसा पुण्य नहीं था, पवित्रता तो सीता से भी अनन्तगुणी अधिक थी । इसके सिवाय और कोई उपाय था नहीं । अतः चुपचाप बदनामी सहने में ही उन्हें सार दिखाई दिया ।

पर, समाज भी तो आखिर समाज ही है, वह कब पीछे रहने वाला था । अन्नू और अज्जू के दिवंगत होने पर जैसे-जैसे ज्ञान, विज्ञान और विद्या ने उन्हें सन्मार्ग में लगाकर शान्ति से धर्म साधन करते हुए गौरव से जीने को तैयार किया, वैसे-वैसे ही समाज ने उनका विरोध करना प्रारंभ कर दिया । उनका बहिष्कार करने तक की योजना बन गई।

औरत औरत की जितनी बड़ी शत्रु होती है, शायद उतना बड़ा शत्रु उसका और कोई नहीं हो सकता ।

औरतों की ओर से काना-फूसी प्रारंभ हो गई – 'साँच को आँच कहाँ ।' यदि सती हैं तो हाथ में आग के अंगारे लेकर दिखायें । अपने आप दूध का दूध और पानी का पानी हो जायेगा ।

समाज के संरक्षक सेठ सिद्धोमल भी औरतों का रुख देखकर उनकी हाँ में हाँ भरने लगे । उन्हें उधर झुकता देख समाज के अध्यक्ष, मंत्री आदि पदाधिकारियों का मत भी उन्हें ही मिल गया ।

इस तरह एक ऐसा माहौल बन गया, मानो अग्नि परीक्षा दिए बिना समाज मे उनका जिन्दा रहना असभव हो जायेगा ।

सजू और राजू भी यह सब तमाशा देख रहे थे । यद्यपि संजू भी सामाजिक नेताओं के तीर का निशाना बन सकता था, पर बड़े बाप का बेटा होने से उसकी तरफ उगली उठाने की किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी।

सजू से चुप नहीं रहा गया, अतः वह समाज के सामने आता हुआ बोला — "चलो हमे मजूर है सुनीता और सरला की अग्नि परीक्षा। और उन्हें दोषी बनाने मे उनसे भी कहीं अधिक हमारा दोष है । अतः उनसे पहले हम भी अपनी अग्नि परीक्षा देंगे ।"

यह सुनते ही सजू के पिता सेठ सिद्धोमल घबड़ाये । अब उन्होने पैतरा बदलने की कोशिश की; पर सजू ऐसा अड़ा कि पलटने का नाम ही न ले । अब सबकी बोलती बन्द । पर संजू ने पुनः घोषणा की कि कल इसी समय यही पर अग्नि परीक्षा का कार्यक्रम होगा ।

रातभर हलचल मची रही, इस कार्यक्रम के निरस्त करने की नाना योजनाये बनती रहीं । सरला व सुनीता की हर बात मानने को समाज राजी हो गया, पर सजू और राजू अपनी बात पर अड़े रहे ।

उनका कहना था कि जब सुनीता व सरला — दोनो ही पूर्ण पवित्र है, तो फिर वे किसी की कृपा पात्र क्यो बने ? जीवन भर औरतों द्वारा टीका-टिप्पणी की निशाना क्यों बनी रहें ? एक बार अग्नि परीक्षा मे खरी उतर कर क्यो न समाज मे गौरव से और इज्जत से रहें ? अतः उन्होने किसी की कोई बात नहीं मानी ।

अन्ततोगत्वा, सवेरा होने पर अग्निपरीक्षा की तैयारियाँ प्रारंभ हुई। अग्नि की भट्टी जला दी गई; पर सीता की अग्निपरीक्षा से इस अग्निपरीक्षा की कार्यशैली मे थोड़ा बहुत सुधार हो गया था, सीताजी को तो अग्निकुण्ड मे प्रवेश करना पड़ा था, पर यहाँ आग के अगारो को केवल हाथों मे लेना था; ताकि पापी का पाप तो खुल जाये और जान जोखिम से

उस जमाने में भी कोई ऐसा ही उपाय सोच लेता

काश ! उस जमाने में भी कोई ऐसा ही उपाय सोच लेता
। खैर !

पूरी तैयारी हो चुकी और सभी समाज एकत्रित हो गया तो
कहा समाज के संरक्षक, अध्यक्ष, महामंत्री और मंत्री चारों व्यक्ति
आवें और क्रम-क्रम से इन अंगारों को अपने हाथ से उठा-उठाकर
चारों के हाथों पर रखें ।

सभी एक-दूसरे का मुँह ताक रहे थे, कोई भी आगे आने को तैयार
हीं था ।

एक ने कहा – "हाथ से अंगारे उठाकर ...... ?"

दूसरे ने कहा – "ठीक ही तो है, पाप तो उन्होंने किया है, पंचों
ने थोड़े ही किया है, जलेंगे तो वे जलेंगे, पंच क्यों जलेंगे ?"

जब देखा कि कोई भी आगे नहीं आ रहा, सभी मुँह लटकाये खड़े
हैं, तब फिर संजू ने जोर-जोर से चिल्ला कर कहा – "छोड़ो संरक्षक,
अध्यक्ष और मंत्री-महामंत्री आदि पंचों को । समाज में से जो भी आना
चाहे, आगे आवे और हमारे हाथों पर अपने पवित्र हाथों से आग के
अंगारे रखकर हमारी परीक्षा ले ले ।

सभी एक-दूसरे का मुँह देख रहे थे, कोई भी आगे नहीं आया।
इस तरह संजू की बुद्धिमानी से सुनीता और सरला बिना अग्नि परीक्षा
दिए ही पवित्र सिद्ध हो गयीं ।

× × ×

अब तक सुनीता और सरला सम्पूर्ण रूप से सामान्य हो चुकी
और उनमें जीने के प्रति नया उत्साह का संचार हो गया था।
उनकी अन्तिम मंजिल केवल स्त्री धर्म निभाने तक ही सीमित नहीं
थी, बल्कि अब उन्हें मोक्ष की मंजिल तक पहुँचने की तैयारी
थी ।

उन्हें समझ में आ गया था कि मृत्यु के उपरान्त ही अपनी
यात्रा समाप्त नहीं हो जाती । यदि स्वर्गीय पतिदेव की मं

मे पड़कर उन्हें ही दिन-रात स्मरण कर-कर के आर्तध्यान करती रहीं तो इससे उनको तो कोई लाभ होगा नहीं, अपना ही भविष्य अंधकारमय बन जायेगा । और न जाने कितने जन्म-जन्मान्तरो तक ये जन्म-मरण, भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, सयोग-वियोग के अनन्त दुःख भोगने पड़ेगे । अतः दैवयोग से जब ऐसा बनाव बन ही गया है तो क्यो न अब अपने इस शेष जीवन को स्व-पर कल्याण में समर्पित कर दिया जाय ?

दिल दहलाने वाली, रोमाचित करने वाली, बड़ी-बड़ी अविस्मरणीय घटनाएँ घट जाती हैं, पर धीरे-धीरे वे भी काल कवलित हो जाती हैं, काल के गाल मे समा जाती हैं, समय सबको अपने में समा लेता है ।

ज्यो-ज्यों समय बीतता गया, वे सहज होती गई थीं । फिर उन्हें ज्ञान और विज्ञान के सहयोग से तत्त्वज्ञान का सबल भी मिल गया था। अब उनके सामने वर्तमान पर्याय के क्षणिक वैधव्य दुःख की तुलना में अनन्त भविष्य का अपार ससार सागर पार करने का कार्य महत्त्वपूर्ण लगने लगा था । अतः अब उन्होने वर्तमान दुःख को गौण करके उसी महायात्रा की तैयारी मे जुट जाने का मानस बना लिया ।

एक दिन सुदर्शन, ज्ञान, विज्ञान एवं विद्या ने परस्पर विचार करके यह निर्णय किया कि जिनवाणी के प्रचार-प्रसार की कोई ऐसी ठोस योजना बनाई जावे, जिससे घर-घर मे जिनवाणी पहुँचाई जा सके और घट-घट मे बिठाई जा सके ।

इसके लिए डॉक्टर दम्पति तो सम्पूर्णतः निःस्वार्थ भाव से समर्पित हैं ही, सजू और राजू का पूरा-पूरा सहयोग भी हमें मिल ही जायेगा। सुनीता और सरला को भी अब इसी काम मे प्रशिक्षित कर लिया जावे, ताकि उनकी सगीत कला का भरपूर सदुपयोग इस दिशा में हो सके, एतदर्थ इन सबकी एक मीटिंग अगले रविवार को बुलाई जावे । इस निर्णय के साथ सब अपने-अपने घर चले गये ।

प्रो. ज्ञान ने एक दिन विचार किया कि — "शुभ काम में देर क्यों? शुभ काम तो जितना जल्दी संभव हो सके, प्रारंभ हो जाना चाहिए। ज्यों-ज्यों जल्दी करने की सोचते हैं, त्यों-त्यों देर हो रही है । एक-एक करके तीन रविवार तो बातों-बातों में यों ही निकल गये । कभी किसी के यहाँ शादी है तो कभी किसी का स्वास्थ्य ठीक नहीं, कभी किसी को जरूरी काम से बाहर जाना है तो कभी किसी के घर में मेहमान आ गये ।

किसी मनीषी ने ठीक ही कहा है कि — 'शुभ कामों में विघ्न-बाधायें कुछ अधिक ही आती हैं ।' अस्तु अब तक जो हुआ सो हुआ, पर अब इस काम के लिए विशेष सक्रिय होकर आगे आना पड़ेगा और किसी की आशा/अपेक्षा एवं प्रतीक्षा किए बिना ही काम का शुभारंभ कर देना होगा, तभी कुछ बात बन सकेगी ।

समाज को इकट्ठा करना मेंढ़क तौलने से कम कठिन नहीं है । जब तक एक को तराजू पर बिठाओ, तब तक दूसरा उछल कर नीचे कूद जाता है, दूसरे को बिठाओ तो तीसरा उछल जाता है । उनका यही सिलसिला चलता रहता है, उन्हें कोई कैसे तौले ? तराजू पर कैसे इकट्ठा करें ? यही स्थिति समाज की है, ऐसे तो कभी कोई इकट्ठे होंगे नहीं ।"

यह विचार आते ही प्रो. ज्ञान उसी समय रविवार के सवेरे छः बजे ही विज्ञान व सुदर्शन दोनों के पास दौड़ा-दौड़ा गया और दोनों से अपने मन की व्यग्रता व्यक्त करते हुए बोला — "देखो भाई ! अब बात बर्दाश्त के बाहर हो गई है । अब आज तो हर हालत में बैठक होना ही है । भले कोई आये न आये । इस समय मुझे

अपने पिताजी की वह बात याद आ रही है, जिसे वे ऐसे अवसरो पर अक्सर कहा करते थे ।"

विज्ञान ने जिज्ञासा प्रकट की – "वह क्या ?"

ज्ञान ने बताया – "जब भी कोई किसी महत्त्वपूर्ण काम को कल पर टालने की कोशिश करता था तो उनके मुँह पर यह कहावत रखी ही रहती थी – 'अरे भाई ? करलो सो काम और भजलो सो राम'।

उनके कहने का तात्पर्य यह होता था कि – 'किसी भी शुभ काम को कल पर मत टालो । क्या भरोसा इस जीवन का ? इस जीवन मे कल आयेगा भी या नही ? यह कोई नहीं जानता; अतः शुभ काम और आत्माराम की आराधना तो जितने जल्दी बने, उतनी ही जल्दी कर लेना चाहिए ।'

इस सदर्भ मे उनका एक अत्यन्त प्रिय भजन भी था, जिसे वे समय-समय पर गुनगुनाया करते थे । वह भजन इस प्रकार है –

"क्षण भगुर जीवन की कलियाँ, कल प्रातःकाल खिलीं न खिलीं;
यमराज कुठार लिए फिरता, तन पर वह चोट झिली न झिली ।
क्यो करती है तू कल-कल, कल यह श्वास मिली न मिली,
भज ले प्रभु नाम अरी रसना ! फिर अन्त समय मे हिली न हिली ॥"

प्रो. ज्ञान भावविभोर होकर गा रहा था और विज्ञान व सुदर्शन मत्रमुग्ध होकर सुन रहे थे ।

ज्यो ही प्रो. ज्ञान का भजन पूरा हुआ तो विज्ञान ने गद्‌गद् होकर कहा – "भाई ! भजन तो बहुत ही मनभावन और सचेत करने वाला है । सीधी मन पर चोट करता है । वस्तुतः हमे किसी भी काम को कल पर कतई नही छोड़ना चाहिए । आज मीटिंग हो ही जावे। जो आयेगा उसका स्वागत है और जो नहीं आ पायेगा, उससे फि कभी क्षमायाचनापूर्वक परामर्श कर लेगे ।"

सुदर्शन ने विज्ञान की बात का समर्थन करते हुए कहा – एक साथ एकत्रित होना तो वैसे भी सभव नही है । फि

है, वे घर पर बेकार बैठे-बैठे गपशप करते रहेंगे, पर मीटिंग में नहीं आयेंगे । भाई! यह सब तो रुचि का खेल है । जिस काम में जिसकी रुचि है, उस काम के लिए तो उसके पास समय ही समय है और जिस काम में रुचि नहीं है, उसके लिए बहानों की क्या कमी ? अतः सभी के आने की आशा में समय खराब करने की आवश्यकता नहीं है ।

विज्ञान ने कहा – "ज्ञान, बस तुम तो नोटिस निकाल दो और रामू को भेजकर सब सदस्यों के हस्ताक्षर करा लो । यदि चाहो तो तांगा या रिक्शा द्वारा माइक से, ध्वनि विस्तारक यंत्र से मुहल्ले-मुहल्ले में मीटिंग की घोषणा करा दो । उससे सबको सूचना तो हो ही जायेगी। फिर उनकी मर्जी पर छोड़ दो । संयोग से आज समाज में किसी के यहाँ कोई पारिवारिक आयोजन भी नहीं है, अतः जिन्हें आना है, वे तो आ ही जावेंगे ।"

× × ×

पुण्यात्माओं के मनोरथ तो प्रायः पूरे होते ही हैं । ज्ञान और विज्ञान ने जो यह निश्चय कर लिया था कि वे इस रविवार को तो बैठक करके ही दम लेंगे । वे उसमें पूर्ण सफल रहे ।

सौभाग्य से इस मीटिंग में लगभग सभी आमन्त्रित विशेष व्यक्ति तो आ ही गये थे । घोषणा द्वारा प्राप्त एक साधारण-सी सूचना के आधार पर अन्य लोग भी अच्छी संख्या में यथासमय उपस्थित हो गये।

प्रो. ज्ञान ने बैठक बुलाने का उद्देश्य बताते हुए अपने संबोधन में कहा – "बंधुओ ! आज की यह बैठक किसी सामाजिक समस्या को लेकर नहीं बुलाई गई है और न किसी व्यक्ति विशेष की समस्या सुलझाने हेतु ही आप लोगों को कष्ट दिया गया है । आज की यह बैठक एक ऐसे पवित्र उद्देश्य को लेकर आयोजित की गई है, जिसमें हम सबका हित है ।

देखिए, हम लोग छोटे से वर्तमान मानव-जीवन को सुखपूर्वक जीने के लिए क्या-क्या नहीं करते ? दिन-रात एक किए रहते हैं। केवल आर्थिक व्यवस्था को व्यवस्थित रखने के लिए ही तो हम अपनी संतान को बीस-बीस वर्ष तक कठोर परिश्रम करके इंजीनियरिंग, डाक्टरी, वकालात, सी. ए. आदि की पढ़ाई पढ़ाते हैं । बताइये धनार्जन के सिवाय इस पढ़ाई का और क्या उपयोग है ?

यह तो आप जानते ही हैं कि मनुष्य और पशु मे क्या अन्तर है ? खाना, सोना, डरना और विषयवासना आदि तो मनुष्यो और पशुओ मे समान ही होते हैं इनसे तो मनुष्य मे कुछ बड़प्पन या विशेषता है नही । हाँ, मनुष्य जीवन मे एक धर्म से ही विशेषता आ सकती है, जो बेचारे पशुओ को सरलता से नसीब नहीं होती । यदि मानव-जीवन मे धार्मिकता न हो तो धर्मविहीन मानव तो पशु तुल्य ही है । एक संस्कृत कवि ने कहा भी है –

आहारनिद्राभयमैथुनच, सामान्यमेतत् पशुभिः नराणाम् ।
धर्मोहितेषामधिको विशेषः धर्मेण हीनः पशुभिः समानः ॥

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त तो पतित (पापी) जनों पर व्यग करते हुए यहाँ तक लिख गये है कि – "पापी मनुष्यों को पशु कहकर पशुओ का अपमान क्यो करते हो ? अरे पापी पुरुषों से तो पशु बहुत अच्छे है, वे तो बेचारे अपने नैसर्गिक नियमो का भी उल्लघन नहीं करते' देखिये न उन्हीं के शब्दो मे :–

पतित जनों में हम करते है, बहुधा पशुता का आरोप ।
किन्तु पशु भी करता है क्या निज निसर्ग नियमों का लोप ? ॥
मै मनुष्यता को सुरत्व की जननी भी कह सकता हूँ ।
किन्तु पतित को पशु कहना मैं कभी नहीं सह सकता हूँ ॥

इससे स्पष्ट है कि धर्माचरण के बिना मनुष्य को मनुष्य कहलाने का भी अधिकार नहीं है; अतः आज हम एक ऐसा सगठन बनाने को एकत्रित हुए है, जिसके द्वारा हम स्वयं धर्माचरण सीखे और जन-जन

एक सदस्य ने विनम्रता से कहा — "भाई ! बात तो तुमने ठीक ही कही है, पर धरम ही तो सारे झगड़ों की जड़ है । देखो न आज मदिर, मस्जिद और गुरुद्वारे; जो धर्मस्थल कहलाते हैं, सब युद्धस्थल बने हुए है । इससे तो हम अधार्मिक लोग ही अच्छे है न ?"

"नहीं भाई, ऐसी बात नही है । झगड़े धर्म से नहीं, धर्मान्धता से होते हैं । धर्म तो वीतरागता का दूसरा नाम है । क्या वीतरागी भी कभी किसी से झगड़ा-फसाद करते हैं ? धर्म की बाते तो बहुत लोग करते हैं, पर धर्म के रहस्य को बहुत कम लोग जानते हैं । धर्म की यथार्थ स्थिति को लोग जाने-पहचाने, इसके लिए ही तो आज हम यह सगठन बना रहे है ।

वैसे देश मे न तो युवाओ की कमी है और न युवा सगठनो की। पर वे सब सगठन शासन और समाज के लिए सिरदर्द बने हुए हैं, समस्या बने हुये है । नित्य नये आन्दोलन छेड़ना, तोड़-फोड़ करना, बसो, रेलो और कल-कारखानो मे आग लगाना, लाखों की सख्या मे जन-धन की हानि करना-कराना ही जिनका काम है ।

परन्तु यह सगठन जनता मे अशान्ति की आग लगाने वाला नहीं, वरन् शान्ति, समता और अहिसकक्रान्ति की शीतल अमृतधार बहाकर उस अशान्ति की आग को बुझाने वाला सगठन होगा; तोड़-फोड़ करने वाला नहीं, धर्मस्नेह के धागे से समाज को एव राष्ट्र को जोड़ने वाला सगठन होगा ।

यह जन-जन मे धार्मिक भावना भरने वाला, दुराचार से हटाकर सदाचार के मार्ग पर लाने का रचनात्मक काम करने वाला सगठन होगा।

इस सगठन ने सरक्षक के रूप मे डॉ. धर्मचन्द जैसे समाज के सेवाभावी वयोवृद्ध व्यक्तियो का मार्गदर्शन तथा आशीर्वाद प्राप्त करने का लक्ष्य भी रखा है; क्योंकि काम करने के लिए जहाँ युवाओं का जोश चाहिए वहाँ वृद्धों का होश भी चाहिए । युवको में जोश तो बहुत होता है, पर होश की कमी रहती है । इसके विपरीत बुजुर्गों में होश बहुत

है, वे सोचते बहुत हैं, परन्तु उनकी भुजाओं में अब काम करने की ताकत नहीं रही । अतः युवकों का जोश और वृद्धों का होश मिलकर समाज में नई चेतना लाने वाला यह संगठन अपने उद्देश्य में अवश्य सफल होगा – ऐसा हमारा पूर्ण विश्वास है ।

हमारे इस संगठन में एक महिला विभाग भी रहेगा, जिसका नेतृत्व हमारी भाभी श्रीमती विद्या, सुनीता एवं सरला करेंगी ।"

प्रो. ज्ञान ने बैठक बुलाने का उद्देश्य बताकर अगले वक्ता को बुलाते हुए कहा – "अब मैं आदरणीय विद्या भाभी से भी विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि वे भी अपने विचार रखें ।"

"आदरणीय पिता तुल्य आज के अध्यक्ष डॉ. धर्मचन्दजी, धर्मबन्धु प्रो. ज्ञानजी, मि. सुदर्शन एवं उपस्थित सज्जनो, और माता बहिनो ! "मैं इस अवसर पर केवल इतना कहना चाहूँगी कि संसारी प्राणियों को इस संसार में परिभ्रमण करते हुए यह दुर्लभ, अमूल्य मनुष्य पर्याय, उत्तम कुल और जिनवाणी सुनने-समझने का सौभाग्य बड़ी मुश्किल से मिलता है । यदि यह एक बार हमारे हाथ से यों ही खाते-कमाते और रोते-गाते निकल गया तो इसका बार-बार मिलना कठिन ही नहीं, असंभव है ।

इस संदर्भ में कविवर दौलतरामजी के छहढाला ग्रंथ की निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं । वे लिखते हैं –

यह मानुष पर्याय सुकुल सुनबो जिनवाणी,
इह विधि गये न मिले सुमणि ज्यों उदधि समानी ।

इसलिए मैं तो केवल इतना ही निवेदन करना चाहती हूँ कि – 'यह संगठन समय-समय पर जो भी आयोजन करे, कार्यक्रम बनाये, हम उसमें समर्पण भाव से अपना सहयोग दें और इसके धार्मिक आयोजनों का भरपूर लाभ उठायें ।

जीवन में यदि कुछ प्राप्त करने लायक हैं तो वह केवल धर्म ही प्राप्त करने लायक है । और तो हम सब कुछ अनेक बार प्राप्त कर

चुके है, यदि नही किया है तो एक धर्माचरण नही किया है, अन्यथा वर्तमान मे हमे ये दुःखद दिन नहीं देखने पड़ते । यह संगठन अपने उद्देश्य में सफल हो इस शुभकामना के साथ मै यह विश्वास दिलाना चाहती हूँ कि मेरा इसमे तन-मन-धन से पूरा सहयोग और समर्पण रहेगा । मुझसे जो कुछ भी बन सकेगा, मै इसके लिए करती रहूँगी।'

विद्या जैन की इस मार्मिक अपील ने धर्म से सर्वथा अपरिचित व्यक्तियों के हृदय मे भी जैन तत्व को जानने-समझने की जिज्ञासा एव धर्म को धारण करने की रुचि के बीज बो दिए ।

× × ×

एक जिज्ञासु ने विनम्रतापूर्वक कहा — "धर्माचरण की बाते तो सब करते हैं, पर धर्म क्या है और कैसे प्राप्त होता है ? यह आज-तक समझ में नहीं आया । क्या आप में से कोई हमें सक्षेप मे और सरल भाषा मे धर्म का स्वरूप समझाने की कृपा करेंगे ?"

प्रो. ज्ञान ने कहा — "हाँ ! हाँ !! आपकी जिज्ञासा को तृप्त करने की कोशिश करना हमारा कर्त्तव्य है । हम आपको धर्म का यथार्थ स्वरूप समझाने का पूरा-पूरा प्रयत्न करेंगे, पर कह नहीं सकते, अभी एकाध घण्टे मे कितना/क्या समझा पायेंगे, और आप भी कितना/क्या ग्रहण कर पायेंगे? इसके लिए तो आपको कुछ दिन तक नियमित रूप से प्रतिदिन एक घंटे का समय निकालना होगा, तब कहीं धर्म का सही स्वरूप समझ मे आ पायगा। यदि आप समय पर आ सकें तो हम तो कल से ही धर्म के स्वरूप को विस्तार से समझाने के लिए एक प्रौढ़ कक्षा का कार्यक्रम प्रारंभ कर सकते हैं । प्रवचन तो प्रतिदिन प्रातः एवं रात्रि मे होता ही है, प्रवचनो में भी आप सादर आमंत्रित हैं ।"

प्रो. ज्ञान ने राजेश शास्त्री को आह्वान करते हुए कहा — "अब मैं युवा विद्वान पण्डित राजेश शास्त्री, जिन्हें हम प्यार से 'राजू' कहते हैं, से अनुरोध करता हूँ कि वे आगे आयें और सक्षेप मे बोल-चाल की भाषा मे धर्म का मर्म समझाने का कष्ट करें ।"

पण्डित राजेश शास्त्री का सामान्य परिचय देते हुए प्रो. ज्ञान ने आगे कहा – "पण्डित राजेश शास्त्री के विषय में मैं कहना तो बहुत कुछ चाहता था, पर समयाभाव के कारण अभी मात्र इतना बता कर संतोष कर रहा हूँ कि शास्त्रीजी हमारे श्रद्धेय डॉक्टर धर्मचन्द जैन के ही होनहार सुपुत्र और हमारे बचपन के सहपाठी एवं मित्र हैं । जो कभी राजू के नाम जाने-पहचाने जाते थे । इन्होंने पांच वर्ष पूर्व जैन सिद्धान्त महाविद्यालय में प्रवेश लिया था । महाविद्यालय के वातावरण से इनके जीवन का पूर्ण कायाकल्प तो हुआ ही, इन्होंने राजस्थान विश्वविद्यालय से जैनदर्शन शास्त्री परीक्षा में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त कर अपने माता-पिता को ढेरों खुशियाँ भी दीं और हमारे नगर का भी गौरव बढ़ाया है ।"

पण्डित राजेश शास्त्री ने अपने वक्तव्य में स्वामी समन्तभद्राचार्य के रत्नकरण्डश्रावकाचार में आये धर्म के स्वरूप का उल्लेख करते हुए कहा – "सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को ही तीर्थंकर भगवान ने धर्म कहा है और इससे उल्टे मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र अधर्म हैं । धर्म जीवों को संसार के दुःखों से निकाल कर उत्तम सुख में पहुँचाता है और अधर्म प्राणियों को संसार के दुःखसागर में डुबा देता है ।

यहाँ कोई कह सकता है कि – 'आप यह क्या कह रहे हैं ? यह तो हम आपसे पहली बार सुन रहे हैं । ये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र क्या वस्तु हैं ? और इनसे धर्म क्या सम्बन्ध है ?

हमें तो हमारे माता-पिता और पूर्वजों ने यह बताया था कि प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व उठते ही नौ बार णमोकारमंत्र पढ़ना चाहिए, अपने इष्ट देव का स्मरण करना चाहिए, नित्यकर्म से निवृत्त होकर मंदिर जाकर अपनी सुविधानुसार दर्शन-पूजन भी करना चाहिए । धार्मिक पर्वों पर विशेष पूजन-पाठ करना चाहिए । समय-समय पर शास्त्रों में बताये अनुसार व्रत-उपवास, दान-पुण्य एवं तीर्थयात्राओं के कार्यक्रम भी बनाते

जिज्ञासु ने कहा – "नहीं बिल्कुल नहीं उगेगी, भला बीज बोए बिना भी कभी फसल उगती है ?"

राजेश ने कहा – "बस यही स्थिति धर्म की है । सम्यग्दर्शन धर्म का बीज है और बाह्य क्रियायें धर्म रूप खेत की निंदाई-गुड़ाई, सफाई व सिंचाई करने के समान हैं ।

हम लोगों ने अब तक अपने-अपने धर्म के खेत को सब तरह से तैयार तो किया, पर उसमें सम्यग्दर्शन रूप धर्म का बीज नहीं बोया। इस कारण ही उसमें सम्यक् चारित्र रूप धर्म के फलों से भरपूर वीतरागता, समता एवं सच्चा सुख-शान्ति देने वाली फसल नहीं लगी । हमने पुण्य-पाप के बीज ही बोए हैं, अतः उसके फल में संसार में जन्म-मरण करने रूप आकुलता और दुःख की घास ही घास उगती रही है ।

मैं इसमें अपने पूर्वजों का दोष नहीं मानता, उन्होंने तो हमें सही मार्गदर्शन ही दिया था, पर उसके समझने में हम ही कहीं चूके हैं। देखिए कैसी-कैसी भूलें हो जाती हैं हमसे ? जिनकी हम और आप कल्पना भी नहीं कर सकते ।

इस प्रसंग में मुझे अपनी भूल का अहसास कराने वाली एक कहानी याद आ रही है । यदि आपकी आज्ञा हो तो कहूँ ?

एक सज्जन ने कहा – "कहिए; अवश्य कहिए, यहाँ और इस समय नहीं कहेंगे तो कहाँ व कब कहेंगे ।

राजेशजी ने अपनी बात की पुष्टि में कहानी प्रारंभ करते हुए कहा – "एक रोगी वैद्य के पास गया, वैद्यजी ने रोग का भली-भांति परीक्षण करके एक नुस्खा लिखा और बहुत ही जता-जताकर अच्छी तरह समझाया कि – इसे कूटकर, पीसकर कपड़छन करके खाली पेट मिश्री की चासनी में मिलाकर चाटना; भगवान, ने चाहा तो एक ही खुराक में गारंटी से तुम्हारा रोग ठीक हो जायेगा । परसों आकर मुझे रिपोर्ट देना ।"

पर उस नुस्खे से उसे बिल्कुल भी आराम नहीं मिला । अतः वह शिकायत की मुद्रा में वैद्यजी के पास पहुँचा और व्यंग में बोला –

"क्या आपकी सब दवाये भगवान के भरोसे पर ही काम करती है ? आपके भगवान ने नहीं चाहा और मुझे एक रत्ती भर भी आराम नहीं मिला ।"

वैद्यजी को भारी आश्चर्य हुआ — "यह हुआ कैसे ? दवा तो रामबाण औषधि है, लाभ न हो — ऐसा तो हो नहीं सकता ? पर मरीज भी तो असत्य नहीं बोल रहा है ।"

सोचते-विचारते वे निराशा के स्वर मे बोले — "लाओ दिखाओ पर्चा देखे, नुस्का लिखने मे कहीं कोई भूल-चूक तो नहीं हुई ?"

रोगी बोला — "क्या ? पर्चा ! कैसा पर्चा ?"

"अरे ! वही पर्चा, जो मैने लिखकर दिया था" — वैद्यजी ने कहा।

"वह तो दवा थी न ? उसे ही तो मैने कूटकर, पीसकर, छानकर चासनी मे चाटा है ।"

वैद्यजी ने रोगी की नासमझी पर अपना माथा ठोक लिया ।

"लगता है धर्म का स्वरूप समझने मे यही स्थिति हमारी हुई है।"

राजू ने आगे अपने वक्तव्य मे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर जोर देते हुए कहा — "भला जिसे तीर्थंकर भगवान ने धर्म कहा हो, उसे कैसे नकारा जा सकता है ? आचार्यदेव ने सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझाते हुए यह भी तो लिखा है कि — व्यवहार से सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का यथार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शन है । देव-शास्त्र-गुरु व आत्मा के श्रद्धान-पूर्वक इनका ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है तथा निज आत्मा मे रमना, जमना और उसी मे समा जाना सम्यक्चारित्र है । देखो ! देव-गुरु-धर्म के श्रद्धान से सात-तत्त्व का श्रद्धान भी यथार्थ हो जाता है ।

जिस वीतरागी देव, निर्ग्रन्थ गुरु और स्याद्वाद वाणी का दर्शन-पूजन और अध्ययन-मनन हम करते हैं, उनका स्वरूप क्या है ? हमारे द्वारा किए जा रहे दर्शन-पूजन का प्रयोजन क्या है ? ये सब हम क्यों करते है ? इनके सिवाय और भी जो-जो क्रियाये हम धर्म के नाम पर करते हैं, वे क्यो करते हैं ? उनके करने से हमे क्या लाभ है ?

यदि हम इस दिशा में सोचेंगे-विचार करेंगे तो हमें स्वयं समझ में आ जायेगा कि – वस्तुतः धर्म क्या है और उससकी प्राप्ति कैसे होती है ?

अरे भाई ! धर्म कोरी परम्पराओं के पालने या निर्वाह करने में नहीं है, वह तो स्व-परीक्षित साधना है । अतः हमें परीक्षा प्रधानी बनना पड़ेगा। केवल परम्परागत बाह्य आचरण धर्म नहीं हो सकता; क्योंकि उसमें तो केवल राग की ही पूर्ति होती है, वीतरागता की प्राप्ति नहीं होती ।

अकेली धर्म की परिभाषायें याद कर लेने और उन्हें भले प्रकार अभिव्यक्त करने से भी धर्म प्रगट नहीं होता । परिभाषाओं की पुनरावृत्ति तो हमसे अच्छी टेपरिकार्डर कर लेता है तो क्या वह धर्मात्मा हो जायेगा ? अरे ! जब वह आत्मा ही नहीं तो धर्मात्मा कैसे हो सकता है ? उन परिभाषाओं का भी प्रयोग करना होगा, उन्हें अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाना होगा – तभी वीतराग धर्म की प्राप्ति हो सकेगी ।

वस्तुतः धर्म तो अपना स्वभाव है । क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष-मोह, अज्ञान आदि आत्मा के स्वभाव के विपरीत भाव हैं, अतः ये धर्म नहीं, बल्कि अधर्म हैं । त्यागने योग्य जानकर इनका हेयरूप श्रद्धान करना तथा वीतरागता, सर्वज्ञता, समता, शान्ति, निराकुलता, दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा के स्वभाव हैं; अतः ये सब आत्मा के धर्म हैं । इन्हें उपादेय रूप जानकर दोनों का यथार्थ श्रद्धान करना ही सम्यग्दर्शन है और यही वास्तविक धर्म है । ऐसे आत्मधर्म की प्राप्ति हम सबको शीघ्र हो, ऐसी शुभकामना के साथ मैं अपने वक्तव्य से विराम लेता हूँ ।"

राजू के इस मार्मिक वक्तव्य को सुनकर लोगों ने दाँतों तले उंगली दबा ली ।

एक ने कहा – "अरे ! वाह भाई वाह !! यह वही राजू है जो एक दिन संजू के साथ रहकर आवारा बन गया था । धन्य है

भाई तुझे और तेरे उन माता-पिता को, जिन्होंने अपना पुत्रमोह छोड़कर पाँच वर्ष के लिए सिद्धान्त महाविद्यालय मे भेजकर और ऐसा पढ़ा-लिखा कर तुझे इस योग्य बना दिया ।"

राजेश के वक्तव्य पर श्रोताओं की सामूहिक प्रतिक्रिया देखकर प्रो. ज्ञान ने सबको धन्यवाद देते हुए मि. सजय जैन को आमंत्रित किया और उसका परिचय कराते हुए कहा – 'यह वही सजय जैन है, जिन्हें आप लोग सजू नाम से जानते-पहचानते रहे है । इन्होंने अनेक प्रतिकूलताओ के बाद भी जो पुरुषार्थ किया है, वह आप स्वयं इनके ही श्रीमुख से सुनकर देखेगे – आइये मि. सजय !"

सजू ने सभी को सम्बोधित करते हुए कहा – "लोक मे धर्म की भिन्न-भिन्न परिभाषाये और मान्यताये प्रचलित हैं, जिनमे अधिकाश कपोलकल्पित है, जिनसे भोले जीव भ्रमित हो रहे है । धर्म के सही स्वरूप से अनभिज्ञ कुछ लोग धर्म के स्वरूप को अपने-अपने तरीके से इस तरह परिभाषित करते आ रहे है, पालते आ रहे है, जो वास्तविकता से परे है ।

कोई तो अपनी अत्यन्त पुरानी परम्पराओ से चिपके है, ऐसे लोग कुलाचार को ही धर्म माने बैठे हैं, और कोई अत्याधुनिक बनकर सम्पूर्ण परम्पराओ को भूलकर खाओ-पियो और मोज करो, धर्म सब ढोग है, आडम्बर है, – ऐसी धारणा बनाकर धर्म को तिलाजलि दे बैठे हैं । पर वे सभी भूल मे हैं । मेरी भी कुछ समय पूर्व तक यही स्थिति थी; पर ····· मेरा सद्भाग्य ही समझो कि मुझे किसी तरह सन्मार्ग मिल गया है । एतदर्थ मै अपने मित्रो को जितना भी धन्यवाद दूँ, उनका कितना भी उपकार क्यों न मानूँ, कम ही होगा ।"

बधुओ ! धर्म की प्राप्ति न तो केवल धर्म की परिभाषाओं को याद कर लेने से ही होती है और न कोरी परम्पराओं के पालने से ही धर्म की प्राप्ति सभव है ।

पण्डित सदासुखदासजी ने रत्नकरण्डश्रावकाचार में लिखा है कि – "भगवान अरहंतदेव के मुखारबिन्द से प्रगट हुआ क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि दसधर्म आत्मा का स्वभाव है, पर वस्तु नहीं है । क्रोधादि कर्मजनित उपाधि दूर होने पर आत्मा का वह स्वभाव स्वयमेव प्रगट होता है।

धर्म को कोई छीन नहीं सकता, चुरा नहीं सकता, बिगाड़ नहीं सकता ? इसे धन के द्वारा खरीदा नहीं जा सकता । यह तीर्थ, मन्दिरों, नदी, पर्वतों में धरा नहीं है, जो वहाँ जाकर लाया जा सके । यह तो आत्मा का निज स्वभाव है । इसकी प्राप्ति तो आत्म स्वभाव के सम्यक्ज्ञान व सत्य श्रद्धान से होती है ।

तथा यह इतना सुगम है कि बालक, वृद्ध-युवा, धनवान-निर्धन, बलवान-निर्बल, रोगी-निरोगी, अनाथ-असहाय-सभी को स्वाधीनता से सहज ही प्राप्त हो सकता है ।

धर्म के धारण करने में कुछ खेद, क्लेश, अपमान, भय, विषाद, कलह आदि किसी प्रकार का कोई बोझ नहीं लगता, भाग-दौड़ भी नहीं करनी पड़ती । धर्म अत्यन्त सुगम समस्त क्लेश-दुःख रहित स्वाधीन आत्मा का ही सत्य परिणाम है । तथा अनन्त दर्शन-ज्ञान-चारित्र व सुख इसका फल है ।

इस धर्म और धर्म के फल की प्राप्ति हम सबको हो – यही मेरी भावना है । मैं संकल्प करता हूँ कि – मेरा तन-मन-धन इसी की सेवा में सदा समर्पित रहेगा ।"

अन्त में डॉ. धर्मचन्द जैन ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा – "भाई ! घर-द्वार और कुटुम्ब-परिवार के राग की आग में तो सभी जलते-मरते हैं, अपने बाल-बच्चों की चिन्ता कौन नहीं करता ? चिड़िया जैसे साधन विहीन प्राणी भी अपने बच्चों को घोंसला बनाते हैं और उन्हें पालते-पोसते हैं, उन्हें चुग्गा ला-लाकर चुगाते हैं, अतः अपने कुटुम्ब-परिवार के भरण-पोषण में ही सारा जीवन बिता देना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है ।

बुद्धिमानी की बात तो यह है कि कुटुम्ब-परिवार की जिम्मेदारी का निर्वाह करते हुए हम धर्म और समाज की सेवा मे समर्पित रहें।

इस मौके पर सबसे पहले मै विज्ञान के स्व. दादाजी को धन्यवाद देना चाहता हूँ, जिनके द्वारा बाल्यकाल मे संस्कार पाकर विज्ञान ने अपने मानव जीवन को तो सफल और सार्थक कर ही लिया, युवा-वर्ग के मार्गदर्शक भी बने। कदाचित् उनके द्वारा वे पौराणिक कथाये सुना-सुनाकर विज्ञान को धार्मिक संस्कार न दिये गये होते तो आज हम धर्म के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र मे जो यह चमत्कार देख रहे हैं, देखने को नहीं मिलता ।

मै इस अवसर पर अपने स्व. पूज्य पिताजी को स्मरण किए बिना भी नहीं रह सकता, क्योंकि उन्होंने न केवल कहकर बल्कि धार्मिक जीवन जीकर भी मुझे जीवनभर प्रत्यक्ष व परोक्ष प्रेरणा दी एव सन्मार्ग दिखाया।

यद्यपि कार्य की व्यस्तता के कारण मै उनके द्वारा संग्रहीत सत्साहित्य एव धार्मिक पत्र-पत्रिकाओ का उनके जीवनकाल मे अधिक उपयोग नहीं कर पाया, कल पर ही टालता रहा । और जब तक वह कल आने का समय आया, मै अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वों से निवृत्त हुआ तब तक वे दिवगत हो गये, महाप्रयाण कर गये । इसका मुझे अफसोस है । पर होनी को कौन टाल सकता है ।

वे मुझे अपने जीवन काल मे तो प्रेरणा देते ही रहे, मरणोपरान्त आज भी स्वप्नो मे आ-आकर सावधान करते हैं । मैं उनके जीते-जी तो अधिक कुछ नहीं कर पाया, पर उनके अभाव मे मैने अपने जीवन को भी उनकी भावना के अनुरूप बनाने का प्रयत्न किया है और अपने बेटे राजू को भी उनकी भावना के अनुरूप विद्वान बनाने में सफल हो गया हूँ – इसका मुझे विशेष हर्ष है ।

वे जहाँ भी होगे, राजू को एक युवा विद्वान के रूप में अवश्य प्रसन्न और सतुष्ट होगे ।

मुझे उनके द्वारा मंगाई जा रही आध्यात्मिक मासिक पत्रिका की विज्ञप्ति से ही राजू को उस महाविद्यालय में प्रवेश दिलाने की जानकारी मिली थी, जिस कारण राजू आज इस योग्य बन सका है ।

उन्होंने हमें धन-सम्पत्ति तो दी ही, धर्म के संस्कार भी दिये; अतः हम उनका जितना भी उपकार मानें कम है । वे सर्वोच्च न्यायालय के सर्वोच्च पद पर पदासीन होकर भी धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत थे । इससे स्पष्ट है कि लौकिक शिक्षा व सर्वोच्च पदों से धर्म का कोई विरोध नहीं है । और न धर्म मात्र अनपढ़ों के दकियानूसी विचारों का नाम ही है । धर्म तो एक वैज्ञानिक व्याख्या है, प्राकृतिक वस्तु व्यवस्था है ।

मैं इस अवसर पर प्रोफेसर ज्ञान के पिताश्री को भी धन्यवाद देना चाहूँगा; क्योंकि उन्होंने भी हमें प्रो. ज्ञान जैसा कठोर परिश्रमी, ईमानदार, सज्जन और संस्कारी सपूत दिया है । प्रो. ज्ञान लौकिक शिक्षा के तो गुरु हैं ही, धार्मिक मार्ग दर्शन देकर धर्म के क्षेत्र में भी वे गुरु बन गये हैं । और तो ठीक, पर विज्ञान जैसे मित्र को सन्मार्ग पर लाने वाला यदि कोई है तो वह प्रो. ज्ञान ही हैं ।

प्रो. ज्ञान के पिताश्री भी एक आदर्श अध्यापक और सच्चे धर्मात्मा पुरुष थे । उनका आदर्श जीवन हम सबके लिए अनुकरणीय है । वे मेरे भी प्रारंभिक शिक्षा गुरु रहे थे, मैं उन्हें परोक्ष प्रमाण करता हूँ।

मि. सुदर्शन के सहयोग की तो कोई होड़ ही नहीं है । उनकी दैनिकचर्या अपने लिए अद्वितीय और अनुकरणीय है । इतने बड़े एडवोकेट होने पर भी अपने व्यस्त जीवन में से समय निकालकर धर्म और समाज के लिए सदा समर्पित रहते हैं, एतदर्थ मैं आप सबको धन्यवाद देता हूँ और सबके दीर्घ जीवन की मंगल कामना करता हूँ ।"

उपस्थित जन-समुदाय को सम्बोधित करते हुए डॉ. धर्मचन्द ने कहा—

"मैं इस समय अधिक कुछ न कहकर आप सबसे भी यही अपील करना चाहता हूँ कि आप लोग भी इस संगठन द्वारा आयोजित कार्यक्रमों

मे सक्रिय भाग लेकर सदैव लाभ लेते रहें; क्योंकि जीवन में केवल यही एकमात्र करने योग्य कार्य है ।

मेरा सगठन और सगठन के सभी कार्यकर्ताओ के लिए यही मगल आशीर्वाद है कि आप सब प्रगति के पथ पर आगे बढ़ते हुए आत्मोन्नति के चरम लक्ष्य को प्राप्त करें ।

मैं अपनी ओर से अपने पूज्य पिताजी की पुण्य स्मृति में आपके इस सगठन को ध्रुवफण्ड मे एक लाख एक सौ एक रुपये देने की सहर्ष घोषणा करता हूँ तथा आपको वचन देता हूँ कि आगामी पाँच वर्ष तक आप जितने भी धार्मिक शिक्षण के विशेष आयोजन कर सकें, करें; उनका सम्पूर्ण खर्च मै वहन करूँगा । मै अपने पूज्य पिताजी द्वारा प्राप्त सारी सम्पत्ति का सदुपयोग तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार मे ही करना चाहता हूँ।

सजू ने भी अपने पिता स्व. सेठ सिद्धोमल की पुण्य स्मृति मे एक लाख एक सौ एक रुपया देने की घोषणा की । सभा मे उपस्थित अन्य धर्मप्रेमी बन्धुओ ने भी सगठन को अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार दिल खोलकर दान दिया ।

सम्पूर्ण सभा ने सजू के सघर्षशील जीवन तथा धार्मिक भावनाओ का और डॉ. धर्मचन्द की पवित्र भावनाओ और उदार सहयोग का करतल ध्वनि से स्वागत किया ।

अन्त मे सुदर्शन ने सगठन की ओर से सब सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करके धन्यवाद देते हुए सर्वप्रथम उपवन में विराजमान साधु सघ को परोक्ष रूप से साधुवाद दिया और कहा कि – "हमारे सौभाग्य से इस वर्ष हमे आचार्य सघ के चातुर्मास से जो प्रवचन सुनने का अपूर्व और अद्भुत लाभ मिला, उसे व्यक्त करने के लिए हमारे पास ऐसे शब्द ही नहीं है, जिनके द्वारा हम उनके प्रति अपने हृदय के भक्तिभावो को व्यक्त कर सकें। उनके प्रति हमारा शत्-शत्

डॉ. धर्मचन्द, प्रो. ज्ञान, उद्योगपति विज्ञान, प्रिय मित्र संजू, राजू, श्रीमती विद्या, सरला, सुनीता एवं सभी सदस्यों एवं सहधर्मी सज्जनों ने हमारे संगठन को मजबूत बनाने और कार्यक्रमों को सफल बनाने में जो प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से सहयोग दिया है, उसके लिए मैं संगठन की ओर से उन सबका आभार मानता हूँ और धन्यवाद देता हूँ। तथा आशा और अपेक्षा करता हूँ कि आप सबका इसीप्रकार का स्नेह व सहयोग बना रहेगा। जयजिनेनद्र। ●

यह एक सर्वमान्य सत्य है कि युवकों में जोश और प्रौढ़ों में होश की प्रधानता होती है। युवकों में जितना जोश होता है, कुछ कर गुजरने की तमन्ना होती है; उतना अनुभव नहीं होता। इसीप्रकार प्रौढ़ों में जितना अनुभव होता है, उतना जोश नहीं।

कोई भी कार्य सही और सफलता के साथ सम्पन्न करने के लिए जोश और होश – दोनों की ही आवश्यकता होती है। अतः देश व समाज को दोनों की ही आवश्यकता है। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं।

– 'जोश एवं होश' नामक निबन्ध से

अभिमत

पत्र-पत्रिकाओं एवं समीक्षकों की दृष्टि में प्रस्तुत प्रकाशन

• **अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण कृति :**

पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल द्वारा लिखित 'संस्कार' को आद्योपांत पढ़कर चित्त प्रफुल्लित हो गया। इस पुस्तक में ज्ञान, विज्ञान और सुदर्शन के सशक्त कथानकों द्वारा संस्कार रूप गागर में सागर भरने का सफल प्रयत्न किया गया है। बालकों के जीवन पर सुसंस्कारों और कुसंस्कारों का क्या प्रभाव पड़ता है, इसे ज्ञान और विज्ञान के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है। आधुनिक शिक्षा संस्थानों का जीता-जागता चित्रण, अस्पतालों में डॉक्टरों द्वारा मरीजों की उपेक्षा, परिवार नियोजन की आवश्यकता, दहेज की वास्तविकता, अभक्ष्य पदार्थों का वास्तविक रूप, बालकों के प्रति माता-पिता की उपेक्षा का परिणाम, कुसंगति का फल आदि अनेक महत्त्वपूर्ण बातों का सजीव चित्रण इस पुस्तक में उपलब्ध हैं।

विज्ञान, राजू, संजू, विद्या, सरला और सुनीता के जीवन में हुए नैतिक और धार्मिक परिवर्तन से न केवल उनका कल्याण हुआ है; किन्तु इससे समाज का भला हुआ है। पुस्तक के अन्त में धर्म के यथार्थ स्वरूप को समझाया गया है, जिसके पालन करने से इस लोक के साथ हमारा परलोक भी सुधर सकता है।

पुस्तक की भाषा सरल और शैली मनोहारी है जिससे पुस्तक पढ़ने में आनन्द का अनुभव होता है। यह पुस्तक बालक, युवक, प्रौढ़, वृद्ध आदि सभी के लिए अत्यन्त उपयोगी है। जो भी इसे एक बार पढ़ लेगा, उसे बार-बार पढ़ने की इच्छा होगी तथा उसके जीवन में कुछ न कुछ सुधार अवश्य होगा। वर्तमान में ऐसी ही पुस्तकों की आवश्यकता है।

ऐसी अत्यन्त उपयोगी कृति के लिए लेखक बधाई का पात्र है।

– प्रो. उदयचन्द जैन, सर्वदर्शनाचार्य

सेवानिवृत्त आचार्य, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

• **अक्षरशः पठनीय :**

मानवमात्र उत्तम संस्कारों का धनी हो – इसी प्रशस्त भावना से प्रेरित होकर विद्वान साहित्यकार पण्डित श्री रतनचन्दजी भारिल्ल ने इस 'संस्कार' उपन्यास की रचना की है, जो सभी श्रेणियों के पाठकों को अक्षरशः पठनीय है।

इसका सशक्त कथानक सदाचार प्रेरक है। इसमें सिद्धहस्त लेखक ने प्रबल युक्तियाँ दे-देकर सदाचार के सत्फल और दुराचार के दुष्फल पर विशद प्रकाश डाला है और कठिन से कठिन सैद्धान्तिक एवं दार्शनिक विषयों को सरल रीति से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। बीच-बीच में ग्रंथान्तरों से प्रसंगोचित शिक्षाप्रद विषय-वस्तु देने से ग्रंथ की रोचकता और भी अधिक बढ़ गयी है।

ऐसे उत्तम पुरस्कारार्ह प्रकाशन के लिए लेखक और प्रकाशक दोनों ही बधाई के पात्र हैं। वर्तमान में कु-संस्कारों के प्रभाव से उत्पन्न चिन्तनीय स्थिति को यदि बदलना है तो भारिल्लजी के प्रस्तुत ग्रंथ 'संस्कार' को अवश्य पढ़ना चाहिए।

– **पण्डित अमृतलाल शास्त्री**, साहित्याचार्य, प्रो. ब्राह्मी विद्यापीठ, लाडनूं

सन्मति संदेश (मासिक) दिल्ली (मार्च-अप्रैल 1991)

• **संस्कार जैसे कथा साहित्य का महती आवश्यकता :**

सदाचार और आनन्दमय जीवन बनाने की प्रेरणा देने वाला यह स्वतंत्र मौलिक कथानक "संस्कार" दिग्भ्रमित संतप्त प्राणी को दिशाबोध देने में पूर्ण सक्षम सिद्ध होगा। आज के इस भौतिक युग में बच्चों में सुसंस्कार डालने के इस 'संस्कार' जैसे कथा साहित्य की महती आवश्यकता है, जो जीवन उत्कर्ष की प्रेरणा देता है। उक्त प्रकाशन एक सशक्त उपन्यास है, जो भूले-भटके युवकों को सन्मार्ग दिखाता है।

आप इस कथानक को पढ़िये, यह घोर अंधकार में प्रज्वलित दीपक का काम देगा। – **पण्डित प्रकाशचन्द हितैषी**, सम्पादक

• **समन्वय वाणी (पाक्षिक), जयपुर :**

पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल की यह कृति 'संस्कार' यथा नाम तथा गुण सम्पन्न है। वर्तमान पीढ़ी संस्कार-विहीन होने से दिशाहीन होकर दिग्भ्रमित हो रही है। कथानक शैली में लिखी गई यह पुस्तक उन्हें निश्चित ही मील का पत्थर साबित होगी। पुस्तक का कलेवर आकर्षक है।

— अखिल बंसल, एम.ए., सम्पादक

• **जिनागम में अभिनव साहित्य प्रयोग :**

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल द्वारा रचित 'संस्कार' कृति एक कथात्मक अभिनव प्रयोग है, जो साहित्य धरातल पर एक नैतिक शिक्षाप्रद एवं आध्यात्मिक प्रेरणा देने वाली है। इसकी यह विशेषता है कि यह केवल समस्यायें ही चित्रित नहीं करती, वरन् संतोषजनक समाधान भी प्रतिविम्बित करती है।

जिनागम में यह अभिनव साहित्य प्रयोग सराहनीय है, अभिनन्दनीय है।

— डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन शास्त्री, प्रो. शा. महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)

• **मननीय और संग्रहणीय भी :**

'संस्कार' नामक ग्रंथ पढ़ा, इसमें वीतरागी जैन तत्त्वज्ञान को कथानक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। भाषा सरल और सरस है। कथानक में आधुनिक संदर्भों के न केवल मर्मस्पर्शी चित्रण हैं, अपितु उनके समाधानों को भी प्रभावक ढंग से प्रस्तुत किया है।

सदाचार प्रेरक प्रसंगों से ओत-प्रोत यह ग्रंथ न केवल पठनीय है, अपितु मननीय और संग्रहणीय भी है।

— डॉ. सुदर्शनलाल जैन, रीडर, बी.एच.यू., वाराणसी (उ.प्र.)

• **सुन्दर कृति के लिए बधाई :**

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल द्वारा लिखित 'संस्कार' पुस्तक [illegible] में बहुत अच्छी लिखी गई है। पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल प्रभावी लेखक और प्रौढ विद्वान हैं। इस सुन्दर कृति के लिए बधाई।

— पण्डित राजकुमार शास्त्री, सम्पादक - अहिंसावाणी, [illegible]

• सदिच्छा और सन्मार्ग का प्रवर्तक :

'संस्कार' नामक कृति को पढ़ने का सुयोग मिला। इसमें कहानी, उपन्यास और निबन्धों जैसा संकर आस्वाद मिलता है।

अपने नामानुरूप 'संस्कार' में सत् संस्कारों को जगाने की शाब्दिक प्रेरणा व्यंजित है। संस्कार के स्वाध्याय में जो रस आता है, वह सदिच्छा और सन्मार्ग का प्रवर्तन करता है।

आज के विषैले वातावरण में इसका वाचन पाठक को सुथरे और सुघड़ मनोभावों का आमंत्रण देगा।

हिन्दी के नवोदित पाठकों को 'संस्कार' पढ़ने की मैं संस्तुति करता हूँ। इतने उपयोगी लेखन के लिए अनेकशः साधुवाद।

– **डॉ. महेन्द्रसागर प्रचण्डिया**, अलीगढ़ (उ.प्र.)

• श्रेष्ठ औपन्यासिक कथावृत्त :

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल अब तक जैनदर्शन के अध्यात्म के अधिकारी प्रवक्ता के रूप में प्रतिष्ठित थे, किन्तु इस श्रेष्ठ औपन्यासिक कथावृत्त के माध्यम से वे अब एक सक्षम कथाकार के रूप में भी प्रतिष्ठित होंगे।

'संस्कार' नामक इस कथा वृत्त में ज्ञान और विज्ञान नामक दो प्रतीकात्मक पात्रों के माध्यम से संस्कार बनाम आधुनिकता के द्वन्द को सुन्दर रीति से प्रदर्शित किया गया है।

आज की नई पीढ़ी को दर्शन व समाज के उपयोगी संस्कारों का महत्व बोध करने में यह कथानक अपनी सार्थक भूमिका निभायेगा। लेखक को उनकी श्रेष्ठ रचना के लिए बहुशः साधुवाद।

– **डॉ. दामोदर शास्त्री**, प्रो. केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली

• सदाचार के प्रेरक प्रसंगों से अनुस्यूत :

लौकिक कथ्यों और पात्रों-चरित्रों के हेय-उपादेय के चित्रण के माध्यम से धार्मिक संस्कारों के बीजवपन का कार्य करती है प्रस्तुत कृति 'संस्कार'।

पण्डितप्रवर रतनचन्दजी भारिल्ल की यह कृति जैनदर्शन के सिद्धान्तों और सदाचार के प्रेरक प्रसंगों से अनुस्यूत है, अनुप्राणित है।

– डॉ. आदित्य प्रचण्डिया, प्राध्यापक, वि. वि., आगरा (उ.प्र.)

• **जनोपयोगी व चित्ताकर्षक सत्साहित्य :**

'संस्कार' कथानक के माध्यम से लेखक ने वर्तमान लोक प्रवृत्ति के अनुरूप सामाजिक समस्याओं का चयन करके जो सटीक समाधान प्रस्तुत किए हैं, पाठक उन्हें अपनी ही समस्याओं के रूप में देखता हुआ उनसे जुड़ा रहकर कथानक को आद्योपान्त पढ़ने के लिए मजबूर हो जाता है; क्योंकि उसे व्यक्तिगत जीवन से जुड़ी हुई परेशानियाँ और उनका निराकरण भी इसमें प्राप्त होता जाता है।

पात्रों का चयन और उनके कथोपकथन (संवाद) कथानक को गति देने वाले एवं प्रेरक हैं। फलतः फलागम की प्राप्ति चर्मोत्कर्ष के पश्चात् पाठक को सुखद एवं समाधान की स्थिति में होती है।

इतने अल्प मूल्य में ऐसे जनोपयोगी व चित्ताकर्षक सत्साहित्य के लेखक व प्रकाशक के लिए साधुवाद।

– डॉ. विद्यानन्द जैन, एस.एस.एल. जैन मा. विद्यालय, विदिशा (म.प्र.)

• **कृति बड़ी ही रोचक व शिक्षाप्रद :**

'संस्कार' कथानक बड़ा ही रोचक व शिक्षाप्रद है तथा सरल भाषाशैली में लिखा गया है। ऐसे जनोपयोगी साहित्य के प्रचार-प्रसार की महती आवश्यकता है। लेखक को बधाई।

– डॉ. राजाराम जैन, प्रोफेसर - शा. महाविद्यालय, आरा (बिहार)

• **पंचतंत्र की तरह सरल व सुगम कृति :**

मेरी कामना है कि पंचतंत्र और हितोपदेश की तरह आपका यह 'संस्कार' कथानक भी समकालीन सामाजिक जीवन में घुल-मिल जाये और वह प्रभाव पैदा करे जो कि आज अपेक्षित है।

जहाँ तक आपकी शैली का प्रश्न है, वह काफी सरल व सुगम है, उसमें प्रवचन व उपदेश का प्राधान्य है। आप जैसे धार्मिक क्षेत्र में काम करने वाले विद्वानों से यही सहज अपेक्षित है। यद्यपि समकालीन समाज के चित्रपट पर चीकट के असंख्य दाग पड़े हुए हैं, फिर भी आपके द्वारा प्रस्तुत इन नैतिक मूल्यों का समाज पर कुछ न कुछ दबाव या प्रभाव तो पड़ेगा ही। आप अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर रहें, यही मंगल कामना है।

– **डॉ. विजयबहादुर सिंह**, आचार्य, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, विदिशा

• उपन्यास विधा के निंकट :

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल द्वारा लिखित 'संस्कार' हिन्दी साहित्य की उपन्यास विधा के निकट है। धर्म की धरा पर समाज की सलोनी कॉलोनी बसाने का यह सीधा-सच्चा प्रयास है।

मुंशी प्रेमचन्द के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को झलकाती कथावस्तु का ताना-बाना घटनाक्रम और पात्रों से बखूबी बुना गया है। पात्र-परिस्थितियों से नियंत्रित होते हैं। परिस्थितियाँ जहाँ जैसी बनी हैं, वहाँ चरित्र भी तदनुरूप अच्छा हो गया है।

भाषा सरल है, शैली और प्रस्तुति लोकप्रिय है। इस पठनीय और प्रशंसनीय रचना के लिए लेखक अभिनन्दन के पात्र हैं।

– **गोपीचन्दजी "अमर"**, शोध अधिकारी, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

• 'संस्कार' कथा साहित्य मुझे बहुत अच्छा लगा :

सरल स्वभावी, जिनवाणी रसिक पण्डित श्री रतनचन्द भारिल्ल की साहित्यिक कृति को मैं जैनपथप्रदर्शक में किस्तों में पढ़ता था, तभी से मैं इस कृति से प्रभावित था। पुस्तक रूप में आते ही समाज ने इसे जिस त्वरित गति से अपनाया, इसकी मुझे भी कल्पना नहीं थी।

महावीर जयन्ती के निमित्त मैं इन्दौर गया था। संस्कार के सम्बन्ध में वहाँ के एक पाठक का अभिप्राय जानकर मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ। उसने बड़े ही उत्साह से कहा –

'संस्कार' कथा साहित्य मुझे बहुत अच्छा लगा। उसे पढ़कर मैंने अपने पुत्र को जयपुर में पढ़ाने का निर्णय लिया है।

मैं अपने पुत्र को धन तो कितना दे पाऊँगा, कह नहीं सकता; पर अब मैं उसे सु-संस्कार का धन अवश्य ही भरपूर दूँगा। सु-संस्कारों से उसका जीवन तो सुधरेगा ही, मेरा मरण भी सुधर जायेगा। मैं अपना शेष जीवन सुख-शान्ति से बिता सकूँगा।"

इस कारण मेरा हार्दिक अनुरोध है कि युवा-वर्ग और बालक तो इसे पढ़ें ही, उनके पालक भी यह पुस्तक अवश्य पढ़ें।

मराठी तथा कन्नड़ भाषा-भाषियों को भी 'संस्कार' कृति का लाभ यथा शीघ्र मिले, यह मेरी हार्दिक भावना है, इस दिशा में मैं वैसे प्रयास में हूँ।

साथ ही इस कृति के बांचने से पाठकों को उपन्यास रस की अनुभूति होती है, यह अत्युक्ति नहीं है।

– ब्रह्मचारी यशपाल जैन, एम.ए., जयपुर (राज.)

• **उपन्यास सरस, रोचक एवं पठनीय :**

'संस्कार' हिन्दी साहित्य की उपन्यास विधा की श्रेष्ठ कृति है। उपन्यास की विषयवस्तु सुसंस्कार एवं कुसंस्कार के व्यक्तिगत एवं सामाजिक प्रभावों को दर्शाकर संस्कारों का महत्व दर्शाना है, जिसमें लेखक सफल सिद्ध हुआ है।

उपन्यास सरल, रोचक एवं पठनीय है। भाषा सहज एवं विचारोत्तेजक है। अध्यात्म नीति तथा आदर्श वाक्यों का भी सफल प्रयोग हुआ है, जो पाठक को विचार चिन्तन हेतु प्रेरित करता है।

मुझे विश्वास है कि न केवल अभिभावक, किन्तु युवा-वर्ग भी इसके सार को हृदयंगम कर जीवन को सुसंस्कारित करेंगे।

लेखक इस अभिनव प्रयोग के लिए बधाई का पात्र है।

– डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसल, ओरियंट पेपर मिल्स, अमलाई (म.प्र.)

• अत्यन्त प्रभावपूर्ण ग्रंथ :

संस्कार ग्रंथ आद्योपान्त पढ़ा, अत्यन्त प्रसन्नता हुई। बहुत दिनों से अन्तर्भावना थी कि वर्तमान पीढ़ी को बालकों एवं युवकों के लिए नैतिक उत्थान की दृष्टि से कोई उपयोगी सत् साहित्य प्रकाशित हो तथा माता-पिता को भी बालकों में संस्कार डालने की दृष्टि मिले।

मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि आपके इस ग्रंथ से यह रास्ता खुल गया है। वृद्ध, युवा और बालक सभी के लिये यह ग्रंथ सुनिश्चित उपयोगी मार्गदर्शक हो गया है। इस ग्रंथ में जिस सरलतम और रुचिकर आकर्षक पद्धति से महत्त्वपूर्ण विषय का सर्वांग सुन्दर विन्यास हुआ है, वह अत्यन्त प्रभावपूर्ण है। जैसी इच्छा थी वैसी ही यह रचना संस्कारक्षम, प्रभावक बनी है। अनायास भावनाओं की पूर्ति हुई।

अब भावना यह है कि इस ग्रंथ का मराठी, गुजराती, कन्नड़ आदि भाषाओं में ऐसा ही अच्छा अनुवाद हो और इसके द्वारा समाज में संस्कारों की वृद्धि हो।

इस महत्त्वपूर्ण कलापूर्ण रचना के लिए आपको अनेकशः हार्दिक धन्यवाद। – **ब्र. गजाबैन**, बाहुबली-कुम्भोज (महाराष्ट्र)

चैतन्यसुख (मासिक), उदयपुर

• सदाचार प्रेरक सशक्त कथानक :

'संस्कार' सदाचार प्रेरक सशक्त कथानक है। इसकी कथावस्तु पापाचार एवं कुसंस्कारों को झकझोरने वाली है। मुझे विश्वास है कि इस कृति में प्रदत्त संस्कारों से पाठक अवश्य संस्कारित होगा और अपने जैनत्व की जड़ों में अमृत सिंचन करेगा।

लेखक के सादे जीवन और उच्च विचारों ने उनकी रचनाओं में अमिट छाप छोड़ी है। – **मांगीलाल जैन**, एम.ए., बी.एड., सम्पादक

• अत्यन्त सराहनीय

'संस्कार' पुस्तक को पढ़ा, पुस्तक अत्यन्त सुन्दर एवं सराहनीय है। जिन अध्यायों में ज्ञान, विज्ञान एवं मुनिराजों के भाषणों व उपदेशों के रूप में लेखक ने अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है; वह अत्यन्त प्रभावक और शिक्षाप्रद है। आशा है आपकी भविष्य में भी ऐसी ही महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित होती रहेंगी।

- सेठ अभिनन्दनप्रसाद जैन, सहारनपुर (उत्तरप्रदेश)

• हार्दिक अभिनन्दन :

'संस्कार' मानव मात्र को संस्कारित करने में एक सफल उपन्यास है। स्वतंत्र मौलिक कथानक के आश्रय से जैनत्व के आदर्शों का संयोजन रचनाकार का वैशिष्ट्य प्रगट करती है। सम-सामयिक समस्याओं के चित्रण एवं तत्समाधान में संस्कार कृति सावचेत है।

इस अभिनव मौलिक रचना के लेखन के लिए विद्वान लेखक का हार्दिक अभिनन्दन।

- डॉ. प्रेमचन्द रांवका, आचार्य, महाविद्यालय, मनोहरपुर (राज.)

• पढ़ने में आनन्द आता है :

प्रस्तुत पुस्तक में ज्ञान, विज्ञान, सुदर्शन और राजू जैसे अनेक पात्रों के विचित्र चरित्रों द्वारा जो युवा-पीढ़ी को मार्गदर्शन दिया है, वह देखते ही बनता है।

माता-पिता की लापरवाही या आवश्यकता से अधिक सावधानी कभी-कभी क्या गुल खिलाती है, यह संदेश हमें सेठ सिद्धोमल और डॉ. धर्मचन्द के चरित्रों में देखने को मिलता है।

उपन्यास की भाषा सरल व शैली रोचक है। तत्त्वज्ञान व सदाचार की शिक्षा भी मिलती है और पढ़ने में आनन्द भी आता है।

- पूनमचन्दजी छाबड़ा, मंत्री, पं. टोडरमल स्मारक ट्र

• समष्टि रूप में पुस्तक पठनीय :

सामाजिक समस्याओं के विश्लेषण में तत्पर और उसके तात्त्विक समाधान में प्रशस्त पटुता का परिचय देती आलोच्य कृति 'संस्कार' का यह एक भागीरथी प्रयास हिन्दी जैन साहित्य की उपन्यास विधा में रत्नजड़ित रहेगा।

इसमें मानवीय व्यवहार जैसा नर-नारी का पारस्परिक सहज आकर्षण, तदुत्पन्न स्नेह, किशोरावस्था की दहलीज का कम्पन व उससे प्रभावित परिवार, समाज व देश, संगति का जीव पर प्रभाव, दहेज प्रथा, नारी का सौन्दर्य प्रसाधन, उनकी प्रसन्नता, विवाहित जीवन, नेतृत्व की वुभुक्षा में बढ़ता आधुनिक परिवेश और उनसे पददलित शैक्षणिक संस्थाएं, भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य और उसके बदलते रूप में शिक्षक, न्यायविद, चिकित्सक व व्यापारीगण आदि परिदृश्यों को जितने स्वच्छ, स्पष्ट, तर्कसंगत व निश्छल रूप से लेखक की लेखनी ने निहारा है, और उसे संस्कारित करने का प्रयास किया है, वह श्लाघनीय है।

समष्टिरूप में पुस्तक पठनीय व मननीयं है। विशेष रूप से जिनको जैन तत्त्वज्ञान संस्कृति व सभ्यता पर गर्व है, उनके गर्व का विषय प्रस्तुत कृति बन सकती है, ऐसा मैं मानता हूँ।

– डॉ. योगेशचन्द जैन, एम.ए., पीएच.डी., अलीगंज (उ.प्र.)

धन्यवाद

द्वितीय संस्[illegible] होने के बाद भी पाठकों के प्रशंसात्मक पत्र और भी बहुत आये हैं, यदा-कदा अब भी आते रहते हैं परन्तु स्थानाभाव के कारण उन सबको प्रकाशित करना संभव नहीं है, एतदर्थ क्षमाप्रार्थी हैं।

जिन पाठकों एवं समीक्षकों ने अपने अभिमत प्रेषित कर एवं पत्र लिखकर लेखक एवं प्रकाशक संस्था को प्रोत्साहित किया है, उन्हें पुनः पुनः धन्यवाद।

– प्रकाशक